भारतीय साहित्य दर्शन

तमिऴ् साहित्य

यादुम ऊरे यावरुम केळिर्

யாதும் ஊரே யாவரும் கேளிர்

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा प्रकाशन
भारतीय-साहित्य दर्शन माला, पुष्प 1

तमिऴ् साहित्य

(तमिल साहित्य के प्राचीन काल से आधुनिक युग तक के विकास तथा साहित्य-धाराओं पर सुविख्यात विद्वानों द्वारा लिखित निबन्धों का संग्रह)

यादुम् ऊरे यावरुम् केळिर्
(वसुधैव कुटुंबकम्)

आमुख
श्री रामधारी सिंह दिनकर
(उप-कुलपति, भागलपुर विश्वविद्यालय)

प्रस्तावना
श्री सी० सुब्रह्मण्यम्
(इस्पात तथा भारी इंजीनिअरिंग मंत्री, भारत सरकार)

दक्षिण भारत
हिन्दी प्रचार सभा प्रकाशन

प्रथम संस्करण
दिसम्बर 1963

1

मूल्य तीन रुपये

प्राप्ति-स्थान :
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
केन्द्र कार्यालय
त्यागरायनगर, मद्रास-17

अथवा

दिल्ली शाखा :
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा
67, थियेटर कम्यूनिकेशन बिल्डिंग
कनाट सरकस, नयी दिल्ली-1

मुद्रक :
नवीन प्रेस, दिल्ली

प्रकाशकीय वक्तव्य

हिन्दी प्रेमी पाठकों के समक्ष 'भारतीय साहित्य दर्शन माला' का प्रथम पुष्प 'तमिळ् साहित्य' प्रस्तुत करते हुए हम अपार हर्ष का अनुभव कर रहे हैं।

हमारा समस्त भारतीय साहित्य वास्तव में एक ही सांस्कृतिक परम्परा का परिचायक है। एक ही विचार-धारा अन्तर्वाहिनी होकर उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक अनन्त काल से बहती आयी है। विभिन्न युगों में उस पर जो ऐतिहासिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक प्रभाव पड़े हैं उनका प्रतिबिम्ब उसपर पड़ता आया है। भौगोलिक तथा भाषाई भिन्नता के होते हुए भी सभी साहित्यों में प्रकट किये हुए विचार एक ही सूत्र में बन्धे पुष्पहार की तरह दिखायी देते हैं। विविधता में एकता भारतीय संस्कृति की विशेषता है। इस बात का दर्शन विभिन्न भाषाओं के साहित्य के अध्ययन से हो सकता है। 'भारतीय साहित्य दर्शन माला' इस दिशा में किया एक अल्प प्रयत्न है।

सभा की दिल्ली शाखा की ओर से 'तमिळ् साहित्य दर्शन' शीर्षक में एक भाषण माला का आयोजन किया गया था। तमिळ् भाषा के अधिकारी विद्वानों ने तमिळ् साहित्य के विशिष्ट युगों या अंगों पर निबन्ध पढ़े थे। इन निबन्धों का संग्रह प्रस्तुत पुस्तक में प्रकाशित है। ये निबन्ध ऐतिहासिक क्रम से संकलित किये गये हैं। इस कारण तमिळ् साहित्य के विकास का सम्यक् परिचय प्राप्त करने के लिए प्रस्तुत पुस्तक निसन्देह ही अत्यन्त उपयोगी होगी। प्रारम्भ के एक निबन्ध में तमिळ् साहित्य के क्रमिक विकास का एक संक्षिप्त परिचय दिया गया है। तमिळनाड का

एक मानचित्र भी सामान्य भौगोलिक परिचय देने के उद्देश्य से इसमें प्रकाशित है।

जिन विद्वानों ने इस भाषणमाला को सफल बनाने में अपने भाषण-निबन्ध पढ़कर तथा अन्य प्रकार से हमें सहयोग दिया है उनके हम अत्यन्त आभारी हैं।

हिन्दी के सुविख्यात कवि, साहित्यकार तथा भागलपुर विश्वविद्यालय के उप-कुलपति, प्रोफेसर रामधारीसिंह 'दिनकर' ने अपने व्यस्त जीवन में थोड़ा समय निकालकर इस पुस्तक का आमुख लिखने की जो कृपा की है उसके लिए हम उनके बहुत ही ऋणी हैं। भारत सरकार के इस्पात तथा भारी इन्जीनियरिंग विभाग के मन्त्री श्री सी० सुब्रह्मण्यम् ने हमारी प्रार्थना पर इस पुस्तक की प्रस्तावना लिखी है, उसके लिए हम उनके प्रति भी अपनी कृतज्ञता प्रकट किये बिना नहीं रह सकते।

हम भारत सरकार के सांस्कृतिक मंत्रालय के प्रति भी अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझते हैं जिसकी सहायता से इस भाषण-माला को सफल बनाने में हमें बड़ी सुविधा हुई। हम नवीन प्रेस दिल्ली के भी आभारी हैं जिनके सहयोग के बिना इतने कम समय में और सुन्दर ढंग से हम इस पुस्तक को प्रकाशित नहीं कर सकते थे।

हम आशा करते हैं कि तमिळ साहित्य के बारे में ज्ञान प्राप्त करने में यह पुस्तक बड़ी उपयोगी सिद्ध होगी और हिन्दी-जगत् हमारे इस प्रयास का समुचित स्वागत करेगा।

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा (मद्रास)
दिल्ली शाखा।

श्री भालचन्द्र आपटे
मन्त्री

ता० 22-12-1963

विषय-सूची

तमिऴनाडु

आंध्र राज्य
मद्रास
वेलूर
उत्तर आर्काट
मैसूर राज्य
सेलम
दक्षिण आर्काट
पांडिचेरी
कडलूर
कोयंबतूर
नीलगिरी
कोयंबतूर
तिरुच्चिरापल्ली
तिरुच्ची
तंजाउर
कारिकल
तंजाउर
मदुरै
मदुरै
देवकोटै
रामनाद
रामेश्वरम
केरल राज्य
तिरुनेलवेली
तिरुनेलवेली
ताम्रपर्णी
कन्याकुमारी
लंका
बंगाल की खाड़ी

आमुख

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की एक शाखा दिल्ली में इस उद्देश्य से खोली गयी है कि दक्षिण की भाषाओं और साहित्य का प्रचार उत्तर भारत में किया जाए। इस उद्देश्य की सिद्धि के लिए सभा ने जो कई कार्यक्रम चला रखे हैं उनमें एक प्रमुख कार्य यह है कि सभा की ओर से अधिकारी विद्वानों के द्वारा दक्षिणी भाषाओं के साहित्य के विषय में भाषण कराये जाते हैं। इन भाषणों का असर भी होता है और लोग, शनैः शनैः, दक्षिण के काव्य से परिचित होते जा रहे हैं।

भारत में सार्वदेशिक कीर्त्ति की नाव हिन्दी है। तमिऴ के महाकवि कंबन की रामायण की चर्चा अंग्रेज़ी के माध्यम से काफी हुई है। किन्तु, उक्त रामायण के हिन्दी अनुवाद का जो प्रभाव हिन्दी क्षेत्र में पड़ा, वह अंग्रेज़ी में की गयी चर्चाओं से नहीं पड़ा था।

मुझे बड़ी खुशी है कि दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा की दिल्ली-शाखा तमिऴ-साहित्य के बारे में आयोजित भाषणों का एक संग्रह प्रकाशित कर रही है। ये सभी निबन्ध बड़ी ही उच्च कोटि के हैं। इनसे भारत की भावात्मक एकता को प्रोत्साहन मिलता है। साथ ही वे साहित्य की दृष्टि से भी ज्ञान और आनन्द बहुत काफी देते हैं।

—*रामधारीसिंह दिनकर*
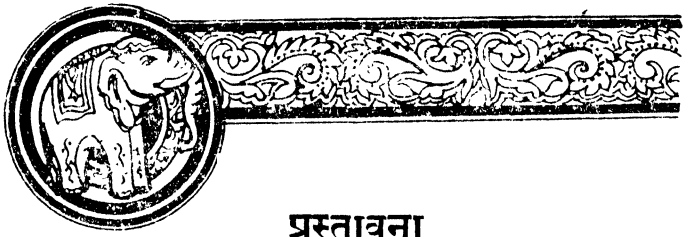
प्रस्तावना

तमिऴ बहुत प्राचीन भाषा है। उसमें साहित्य-निर्माण ईसा से एक हज़ार वर्ष पूर्व वा उससे भी पहले आरम्भ हुआ। सन्तों और कवियों की यह लम्बी परम्परा आगामी पीढ़ियों के लिए स्फूर्ति का स्रोत है और साहित्य के क्षेत्र में वर्तमान पीढ़ी ने जो थोड़ी-बहुत सफलता प्राप्त की है वह प्राचीन तमिऴनाड के महान् मनीषियों की समृद्ध साहित्यिक परम्परा के कारण है।

प्राचीनकाल में भी तमिऴ का संस्कृत और प्राकृत साहित्य से प्रत्यक्ष वा परोक्ष रूप से सम्पर्क हुआ और उसपर उनका बहुत प्रभाव पड़ा। इस प्रकार दक्षिणी प्रायद्वीप के प्राकृतिक वातावरण में उत्तरी और दक्षिणी विचारसरणी का सुन्दर समन्वय हुआ। यह सुन्दर समन्वय जैन और बहुत हद तक, वैदिक विचार-परम्परा के द्वारा हुआ। तमिऴ के श्रेष्ठ महाकाव्य, तिरुवल्लुवर आदि का नीतिसाहित्य, वैष्णव आळवारों और शैव नायनमारों के भक्ति-स्तोत्र, कम्बरामायण और महाभारत ये सब इस समन्वय के कुछ उज्ज्वल उदाहरण है और उसके लिए तमिऴ-भाषियों को स्वभावतः गर्व है।

मुझे जहाँ तक मालूम है, और जैसा कि उत्तर के साहित्यिकों ने मुझे बताया है, हिन्दी, बंगला, मराठी आदि के भक्ति-काव्य पर वैष्णव आळवार विचार-धारा का बड़ा प्रभाव है, जैसा कि निम्नलिखित पंक्ति से विदित होता है।

"भक्ति द्राविड ऊपजी, लाये रामानन्द"

आधुनिक युग का तमिऴ-साहित्य इस सुदीर्घ और स्वस्थ प्रक्रिया से

ही तैयार हुआ है। महान् राष्ट्रीय कवि श्री सुब्रह्मण्य भारती, वी० वी० एस० ऐयर आदि ने प्राचीन भावों और आधुनिक विचारसरणी का समन्वय किया है। आधुनिक युग प्रधानतः गद्य-युग है, यद्यपि तमिऴनाड के अनेक कवियों ने अपनी कविता से आधुनिक तमिऴ साहित्य को समृद्ध करने में योगदान दिया है।

तमिऴ गद्य के विकास के इतिहास का विषय बहुत रोचक है। भूतकाल में कागज और प्रेस की सुविधा न होने के कारण गद्य-लेखकों की कृतियाँ आगामी पीढ़ियों तक न पहुँच सकीं। किन्तु पद्य आसानी से कण्ठस्थ किये जा सकते हैं और शायद इसी कारण पुराने ज़माने में प्रायः समूचा साहित्य पद्य-रूप में होता था। यह कहना ठीक न होगा कि प्राचीन काल में तमिऴ गद्य-रचना के अभाव का यही एकमात्र कारण था, किन्तु निःसन्देह ही वह एक मुख्य कारण था। उन दिनों विवशतः भावाभिव्यक्ति के लिए कविता का ही आश्रय लिया जाता था, और अधिकांश रचनाएँ स्मरण रखने में सरलता के लिए संक्षिप्त और सूत्र-रूप में होती थीं। इस प्रकार संस्कृत के सूत्र-साहित्य के द्वारा हमें उस काल के उदात्त विचार उनकी समृद्धि में कमी हुए बिना प्राप्त हुए।

आजकल, जबकि देशव्यापी शिक्षा का प्रसार राज्य के सबसे महत्वपूर्ण कार्यों में गिना जाता है, हमारे विचारों को सरल गद्य में छपी पुस्तकों के रूप में प्रकाशित किये बिना उक्त लक्ष्य की प्राप्ति नहीं हो सकती। प्राचीन काल में पहली बात तो यह थी कि विद्या सीखने और समझने की रुचि अथवा प्रवृत्ति कुछ ही व्यक्तियों तक ही सीमित होती थी, दूसरी बात यह कि सम्भाषण गद्य-रूप में और मौखिक होता था, और विचारों को आगामी पीढ़ियों तक पहुँचाने के लिए उन्हें लिखित रूप देने की इच्छा या आवश्यकता का अनुभव नहीं होता था। आजकल हरेक के लिए बोधगम्य ढग से विचारों के आदान प्रदान की परम आवश्यकता अनुभव की जाती है और इस उद्देश्य के लिए कविता की अपेक्षा गद्य अधिक उपयुक्त है, इससे सभी सहमत हैं।

गद्य के विकास के प्रारम्भिक काल में स्वभावतः उपन्यास, लघु-कथा और नाटक सरीखे सरल और रोचक साहित्य का प्रमुख स्थान था। आजकल भी इस ढंग का साहित्य बड़े परिमाण में तैयार किया जाता है, क्योंकि पाठकों को इस प्रकार के साहित्य में अपने आर्थिक और पारिवारिक जीवन की प्रतिध्वनि प्रत्यक्ष मिलती है। लाखों की संख्या में बिकनेवाली तमिऴ की पत्र-पत्रिकाएँ इस बात का प्रमाण हैं, जो लघुकथा, उपन्यास, एकांकी नाटक आदि से भरी रहती हैं।

किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि दर्शन, इतिहास और अर्थशास्त्र जैसे विषयों के प्रामाणिक ग्रन्थ तमिऴ में बहुत कम हैं। आज का युग विज्ञान और तकनीक का युग है। आधुनिक मानव का जीवन वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों से प्रभावित होता है। वस्तुतः विज्ञान और तकनीक की भाषा से परिचित हुए बिना आधुनिक विचारधारा के साथ रहना सम्भव नहीं।

आजकल हमको सबसे अधिक खटकने वाली बात हमारे देश में मौलिक विचारों का अभाव है। हमने अन्य देशों में आविर्भूत विषयों का अध्ययन करने में, और वह भी एक विदेशी भाषा में, अपनी शक्ति लगायी है। मेरा विचार है कि वैज्ञानिक, तकनीकी विषयों वा आधुनिक अन्य क्षेत्रों में जो हमने अपनी ओर से कोई मौलिक योगदान नहीं किया है उसका कारण यह है कि हम विदेशी भाषा में पढ़ते, लिखते और सोचते हैं। यह ऐसी दासता है जो आधुनिक विचारों मे हमारी ओर से किसी प्रकार का योगदान कराने मे रोड़े अटकाती है। राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक वा भाषा सम्बन्धी हरेक प्रकार की दासता से मुक्त स्वतन्त्र मस्तिष्क ही सृजनात्मक स्वतन्त्र विचार कर सकता है और यदि हम ऐसी परिस्थितियाँ पैदा करना चाहते हैं जब बड़ी संख्या में वैज्ञानिक, विद्वान और मौलिक विचारक पैदा होकर निकलें तो सबसे पहली आवश्यकता इस बात की है कि हम अपनी मातृभाषा को अपनी शिक्षा का माध्यम बनाएँ। रूस, अमेरिका, यूरोप और ब्रिटेन की तुलना

में हमारे देश की जन-संख्या बहुत बड़ी है, किन्तु हम उन देशों के मौलिक विचारकों की संख्या को देखें तो हम प्रायः अज्ञ और अनपढ़ ही कहलाएँगे, क्योंकि हमारी शिक्षा एक विदेशी भाषा के माध्यम से होती है और हम उसी विदेशी भाषा में सोचते हैं। मौलिक कार्य के लिए यह आवश्यक है कि हम आज़ादी से और अपने ही ढंग से सोचें और यह स्वाभाविक वातावरण मे ही हो सकता है, और इसीलिए मातृ-भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना आवश्यक है। दुर्भाग्य से हमारे देश की वस्तुस्थिति शायद ही इस उद्देश्य की पूर्ति की ओर ले जाने-वाली हो। अतः इस बात को हमारे राष्ट्रीय नेताओं को अपने ध्यान में रखना चाहिए, और यह परिवर्तन चाहे कितना ही कठिन हो, करना ही चाहिए। हाँ, यह हो सकता है कि आवश्यकता के अनुसार वह धीरे-धीरे किया जाए।

यदि हम चाहते हैं कि भारतीय भाषाओं में, उदाहरणार्थ तमिऴ में उत्तम कोटि का वैज्ञानिक और तकनीकी वाङ्मय तैयार हो, तो जब तक कि विचार स्पष्टता से और अच्छी तरह प्रकट न किये जाएँ, यह काम आसान नहीं होगा, और दूसरी भाषाओं की पुस्तकों के अनुवाद मात्र से काम नहीं चलेगा। जापान में अनेक नवयुवक वैज्ञानिक हैं, जिन्होंने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की ऊँची योग्यता प्राप्त की है, और वहाँ शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं था। इन लोगों ने अपनी मातृभाषा जापानी में ही शिक्षा पायी थी। तब हमें गम्भीरता से इसपर विचार करना चाहिए कि हम वर्तमान परिस्थिति में यह स्तर किस तरह प्राप्त कर सकते हैं। हमें याद रखना चाहिए कि महात्मा गान्धी ने इस सम्बन्ध में कहा था—"परमात्मा के नाम पर मातृभाषा का आश्रय लो, नहीं तो हम कुछ भी नहीं कर सकेंगे।"

और एक बात है, हमारे देश में साक्षरता तेजी से बढ़ रही है, और यदि हम अपने देश का विकास जनतान्त्रिक और समाजवादी ढंग पर करना चाहते हैं तो हमे ज्ञान को सबके लिए सुलभ बनाना चाहिए

और यह तभी हो सकता है, जब कि शिक्षा का माध्यम मातृभाषा हो। स्वभावतः हमें अपनी मातृ-भाषाओं में वैज्ञानिक और तकनीकी विषयों की पुस्तकें तैयार करनी होंगी। और यदि हमें विज्ञान और तकनीकी विषयों की पुस्तकें तैयार करनी हैं तो पारिभाषिक शब्दावली भी चाहिए। यह कठिनाई वास्तविक है। मेरा विचार है कि हम तमिऴ या हिन्दी या किसी भी भारतीय भाषा में विज्ञान का अध्ययन करें तो हमें अन्तर्राष्ट्रीय वैज्ञानिक पारिभाषिक शब्दावली अपनानी चाहिए। प्रत्येक भारतीय भाषा की पृथक-पृथक शब्दावली विज्ञान के अध्ययन में और शिक्षा के क्षेत्र में समस्त देश की एकता में बाधक होगी। मेरा यह भी मत है कि हमें बिना किसी हिचकिचाहट के अन्तर्राष्ट्रीय अंकों को भी अपनाना चाहिए। भावुकतावश अपनी मातृभाषा के अंकों से चिपटे रहने से कोई लाभ नहीं और उससे अव्यवस्था ही होगी।

हमारी भारतीय भाषाओं का भविष्य उज्ज्वल है। उनका प्राचीन साहित्य बहुत समृद्ध है, किन्तु आधुनिक विचार, विज्ञान, तकनीकी और अन्य विषयों को भी उनमें स्थान मिलना चाहिए, क्योंकि हम आधुनिक युग में रहते हैं। कविता, कथा-साहित्य और नाटक के साथ ही आधुनिक विषयों पर भी वाङ्मय की वृद्धि होनी चाहिए। भारतीय भाषाओं में आधुनिक विषयों पर वाङ्मय का विकास और विश्वविद्यालयों में मातृभाषा को शिक्षा का माध्यम बनाना ये दोनों काम एक साथ होने चाहिए। दोनों अन्योन्याश्रित हैं और कोई एक, दूसरे की प्रगति की प्रतीक्षा करता नहीं रुक सकता।

दक्षिण भारत हिन्दी-प्रचार सभा ने भारतीय संघ की राजभाषा हिन्दी के माध्यम से उत्तर में दक्षिण की भाषाओं और साहित्य का परिचय देने का नया कार्य करने का स्तुत्य संकल्प किया है। मुझे आशा है कि हाल में तमिऴ साहित्य पर जो व्याख्यानमाला का आयोजन किया गया, उसके बाद देश की अन्य भाषाओं पर भी इसी प्रकार की व्याख्यान मालाओं का आयोजन होगा। स्वेच्छा से किया हुआ प्रयत्न अधिक

उपयोगी होता है, क्योंकि उससे लोगों पर उसका स्थायी प्रभाव होता है। मुझे पूरा विश्वास है कि हमारे देशवासी, जिस तरह से वे सुदूरवर्ती देशों की भाषाओं और साहित्य के बारे में जानते हैं, उसी तरह से अपने ही देश-बांधव पड़ोसियों की भाषाओं और साहित्य के बारे में जानने का प्रयत्न करेंगे। इससे सच्ची एकता उत्पन्न होगी, जो कि हमारे राष्ट्र की प्रगति और रक्षा के लिए अपरिहार्य है।

यादुम् उरे यावरुम् केळिर
वसुधैव कुटुंबकम्

—सी० सुब्रह्मण्यम्

लेखकों का परिचय

प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरन्

श्री मीनाक्षिसुन्दरन् तमिऴ् भाषा के वरिष्ठ विद्वान् तथा अध्यापक हैं। आपने कुछ समय तक वकालत की, और मद्रास नगर निगम के शिक्षा अधिकारी का काम बड़ी योग्यता के साथ सम्पन्न किया। प्रशासनिक अनुभव के साथ एक सुयोग्य अध्यापक के उच्च गुणों से भी आप विभूषित हैं, परन्तु अध्यापन में ही आपकी विशेष रुचि है।

आप मातृभाषा तमिऴ् के अतिरिक्त संस्कृत, तेलुगु, कन्नड, मलयाळम, हिन्दी, उर्दू, फ़ारसी वग़ैरह पूर्वी भाषाओं के साथ-साथ अंग्रेज़ी, फ्रेन्च तथा जर्मन भाषाओं के भी विद्वान् हैं। भाषाशास्त्र के विशेषज्ञ की हैसियत से भारतीय भाषाओं के विद्वानों में आपका स्थान बड़ा गौरवास्पद है। आप एक बड़े विवेकशील आलोचक और प्रभावशाली लेखक तथा वक्ता हैं।

आप इस समय मद्रास राज्य के सुप्रसिद्ध अण्णामलै विश्वविद्यालय में तमिऴ्, हिन्दी तथा उर्दू विभाग के अध्यक्ष हैं।

श्री का० श्री० श्रीनिवासाचार्य

श्री का० श्री० श्रीनिवासाचार्य तमिऴ् के एक विख्यात लेखक हैं, और इस समय तमिऴ् की प्रसिद्ध साहित्यिक पत्रिका 'कलैमगळ्' (सरस्वती) के सम्पादक-वर्ग में कार्य कर रहे हैं।

आप संस्कृत भाषा के भी सुयोग्य विद्वान् हैं, और हिन्दी, तेलुगु, मराठी आदि भारतीय भाषाएँ अच्छी तरह जानते हैं। तमिऴ् तथा

हिन्दी में आपने साहित्यिक आदान-प्रदान का कार्य भी किया है। गल्प-संसार माला नामक कहानी संग्रहमाला के तमिऴ पुष्प का कथा-संकलन और हिन्दी अनुवाद आप ही ने किया है। साहित्य अकादेमी से प्रकाशित धर्मानन्द कौशाम्बी के लिखे भगवान् बुद्ध (मूल मराठी) का तमिऴ अनुवाद भी आप ही ने किया है। मराठी के ख्यातनामा उपन्यासकार श्री वि० स० खाडेकर का प्राय: समस्त उपन्यास-वाङ्मय तमिऴ में लाने का श्रेय श्री का० श्री० श्री० को ही है, जिस नाम से वे तमिऴ संसार में परिचित हैं।

श्री आर० सिंगारसुन्दरम्

श्री सुन्दरम् नयी दिल्ली फ़ायर सर्विस के एक प्रमुख अधिकारी हैं। आप शैव भक्ति सम्प्रदाय के मर्मज्ञ विद्वान् हैं। आप अपनी विशेष प्रकार की कार्यव्यस्तता के बीच साहित्य सेवा के लिए भी थोड़ा समय सुरक्षित रखते हैं। शैवभक्ति पद्धति के गीत आप सुश्राव्य ढंग से गाते भी है।

डॉ० मलिक मोहम्मद

डॉ० मलिक मोहम्मद तमिऴभाषी हैं और सुदूर कन्याकुमारी ज़िले के निवासी हैं।

आपने अलीगढ़ विश्वविद्यालय से "सोलहवीं शती के हिन्दी कृष्ण-भक्ति काव्य पर आऴवार (वैष्णव) भक्तों का प्रभाव" पर हिन्दी में शोध-प्रबन्ध लिखकर पी-एच० डी० की उपाधि प्राप्त की है। इसके अतिरिक्त आपने साहित्यरत्न, विद्वान्, प्रवीण, साहित्याचार्य इत्यादि उपाधियाँ भी प्राप्त की हैं।

आपने मातृभाषा तमिऴ के अतिरिक्त मलयाळम, हिन्दी, अंग्रेज़ी, उर्दू तथा संस्कृत का अध्ययन किया है।

आप इस समय अलीगढ़ विश्वविद्यालय में हिन्दी तथा तमिऴ के प्राध्यापक हैं।

प्रो० न० वी० राजगोपालन्

श्री न० वी० राजगोपालन् हिन्दी तथा तमिळ भाषा के एम० ए० हैं। आपने संस्कृत में व्याकरण, न्याय, मीमांसा और वेदान्त दर्शन का अध्ययन किया है। तेलुगु भाषा और साहित्य से भी आप सुपरिचित हैं।

आपने तमिळ भाषा के सुप्रसिद्ध ग्रन्थ कम्ब रामायण का हिन्दी में अनुवाद किया है, जिसका प्रकाशन बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना की ओर से हुआ है। साहित्यिक आदान-प्रदान के कार्य में आप इस समय भी संलग्न हैं। आप इस समय केन्द्रीय हिन्दी शिक्षण विद्यालय आगरा में प्राध्यापक हैं।

श्री पूर्णम् रामचन्द्रन् 'उमाचन्द्रन्'

श्री रामचन्द्रन् का जन्म एक साहित्यिक परिवार में हुआ है, और अपनी इस पारिवारिक परम्परा को आपने बड़ी योग्यता के साथ निभाया है। 'उमाचन्द्रन्' के उपनाम से तमिळ में आप कहानी, उपन्यास तथा नाटक लिखते हैं। तमिळ तथा हिन्दी के बीच आदान-प्रदान का कार्य आप कई वर्षों से करते आ रहे हैं। आकाशवाणी के मद्रास केन्द्र में हिन्दी कार्यक्रम के संचालन का भार कई वर्षों तक आप ही के कन्धों पर रहा। आज भी आकाशवाणी में एक अन्य विभाग में कार्य कर रहे हैं।

प्रो० वी० आर० महालिंगम् 'सालै इळन्तिरैयन्'

श्री महालिंगम् तमिळ साहित्य जगत् में सालै इळन्तिरैयन् (सुकुमार तरंग) के उपनाम से विदित हैं। आप तमिळ के एक सुकवि और लेखक हैं। इस समय दिल्ली विश्वविद्यालय में तमिळ के प्राध्यापक हैं।

*

तमिऴ वाङ्मय: संक्षिप्त ऐतिहासिक परिचय

तमिल द्राविड़ भाषा-समूह की सर्वाधिक समृद्ध तथा संसार की प्राचीनतम मौलिक भाषाओं में से है। प्राप्य सामग्री के आधार पर तमिल-साहित्य के क्रमिक विकास को मुख्य रूप से सात काल-विभागों में बाँटा जा सकता है। ये हैं :—(1) संघपूर्व-काल, (2) संघ-काल, (3) संघोत्तर-काल, (4) भक्ति-काल, (5) कम्बन-काल, (6) मध्य-काल, (7) आधुनिक-काल।

संघकाल : इस बात के प्रमाण उपलब्ध हैं कि तमिल में सुव्यवस्थित रूप से साहित्य-रचना, लगभग 2600 वर्ष पूर्व आरम्भ हुई। साहित्य-सृजन को प्रोत्साहन देने तथा प्रत्येक रचना को साहित्य की कसौटी पर परखने के लिए उस समय के पाण्ड्य राजाओं के तत्वावधान में एक कवि-परिषद् (संघ) दक्षिण मदुरा में स्थापित की गयी। यह परिषद् 'तलैच्चगम्' (प्रथम संघ) कहलाती है। दूसरी कवि-परिषद् (इडैच्चंगम्) की स्थापना, ईसा से लगभग 400 वर्ष पूर्व हुई। द्वितीय शताब्दी के आरम्भ में, उत्तर मदुरा (वर्तमान मदुरै) में तीसरी परिषद् स्थापित की गयी।

प्रथम एवं द्वितीय परिषद् के समय की लगभग सभी रचनाएँ, अचानक समुद्र के उमड़ आने से नष्ट हो गयीं। द्वितीय परिषद् की एकमात्र प्राप्य रचना 'तोल्लकाप्पियम्' नामक व्याकरण-ग्रन्थ है।

'तिरुक्कुरल' संघ-काल की सर्वश्रेष्ठ रचना मानी जाती है। विद्वानों का मत है कि विश्व-साहित्य में कोई भी ऐसा ग्रन्थ नहीं जो 'तिरुक्कुरल' की समता कर सकता हो। लैटिन, संस्कृत, फ्रेन्च, अंग्रेज़ी,

जर्मन तथा विभिन्न अन्य भाषाओं में इसके सैकड़ों अनुवाद हो चुके हैं।

संघोत्तर-काल : विद्वानों का अनुमान है कि अन्तिम तमिल-कवि-परिषद् ईसा की द्वितीय शताब्दी के अन्तिम चरण में किन्हीं अज्ञात कारणों से विघटित हो गई। पर स्वतन्त्र कवियों द्वारा साहित्य-सृजन अक्षुण्ण रूप से जारी रहा। संघ-काल स्फुट कविताओं का युग था, तो उसके बाद बृहद् काव्यों एवं लघु-काव्यों का युग आरम्भ हुआ। इस युग में रचित पाँच सर्वश्रेष्ठ काव्य, 'पंच महा काव्य' कहलाते हैं। ये हैं :—
(1) 'शिलप्पदिकारम्', (2) 'मणिमेकलै', (3) 'जीवक-चिन्तामणि', (4) 'वलयापदि' और (5) 'कुण्डल केशि'। अभी पचास वर्ष पहले तक इन महाकाव्यों के केवल नाम ही शेष रह गये थे। पर महा-महोपाध्याय स्व० स्वामीनाथ अय्यर के अथक प्रयास के फलस्वरूप अब इनमें से प्रथम तीन काव्य सुसम्पादित होकर, व्याख्या-सहित प्रकाशित हो चुके हैं।

शिलप्पदिकारम् नाटकीय शैली में रचित तमिल-भाषा का प्रथम मौलिक महाकाव्य है। दो हज़ार वर्ष पहले के तमिल-समाज का यह दर्पण भी है। 'मणिमेकलै' कथानक की दृष्टि से 'शिलप्पदिकारम्' का ही उत्तरार्द्ध है। इसमें माधवी की कोवलन से हुई पुत्री मणिमेकलै की कहानी वर्णित है। इस महाकाव्य का कथानक केवल पट का काम देता है, जिस पर बौद्ध-धर्म की महत्ता का ओजस्वी चित्र कवित्वमय तूलिका से खींचा गया है। 'जीवक-चिन्तामणि' जैन मुनि एवं महाकवि तिरुत्तक्क-देवर की अमर रचना है। इसका रचना-काल ईसा की नौवीं शताब्दी माना जाता है।

भक्ति-काल : संघोत्तर-काल में पारलौकिक एवं धार्मिक प्रवृत्तियों का जो प्रादुर्भाव हुआ था, भक्ति-काव्य-धारा के रूप में उसका विकसित होना स्वाभाविक ही था। भक्ति-काल की सभी रचनाएँ शैव एवं वैष्णव कवियों द्वारा रचित हैं। संघोत्तर-काल में बौद्ध और जैन-धर्मों

का जो व्यापक प्रचार हुआ, उसके परिणामस्वरूप वैदिक धर्म की भित्तियाँ ढह गयी थीं। उसे इस विपदा से बचाने और वैदिक धर्म के जीर्ण मन्दिर को पुनः सुदृढ़ रूप से निर्मित करने का श्रेय इन्हीं भक्त कवियों को है।

भक्त कविगण केवल ईश्वर की सत्ता मानते थे। मानवीय सत्ता की उन्होंने कभी परवाह नहीं की। उनमें से कइयों को इसके लिए कठोर यातनाएँ सहनी पड़ी थी, फिर भी वह अपने सिद्धान्त पर अटल रहे। परम भक्त 'अप्पर' के शब्दों में वे यह घोषणा करते थे कि "हम किसी की प्रजा नहीं हैं, यम से हम नहीं डरते।"

शैव सन्त कवि : शिव-भक्त कवियों में चार मुख्य हैं—माणिक्क-वाचकर, तिरुज्ञानसम्बन्दर, अप्पर और सुन्दरर। इनमें से माणिक्कवाचकर की स्फुट कविताएँ 'तिरुवाचकम्' के नाम से तथा अन्य तीनों की कविताएँ 'तेवारम्' के नाम से विख्यात है।

माणिक्कवाचकर के बारे में प्रचलित पौराणिक कथा अतिशयोक्तियों एवं चामत्कारिक घटनाओं से पूर्ण है। वे अरिमर्दन पाण्डियन् नामक राजा के ब्राह्मण अमात्य थे, संस्कृत एवं तमिल के प्रकाण्ड पण्डित तथा सहृदय कवि थे। मन्त्री के उच्च पद को एवं जीवन के सुख और भोग को उन्होंने त्याग दिया और शिव की स्तुति में गीत गाये। इन्हीं गीतों का संकलन 'तिरुवाचकम्' कहलाता है। माणिक्कवाचकर ने एक रहस्यवादी प्रबन्ध-काव्य भी रचा है, जो 'तिरुक्कोवैयार' के नाम से प्रख्यात है। इसकी एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इसमें परमात्मा प्रेमिका के रूप में तथा जीवात्मा प्रेमी के रूप में वर्णित है। एक प्राचीन तमिल-काव्य में सूफी मत की यह छाया आश्चर्यजनक है।

तेवारम के रचयिताओं में कालक्रम से अप्पर प्रथम थे। वे पल्लव राजा महेन्द्रवर्मन् के समकालीन थे। उनका काल ईसा की छठी शताब्दी के तृतीय चरण से लेकर सातवीं शताब्दी के मध्य तक का था। अप्पर तमिल, संस्कृत एवं प्राकृत भाषाओं के प्रकाण्ड पण्डित थे और वैदिक एवं

जैन-धर्मों के गूढतम सिद्धान्तों के ज्ञाता थे। उनकी कविताओं में पश्चात्ताप की भावना तथा भगवान् शिव के प्रति दास्य-भाव की प्रचुरता है।

शैव कवियों में तिरुज्ञानसम्बन्दर का स्थान अद्वितीय है। संक्षेप में उनको 'सम्बन्दर' कहा जाता है। जब अप्पर सत्तर वर्ष के थे, तब सम्बन्दर आठ-दस साल के थे। दोनों में एक-दूसरे के प्रति हार्दिक स्नेह एवं श्रद्धा थी। इनकी कविताओं में शिशु-सम कौतूहल, जीवन-प्रेम और आनन्दानुभूति का स्निग्ध रस प्रवाहित होता है।

भक्ति के साथ जीवन-रसज्ञता एवं स्निग्ध प्रकृति-प्रेम का संचार करने वाले दूसरे शैव सन्त कवि सुन्दरर हैं। इनकी कविताएँ सखा-भाव से ओत प्रोत हैं। अर्जुन और श्रीकृष्ण का जो सम्बन्ध था, वही सुन्दरर और शिवजी में हम पाते हैं। उन्होंने न केवल स्वयं काव्य-रचना की, अपितु अपने से पहले के सन्त-कवियों की रचनाओं को सुरक्षित रखने में भी योग दिया। इस प्रसंग में एक अन्य शैव सन्त-कवि का भी उल्लेख करना अत्यन्त आवश्यक है। ये है :—तिरुमूलर, जिनकी तीन हजार आध्यात्मिक कविताएँ 'तिरुमन्दिरम्' (पवित्र-मन्त्र) के नाम से विख्यात है।

वैष्णव सन्त कवि : वैष्णव सन्त कवि बारह आलवारों द्वारा रचित चार हज़ार कविताओं का बृहत् संग्रह 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' कहलाता है। भक्ति काव्य द्वारा स्निग्ध वात्सल्य रस प्रवाहित करने वाले वैष्णव सन्त कवि पेरियालवार, ईसा की छठी शताब्दी में हुए माने जाते हैं। पेरियालवार नैष्ठिक ब्रह्मचारी थे, फिर भी श्रीकृष्ण के शिशुरूप और सारल्य ने ही उनके भावुक हृदय को सबसे अधिक आकर्षित किया।

वैष्णव सन्त-कवयित्री आण्डाल का भारतीय साहित्य में विशिष्ट स्थान है। कारैक्काल अम्मैयार, मीरा-जैसी भक्त कवयित्रियाँ विवाहित थीं, जबकि आण्डाल सोलह वर्ष तक क्वाँरी रहीं और कथानुसार, अपने प्रियतम विष्णु के साथ सशरीर सायुज्य-मुक्ति को प्राप्त हो गयीं।

इन सोलह वर्षो में उन्होंने मधुर रस से ओत-प्रोत जो अमर कविताएँ रचीं, वही 'नाच्चियार तिरुमोलि' के नाम से विख्यात है।

तमिल वैष्णव सन्त कवियों में तिरुमंगै आलवार का स्थान निराला है। वह शैव सन्त अप्पर के समकालीन थे और उनके घनिष्ठ मित्र भी। वे क्षत्रिय थे, एक छोटे राज्य के राजा भी, पर उसे त्यागकर उन्होंने भक्ति-मार्ग को अपनाया था। तिरुमंगै आलवार तमिल एवं संस्कृत के प्रकाड पण्डित थे और सहृदय कवि एव प्रकृति-प्रेमी भी। तमिल की कोई भी काव्य-शैली ऐसी नहीं जिसमें उन्होंने मधुर कविताएँ न रची हों। उनकी कविताओं में माधुर्य एव दास्य भाव समान रूप से पाये जाते है।

सुमधुर कविताओं द्वारा आध्यात्मिक तत्व का विवेचन करने वाले वैष्णव सन्त कवियों में नम्मालवार को सर्वश्रेष्ठ माना जाता है। विद्वानों के मतानुसार नम्मालवार ईसा की नौवीं शताब्दी में हुए थे। धार्मिक भावनाओं से परे रहकर, केवल साहित्यिक दृष्टि से नम्मालवार की कविताओं को देखा जाय तो उनकी अद्भुत कविता-चातुरी और भाषा-शैली पाठक को मुग्ध कर देती है। उपनिषदों के शब्द-संयम एवं सरलता के साथ, नम्मालवार ने विशुद्ध चिन्मय ब्रह्म का ऐसा विवेचन किया है, जो उनकी गहन आत्मानुभूति का द्योतक है।

केरल राज्य के सन्त नरेश कुलशेखरालवार, तमिल वैष्णव सन्तों में कालक्रम से अन्तिम है। उनका काल ईसा की 10वीं शताब्दी माना जाता है। वह अत्यन्त भावुक व्यक्ति थे और राम-भक्ति में लीन रहते थे। फिर भी उन्होंने कृष्ण भक्ति की कई सुन्दर कविताएँ रची हैं।

भक्तिकालीन सन्त कवियों ने तमिल-साहित्य-सरिता को सूखने या अवरुद्ध होने से बचाया और नये कवियों को प्रेरणा दी। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप फिर एक बार महाकाव्यों की रचना आरम्भ हुई।

कम्बन काल : 11वीं शताब्दी में, चोल राजा द्वितीय कुलोत्तुंगन के समय में, महाकवि कम्बन ने रामायण के अमर काव्य की रचना की,

तो उसकी विविध सौन्दर्यमयी आभा के सामने पहले के सभी काव्य फीके पड़ गये। यहाँ तक कि नौवीं शताब्दी से लेकर 14वीं शताब्दी ईस्वी तक का काल ही 'कम्बन-काल' के नाम से विख्यात हो गया।

कम्बन ने अपने काव्य की कथावस्तु 'वाल्मीकि रामायण' से ही ली है, परन्तु फिर भी, 'वाल्मीकि रामायण' की नीव पर उन्होंने जो काव्य-मन्दिर खड़ा किया है, उसकी अधिकांश शिल्पकारिता मौलिक है।

उन्होंने आदिकवि वाल्मीकि की रचना का अत्यन्त सूक्ष्म रूप से अध्ययन करके उसकी सभी अनुकरणीय विशेषताओं को अपना लिया और मूल काव्य में जहाँ कहीं भी गठन में, चरित्र-चित्रण में या वर्णन में शिथिलता पायी गयी उसे सुधार दिया।

पेरियपुराणम् : कम्बन-काल की रचनाओं में 'पेरियपुराणम्' का एक विशिष्ट स्थान है। इसके रचयिता शेक्किलार चोल राजा के मन्त्री थे। यह बृहत्काव्य नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें किसी एक का नहीं, तिरसठ शैव सन्तों का जीवन-चरित वर्णित है। शैव धर्म का प्रचार ही इसका एकमात्र उद्देश्य प्रतीत होता है।

मध्य-काल : कम्बन-काल के अन्त तक तमिल में सृजनात्मक साहित्य-रचना में अवरोध-सा दिखलाई देने लग गया था। 14वीं शताब्दी के अन्त से लेकर 19वीं शताब्दी के अन्त तक प्रायः यही स्थिति जारी रही। पर इस काल में अनेक टीका-ग्रन्थ रचे गये जिनसे प्राचीन साहित्य को समझने में बड़ी सहायता मिली। साथ ही, इन टीकाकारों ने तमिल भाषा में सुघड़ गद्यलेखन का सूत्रपात किया।

चौदहवीं शती के बाद राजनीतिक स्थिति में भारी उथल-पुथल मची। धीरे-धीरे तमिल राज्य समाप्त हो गये और उनके स्थान पर क्रमशः आन्ध्रों, मुसलमानों एवं मरहठों का शासन चला। जीवन में कोई स्थिरता नहीं रही। शायद यही कारण था कि फिर एक बार जनता में नैराश्य छा गया और उनकी दृष्टि आध्यात्मिकता की ओर

उठी । साहित्य पर भी इसकी स्पष्ट छाप अंकित हो गयी ।

14वीं शताब्दी के अन्त में 'वैरागी कवि पट्टिनात्तार' हुए ! उनके पद्यों में जीवन के प्रति कठोर व्यंग्य और तीखा कटाक्ष पाया जाता है । पट्टिनात्तार के बाद की पीढ़ी में एक सुकवि हुए जो अरुणगिरि के नाम से विख्यात हैं । अरुणगिरि गेय छन्दों में, भगवान कार्तिकेय की स्तुति में काव्य-रचना किया करते थे । 'तिरुप्पुगल'—यशश्री—नाम से ऐसे डेढ़ हज़ार गीत सुरक्षित हैं और गायकों एवं साधारण जनता द्वारा आज भी गाये जाते है ।

17वीं शताब्दी के मध्य में कुमरगुरुपरर नाम के एक विद्वान् सन्त हुए जिन्होंने अनेक प्रबन्ध-काव्य रचे । इनकी भाषा में एक अनूठा माधुर्य पाया जाता है, जो पाठक को बरबस अपनी ओर खींच लेता है । कहा जाता है, कुमरगुरुपरर ने उत्तर-भारत का भी भ्रमण किया था । काशी में उनका स्थापित किया हुआ एक मठ है । वह हिन्दी भी जानते थे । 18वी शताब्दी के आरम्भ में एक रहस्यवादी महाकवि हुए थे जो तायुमानवर के नाम से विख्यात हैं । उनकी भाषा मे संस्कृत शब्दों की भरमार है । तायुमानवर दार्शनिक थे, अद्वैतवादी थे और विश्व-प्रेम के प्रचारक भी ।

19वीं शताब्दी में रामलिंग स्वामिगल के रूप में, तमिल भाषा में एक और सन्त महाकवि हुए । रामलिंगर प्रधानतः भक्त एवं साधक थे और अपनी अनुभूतियों को ही काव्य-रूप में व्यक्त किया करते थे ।

आधुनिक काल : 19वी शताब्दी के मध्य में महाविद्वान मीनाक्षिसुन्दरम् पिल्लै ने अपनी अपार विद्वत्ता के बल पर बीस से अधिक लघु-काव्य रचे । उनके शिष्यों में तमिल की श्री-वृद्धि करने वाले वेदनायकम् पिल्ले, महामहोपाध्याय स्वामीनाथ अय्यर जैसे कई महारथी थे, जिनके सुयश के साथ-साथ गुरु मीनाक्षिसुन्दरम् पिल्लै का भी नाम अमर हो गया ।

वेदनायकम् पिल्लै शिक्षित ईसाई होने पर भी भारतीय संस्कृति में

सने थे। तमिल में सर्वप्रथम उपन्यास 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' के रचयिता होने का श्रेय आपको है। इसी समय गोपालकृष्ण भारती नामक नम्र, संकोचशील, ग्रामीण व्यक्ति के रूप में एक युग-प्रवर्तक कवि हुए। तमिल कविता में आधुनिक काल का उदय वास्तव में गोपालकृष्ण भारती के 'नन्दनचरित्रम्' के साथ ही हुआ समझना चाहिए। गोपालकृष्ण भारती ने ग्रामीण बोल-चाल की भाषा में लोक-गीतों की शैली में यह नीति-काव्य रचा, तो लकीर-पन्थी विद्वानों ने उसे साहित्य मानने से इनकार कर दिया, पर जनता ने उसे तत्काल अपनाया।

अंग्रेज़ी राज्य के सुदृढ़ रूप से स्थापित होने के बाद तमिल भाषा के सामने एक बड़ी समस्या उपस्थित हुई। उससे पहले हजारों वर्षों तक तमिल प्रदेश का सारा काम—राजकाज, व्यापार-वाणिज्य तथा अन्य कार्य—तमिल में ही हुआ करता था। अंग्रेज़ों ने इस व्यवस्था को एकदम समाप्त कर दिया, अतः तमिल सीखने की साधारण जनता की प्रवृत्ति कम हो गयी। दूसरी ओर अंग्रेज़ी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले लोग उसकी साहित्यिक छवि की चकाचौंध में इतने विस्मित हो गये कि अपनी भाषा, अपने साहित्य तथा अपनी संस्कृति के प्रति उनके मन में हीन-भावना घर कर गयी।

एक ओर यह उपेक्षा। दूसरी ओर भाषा के अन्य भक्त पण्डित लोग, काल की गति को न पहचानकर, मध्य-काल की बोझिल शैली में, पिटे हुए विषयों पर लिखकर पोथियाँ भरते जा रहे थे। वेदनायकम् पिल्लै और गोपालकृष्ण भारती जैसे कुछ प्रतिभाशाली व्यक्तियों ने गद्य एवं पद्य में समयानुकूल नवीनता लाने का जो प्रयास किया, उसे पण्डित-गण ने भाषा का 'अपमान' समझा। भाग्यवश कुछ अंग्रेज़ी शिक्षित विद्वानों ने इस स्थिति को सुधारने की ओर ध्यान दिया और अंग्रेज़ी की विशेषताओं—खासकर गद्य साहित्य की प्रचुरता एवं विविधता को तमिल में लाने का प्रयास आरम्भ किया। सर्वश्री वी० गा० सूर्यनारायण शास्त्री, सुन्दरम् पिल्लै, चि० वै० दामोदरम् पिल्लै, राजम् अय्यर, माधवय्या

आदि अनेक महारथियों के नाम इस सम्बन्ध में उल्लेखनीय हैं।

महामहोपाध्याय स्वामीनाथ अय्यर की असाधारण परिश्रमशीलता, अध्यवसाय, विद्वत्ता और ध्येय की पूर्ति में सर्वस्व बलिदान करने की भावना का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है कि उन्होंने पचास से अधिक प्राचीन ग्रन्थों को, विशद टीकाओं एवं कवि-परिचय के साथ प्रकाशित किया ?

भारतीय कांग्रेस की स्थापना के साथ-साथ राष्ट्रीयता की भावना की जो लहर चली, उससे भारत-भर की जनता का आत्माभिमान फिर एक बार जागृत हो उठा। देश-भक्ति के साथ-साथ भाषा-प्रेम भी जनता में बढ़ने लगा। समाचार-पत्रों के रूप मे साहित्य का एक नया अंग इसी समय विकसित होने लगा। अंग्रेज़ीदाँ लोग भी जनता की भाषा में लिखने के लिए विवश होने लगे। ऐसे ही समय में, महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के रूप में एक महा शक्ति का उदय हुआ। अपने 39 वर्ष के जीवन-काल में भारती ने तमिल साहित्य एवं समाज में एक क्रान्ति मचा दी। उन्होंने पण्डिताऊ शैली के बन्धन से भाषा को उन्मुक्त किया और नये-नये छन्दों में, जनप्रिय भाषा में, नये-नये भावों एवं कल्पनाओं से भरी गेय कविताएँ रचीं। एक ओर उन्होंने तमिल जनता के भाषा-प्रेम को जागृत किया और दूसरी ओर लोगों को संकुचित भावनाओं से ऊपर उठकर विशाल राष्ट्रीयता एवं मानवता का दृष्टिकोण अपनाने के लिए प्रेरित किया। तमिल भक्ति उनकी दृष्टि में राष्ट्रीयता की प्रथम सीढ़ी थी, तो राष्ट्रीयता विश्व-मानवता की पहली मंज़िल।

भारती जिस समय हुए, तब अंग्रेजी राज्य के विषैले प्रभाव के कारण साधारण जनता में एक तरह की निराशा, अकर्मण्यता छायी हुई थी। एक ओर भय, भूख, रोग और अज्ञान ; दूसरी ओर झूठे दम्भ का ढकोसला। ऊँच-नीच, जाति-पाँति के हजारों विभेद। 'शास्त्रों के नाम से कूड़े का ढेर।' शारीरिक परिश्रम को हेय समझने की घृणित मनोवृत्ति। इन सबके विरुद्ध भारती ने कविता का खड्ग उठाया। इस

संघर्ष के कारण उन्हें घोर यातनाएँ सहनी पड़ी। भूखों तड़पना पड़ा। पर उन्होंने इन बातों की तनिक भी परवाह न की। उनके विचार सुलझे हुए थे, उद्गार हार्दिक थे। स्वार्थ उन्हें छू न गया था। अतः उनकी वाणी में वही ओज, स्पष्टवादिता और तीखापन पाया जाता है जो कबीर-जैसे सन्तों की वाणी में था।

भारती के मित्र श्री वा० वें० सुब्रह्मण्य अय्यर का भी इसी प्रसंग में उल्लेख करना उचित होगा। इन बहुभाषाविद् कला-प्रेमी को स्वातन्त्र्य-संग्राम ने अपनी ओर खींच लिया और उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध 'आतंकवादी' कार्य करने में बिताया। इन्हीं दिनों उन्होंने 'कम्बन्' और 'वाल्मीकि-रामायण' की तुलनात्मक समीक्षा अंग्रेजी में लिखी। सन् 1927 में उन्होंने 'बाल भारती' के नाम से एक उच्चकोटि का साहित्यिक मासिक पत्र शुरू किया। इस पत्र में श्री अय्यर ने कम्बन् की रामायण पर जो लेख-माला प्रकाशित की, उसीसे तमिल में आधुनिक ढंग की समालोचना का लेखन आरम्भ हुआ। बाद के साहित्य-समालोचकों पर श्री अय्यर की शैली का गहरा प्रभाव पड़ा।

आज के कवि : आज के तमिल कवियों में श्री देशिक विनायकम पिल्लै सर्वश्रेष्ठ माने जाते हैं। उनकी भाषा में ऐसा मिठास और मार्दव है, जैसा कि किसी अन्य आधुनिक कवि की भाषा में नहीं।

'भारती दासन' तमिल के क्रान्तिकारी कवि कहलाते हैं। वह श्री सुब्रह्मण्य भारती के अनन्य भक्त हैं, इसीलिए उन्होंने 'भारतीदासन्' का नाम अपना लिया है। आरम्भ में वह भारती की भाँति शक्ति-पूजक और आस्तिक थे। पर बाद में उन पर नास्तिकवाद का गहरा प्रभाव पड़ गया। यहाँ तक कि इस समय तमिल में नास्तिकवाद के वही प्रबल-तम समर्थक माने जाते हैं।

'कम्बदासन्' तमिल के मस्त कवि हैं। समस्त प्रकृति 'कम्बदासन्' को प्रेममय दृष्टिगत होती है। रवि-किरणों में, लहरों के गीतों में, कमल के सौन्दर्य में, भ्रमर के गुन-गुनाने में उन्हें प्रेम-ही-प्रेम दृष्टिगत होता है।

नामक्कल रामलिंगम पिल्लै गांधीवादी कवि हैं। उनको मद्रास का एक 'आस्थान कवि' (राजकीय कवि) बनाया गया। श्री पिल्लै ने 'अवनुम अवलुम' शीर्षक पद्यमय उपन्यास भी लिखा है।

श्री कोत्तमंगल मुब्बु ने ग्रामीण किसानों की बोलचाल की भाषा में कविता लिखने की नयी परम्परा चलायी है। उनकी कविताओं की विशेषता यह है कि भाषा के साथ-साथ, कल्पना एवं भाव भी ग्रामीण किसानों के-से होते है। 'गान्दि महान कदै' (महात्मा गांधी की कथा) तथा 'भारती चरितम्' (कवि सुब्रह्मण्य भारती की जीवनी) उनके लोकप्रिय काव्य हैं।

योगी श्री शुद्धानन्द भारती को लेखन-यन्त्र कहने में अत्युक्ति नहीं होगी। 'भारत-शक्ति' नामक बृहत्काव्य-ग्रन्थ के अलावा उन्होंने सैकड़ों स्फुट कविताएँ एवं गीत रचे है। साहित्य-समालोचना से लेकर उपन्यासों तक विभिन्न विषयों पर उनके सौ से अधिक गद्य-ग्रन्थ भी प्रकाशित हो चुके है।

गद्य-साहित्य—अन्य भाषाओं की भाँति तमिल में भी वर्तमान युग मुख्यतया गद्ययुग है। पत्र-पत्रिकाओं, उपन्यास, गल्प आदि सृजनात्मक रचनाओं, आत्मकथा जैसे जीवन-चरितों, यात्रा आदि पर वर्णन-ग्रन्थों तथा राजनीति, विज्ञान एवं कलाओं पर ज्ञानवर्धक ग्रन्थों के रूप में गद्य-साहित्य का निर्माण इतनी प्रचुर मात्रा में हो रहा है कि उसके सामने काव्य-साहित्य नगण्य-सा दीखता है।

उपन्यास—तमिल का प्रथम उपन्यास 'प्रताप मुदलियार चरित्रम्' लगभग 80 वर्ष पूर्व श्री वेदनायकम् पिल्लै द्वारा लिखा गया। विख्यात अंग्रेज़ी उपन्यासकार चार्ल्स डिकन्स की शैली का उन पर गहरा प्रभाव था। इसके कुछ समय बाद श्री राजम अय्यर के रूप में एक प्रतिभाशाली उपन्यासकार प्रकाश में आये। उनका एकमात्र तमिल-उपन्यास 'कमलाम्बाल-चरित्रम्' सर्वप्रथम 'विवेक चिन्तामणि' नामक पत्र में धारावाहिक रूप से प्रकाशित हुआ था। ग्रामीण ब्राह्मण समाज की उस समय

की स्थिति का अत्यन्त रोचक एवं वास्तविक चित्र इस उपन्यास में प्रस्तुत किया गया है। राजम अय्यर के समकालीन लेखक श्री अ० माधवय्या का भी नाम तमिल के प्रारम्भिक उपन्यासकारों में श्रद्धा के साथ लिया जायेगा। इस युग के उपन्यासकारों में स्व० पं० नटेश शास्त्री का भी नाम उल्लेखनीय् है। 'अनुवादक-उपन्यासकारों' के प्रतिनिधि कहलाने का श्रेय स्व० श्री आरणीकुप्पुस्वामी मुदलियार को है।

इसी स्कूल के लेखकों में वडुवूर के दुरैसामी अय्यंगार तथा जे० आर रगराजू के नाम भी उल्लेखनीय हैं। लगभग 30 वर्ष पूर्व श्री वेंकट रमणि ने 'मुरुगन'—एक काश्तकार शीर्षक युग-प्रवर्तक सामाजिक उपन्यास प्रकाशित करके मौलिक उपन्यास-रचना को पुनर्जीवित किया। भारतीय किसानों की समस्याओं पर उपन्यास द्वारा प्रकाश डालने का यह् प्रथम प्रयास था। स्वातन्त्र्य-संग्राम की पार्श्व-भूमि पर श्री वेंकट रमणि ने 'देशभक्त कन्दन' नाम का दूसरा उपन्यास लिखा। श्री वेंकटरमणि ही की भाँति अंग्रेज़ी में ख्यातिप्राप्त करने के वाद तमिल में मौलिक रचना करने वाले दो अन्य उपन्यासकारों का भी यहाँ उल्लेख कर देना उचित होगा। वे हैं श्री एस० वी० वी० और श्री आर० के० नारायणन।

सुधारवादी उपन्यासकारों में श्री 'कल्कि' अग्रगण्य हैं। उनकी सभी रचनाएँ सोद्देश्य होती हैं। वह् कला को साधन मानते हैं, साध्य नहीं। 'कलवनिन कादलि' (चोर की प्रेमिका) 'शोलैमलै इलवरशि' (शोलैमलै की राजकुमारी) तथा 'अलै ओशै (लहरों की पुकार) आदि उनके उपन्यास उच्चकोटि की रचनाएँ हैं। वह हास्य-मिश्रित सुन्दर शैली में लिखते थे। तमिल में प्रामाणिक ऐतिहासिक उपन्यास सिखने की भी परम्परा 'कल्कि' ने ही आरम्भ की। पल्लवकालीन इतिहास के आधार पर रचित उनके दो उपन्यास 'शिवकामियिन शपदम्' (शिवकामी की शपथ) और 'पार्त्तिवन कनवु' (पार्थिव का स्वप्न) स्थायी महत्त्व के हैं।

'देवन' कुशल कलाकार और प्रतिभा-सम्पन्न लेखक हैं। उपन्यास-रचना में कई नये प्रयोग उन्होंने साहसपूर्वक किये और सफलता प्राप्त

की। 'गोमतियन कादलन' (गोमती का प्रेमी), 'राजत्तिन मनोरदम' (राजा का मनोरथ) 'जस्टिस जगन्नादन' तथा 'वेदान्तम' उनके सफल उपन्यास हैं। आज के अन्य उपन्यासकारों में 'मश्री' लक्ष्मी, गुहप्रिया सरस्वती अम्माल तथा अनुत्तमा आदि लेखिकाआ आर पी० एम० कण्णन 'जीवा' एवं जी० एस० मणि आदि लेखकों के भी नाम उल्लेखनीय हैं।

गत बीस-पच्चीस वर्षो से अन्य भारतीय भाषाओं—विशेषत: बंगला, हिन्दी, मराठी और गुजराती—के उपन्यासों का अनुवाद भी तमिल में हो चुका है। ऐसे सफल अनुवादकों में सर्वश्री का० श्री० श्री०, त० ना० कुमारस्वामी, गुरुस्वामी तथा वीलिनाथन आदि उल्लेखनीय हैं।

कहानी—तमिल में आधुनिक ढंग की कहानियों का श्रीगणेश स्व० श्री० व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर ने किया था। लगभग उसी समय श्री सुब्रह्मण्य भारती ने रवि बाबू और टालस्टाय की कहानियों का सुन्दर अनुवाद प्रकाशित कराया। श्री माधवय्या का 'कुशिकर कुट्टिक-कदैगल' नामक कहानी-संग्रह भी इसी समय प्रकाशित हुआ। श्री सुब्रह्मण्य भारती ने कुछ मौलिक कहानियाँ भी लिखी। इन प्रारम्भिक प्रयत्नों में श्री सुब्रह्मण्य अय्यर की कहानियाँ स्थायी महत्त्व की हैं।

इसके बाद कहानी-साहित्य उत्तरोत्तर प्रगति करता गया और आज सैकड़ों कहानीकार नयी-नयी शैलियों में कहानियाँ लिख रहे है। इनमें मनोविश्लेषणात्मक शैली सर्वाधिक लोकप्रिय है। तमिल के सर्वश्रेष्ठ कहानीकारों में 'कल्कि', राजाजी, ति० ज० रंगनाथन्, बी० एस० रामय्या, स्व० कु० पं० राजगोपालन, स्व० पुदुमैपित्तन, स्व० एस० वी० वी०, 'देवन' तथा 'कि० वा० जगन्नाथन' आदि मुख्य हैं।

कल्कि ने सैकड़ों छोटी और लम्बी कहानियाँ लिखी हैं। 'खत और आंसू' 'भवानी बी० ए० बी० एल०' तथा 'वीणा-भवानी' आदि उनकी अनेक कहानियाँ अतीव सुन्दर गल्प-सुमन हैं।

तमिल कहानीकारों में राजाजी का स्थान बहुत ऊँचा है। उनकी कहानियों में एक असाधारण हृदयस्पर्शी तत्त्व पाया जाता है, जैसा कि

टालस्टाय की कहानियों में। राजाजी की कलाकारितापूर्ण भाषा-शैली उनकी कहानियों की रोचकता को दसगुना बढ़ा देती है।

वी० एस० रामय्या की कहानी एवं भाषा-शैली एकदम मौलिक है। स्व० कु० पं० राजगोपालन मनोविश्लेषणात्मक कहानियाँ लिखने में सिद्धहस्त थे।

कि० वा० जगन्नाथ की कहानियाँ सुनियोजित एवं सुगठित होती हैं। उनकी भाषा अत्यन्त परिमार्जित होती है, जिससे उनकी कहानियों का आकर्षण बढ़ जाता है। वह निरुद्देश्य नहीं लिखते। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उनकी कहानियों में कोई-न-कोई सीख अवश्य होती है।

व्यंगपूर्ण 'स्केच' लिखने में स्व० व० रा० सिद्धहस्त थे। 'नाडोडी', 'देवन', 'तुमलन' आदि इस क्षेत्र के प्रमुख लेखकों में से हैं।

नाटक—तमिलनाडु से आधुनिक रंगमंच का आरम्भ मराठी नाटक मण्डलियों द्वारा किया गया। बाद में श्री प० सम्बन्द मुदलियार जैसे कुछ शिक्षित कला-प्रेमियों ने उसे बहुत सुधारा और विकसित किया। इस उद्देश्य से श्री मुदलियार और उनके मित्रों ने 'सगुण विलास सभा' नामक नाटक मण्डली स्थापित की। इस मण्डली की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए श्री सम्बन्द मुदलियार ने नाटक लिखना आरम्भ किया था।

श्री सम्बन्द मुदलियार ने मौलिक एवं अनूदित कुल 80 से अधिक नाटक लिखे। आरम्भ में वह पौराणिक या लोक-कथाओं के आधार पर नाटक लिखते थे या अंग्रेज़ी नाटकों का छायानुवाद करते थे। उनके सभी नाटक रंगमंच पर सफलतापूर्वक खेले जा चुके हैं।

परन्तु मानना पड़ेगा कि आज भी तमिल में उच्चकोटि के मौलिक नाटकों का अभाव है। इस अभाव के पूरा होने की जो भी कुछ आशा हो सकती थी, वह भी बोल पटों के प्रसार के उपरान्त समाप्त हो गयी।

परन्तु नाटक की एक आधुनिक शाखा—रेडियो रूपकों और प्रह-

सनों—में तमिल ने उल्लेखनीय प्रगति की है। इस कला में सर्वश्री 'उमाचन्द्रन्', पूर्णम् विश्वनाथन्; गुहन् तथा बी० ए० कृष्णमूर्ति आदि तरुण लेखकों ने सराहनीय कार्य किया है।

साहित्य-समालोचना—तमिल में आधुनिक ढंग की साहित्य-समालोचना का सूत्रपात भी स्व० श्री० व० वे० सुब्रह्मण्य अय्यर ने ही किया। अब यह कला खूब विकसित हुई है और कई महारथी इस क्षेत्र में अमूल्य सेवा कर रहे हैं। इनमें सर्वश्री पी० श्री आचार्य, रा० पि० सैतुपिल्लै, टी० के० सि० वैयापुरि पिल्लै', वे० मु० गोपालकृष्णमाचार्य, रा० राघव अय्यंगार, सोमसुन्दर भारती तथा तो० मु भास्कर तोण्डैमान आदि अनेक विद्वान् उल्लेखनीय हैं। दुर्बोध साहित्य को आधुनिक ढंग से समझाने में श्री की० वा० जगन्नाथन, श्री मीनाक्षि सुन्दरम् पिल्लै आदि अनेक विद्वान् महत्त्वपूर्ण सेवा कर रहे हैं।

आज की समस्या

आज तमिल भाषा के सामने सबसे बड़ी समस्या वही है, जो अन्य भारतीय भाषाओं के सामने है। वह है वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की समस्या। तमिलभाषी यह अनुभव कर रहे हैं कि आज के युग में विज्ञान साहित्य का एक अनिवार्य अंग बन चुका है। जब तक भाषा में विज्ञान की विभिन्न शाखाओं पर उच्चकोटि का प्रामाणिक साहित्य प्रचुर मात्रा में निर्मित न हो जाये, तब तक अंग्रेज़ी की दासता से पूर्णतया मुक्त होना सम्भव नहीं। इस कारण सभी तमिल प्रेमियों एवं गम्भीर लेखकों का ध्यान इस समय वैज्ञानिक साहित्य निर्माण की ओर केन्द्रित है। लगभग तीन दशाब्दी पूर्व राजाजी ने 'तमिलिल मुडियुमा' (क्या तमिल में सम्भव है ?) शीर्षक ग्रन्थ प्रकाशित किया। विज्ञान-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों के लिए तमिल में पर्यायवाची ढूंढ़ने का यह प्रथम सुयोजित प्रयास था।

विज्ञान-सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों में एकरूपता लाने की समस्या

तमिल के सामने उपस्थित है। मुख्यतया इस प्रकार की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने के ही उद्देश्य से 'तमिल विकास संघ' नामक संस्था 15 वर्ष पूर्व स्थापित की गयी थी। इस संस्था के तत्त्वावधान में सरकारी सहायता से एक विशाल विश्वकोष तैयार किया जा रहा है। यह संस्था, अन्य रचनाओं के साथ-साथ विज्ञान-सम्बन्धी नयी मौलिक रचनाओं पर भी प्रतिवर्ष पुरस्कार देती है। मद्रास सरकार भी इस दिशा में प्रयत्नशील है।
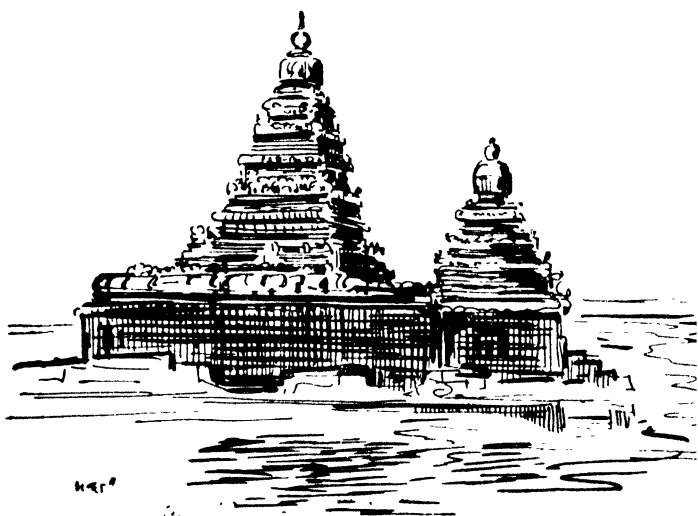
तमिऴ की संतवाणी अथवा नीति-साहित्य

प्रो० टी० पी० मीनाक्षिसुन्दरन

1. विषय प्रवेश

'सन्तवाणी' नाम क्यों ?

इस व्याख्यान के हिन्दी नाम 'सन्तवाणी' ने मुझे तमिल साहित्य के इतिहास पर एक नये दृष्टिकोण से सोचने के लिए प्रेरित किया। मैंने समझा कि 'सन्तवाणी' शब्द कबीर आदि कवियों की रहस्यवादी कविता के लिए प्रयुक्त है, जब कि तुलसीदास आदि की कविता 'भक्तिवाणी' है। शायद यह वैषम्य उन दोनों के दृष्टिकोण की विभिन्नता को बतलाता है जो ब्रह्म को 'निर्गुण' अथवा 'सगुण' रूप में देखते हैं। मुझे बताया गया है कि कुछ कारणों से नीतिकाव्य को 'सन्तवाणी' नाम से पुकारना उचित है। इसके अलावा मैं सोचने लगा कि हिन्दी-साहित्य में जो भेद-भाव किया गया है क्या वह तमिल साहित्य में भी मान्य हो सकता है। तब मेरे मन में यह विचार आया कि कुछ साहित्य ऐसा है जिसे नैतिक रहस्यवाद का नाम देना ठीक होगा और कुछ को धार्मिक रहस्यवाद कहना ठीक होगा। तमिलनाड की 'पतिनेन्-कील कणक्कु' और अन्य नीतिकविताएँ नैतिक रहस्यवाद की श्रेणी में आयेंगी और शैव नायन्मार् तथा वैष्णव आलवारों की रचनाएँ धार्मिक रहस्यवाद की श्रेणी में। शायद महाकाव्यों को भी इन दो वर्गों में बांटा जा सकता है। जैन महाकाव्य—विशेषतः 'यशोधर काव्यम्' सरीखे पिछले महाकाव्य नैतिक

तत्व प्रतिपादन के द्वारा ही हमें आकृष्ट करते हैं और उनकी कथावस्तु तथा चरित्रचित्रण भी नीति परक है, जबकि तमिलनाड के रामायण आदि महाकाव्य 'भक्तिकाव्य' हैं।

दो धाराएँ—

इसलिए कविता में नीतितत्त्व को महत्त्व प्रदान तमिल साहित्य की अपनी विशेषता है। शायद इसका कारण तमिल साहित्य पर जैन और बौद्धधर्म का प्रभाव है। संघकाल में भी 'उलोच्चनार' सरीखे जैन कवि और 'इलम् पोतियार' जैसे बौद्ध कवि थे, किन्तु संघोत्तर काल के तमिल साहित्य में ही वास्तविक बौद्ध जैन प्रभाव परिलक्षित होता है। वस्तुतः जैन और बौद्ध दोनों महान प्रचारक धर्म हैं। उनमें परमात्मा और निर्वाण की चर्चा है किन्तु समस्त विश्व में आस्तिक शब्द का जो अर्थ होता है उस अर्थ में उन्हें आस्तिक नहीं कहा जा सकता। उनका परमात्मा वस्तुतः मनुष्यों की आत्मा द्वारा प्राप्त किये हुए पूर्णत्व का ही नाम है। किन्तु हम देखते है कि आन्दोलन के परिणामस्वरूप कुछ जैन और बौद्ध कवियों ने पूर्णत्व प्राप्त आत्माओं के प्रति अपने हृदयोद्‌गार अर्पण किये हैं। किन्तु यह अन्य आस्तिक धर्मों में पाये जाने वाले परमात्मा पर पूर्ण भरोसे तथा आत्मसमर्पण मे भिन्न है। इन आस्तिक धर्मों का परमात्मा पूर्ण प्रेममय है, वह संसार और प्राणियों को सदा अपनी मौलिक दिव्य करुणा द्वारा बचाने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार, जैसे कि मैंने प्रारम्भ में ही बतलाया था, साहित्य की दो विभिन्न धाराएँ हो गई हैं, जिनमें से एक को नैतिक रहस्यवाद की कविता कह सकते हैं और दूसरी को धार्मिक रहस्यवाद की कविता।

2. नीति साहित्य का महत्व

2 (क) इस साहित्य का आधुनिक पाठ्यक्रम और इतिहास

विश्वविद्यालयों और कालेजों में तमिल के अध्ययन के पाठ्यक्रम

पर दृष्टिपात करने से इस नैतिक साहित्य का महत्व हमारी समझ में आ सकता है। हमारे यहाँ शिशुगीतों और बालकविता के अभाव के कारण अब भी हमारे बच्चे नीति सूत्रों के इन पद्यों का आनन्द लेते हैं। नीति ग्रन्थों का परिचय देते समय इस प्रकार के साहित्य के इतिहास पर दृष्टिपात करना चाहिए।

(1) **आत्तिच्चूडी**—तमिल भाषी बच्चा सबसे पहले आत्तिच्चूडि नामक पद्यपुस्तक को कंठस्थ करता है। इस पुस्तक के द्वारा वह तमिल-भाषा की वर्णमाला सीखता है। इसका प्रत्येक सूत्र मोटे तौर पर दो चरणों का है, प्रत्येक चरण में साधारणतः दो वर्ण हैं और प्रत्येक दो मात्राओं का है। इन सूत्रों के आद्यक्षर तमिल वर्णमाला के अकारादिक्रम से हैं। अब हमारा ध्यान उस पद्धति की ओर जाता है जिससे अंग्रेज़ बच्चा वर्णमाला सीखता है। वह याद करता है 'ए' ऐरोज़ (बाण) के लिए है और 'बी' वोज़ (धनुष) के लिए आदि। इसे देखते ही हमारा ध्यान तुरन्त अंग्रेज़ी पद्धति और तमिल पद्धति के महान अन्तर की ओर जाता है। जबकि अंग्रेज बच्चा आरम्भ से ही धनुष, बाण आदि से भरे लड़ाई-झगड़े और संघर्ष के वातावरण में रहना सीखता है, तमिल शिशु पुस्तक के आरम्भ से ही नीति और धर्म की दुनिया में प्रवेश करता है और इस प्रकार प्रेम, सदाचार, संयम, समाज-सेवा, परोपकार आदि की भावनाएँ सीखता है। पहला सूत्र है 'अरम् चेय विरुम्बु', जिसका अर्थ है धर्म करने की इच्छा कर। फिर आता है 'आरुवदु चिनम्', (क्रोध की अग्नि) को बुझाना चाहिए'। फिर है 'इयलवदु करवेल्'।

(2) **कोन्रैवेन्दन्**—जब शिशु इन छोटे सूत्रों की लय से परिचित होकर तमिल पद्यों की इन छोटी पंक्तियों को अच्छी तरह सीख लेता है, तब उसके बाद वह अधिक लम्बे सूत्रों वाली एक पुस्तक पढ़ता है। इस पुस्तक के सूत्र भी अकारादि क्रम से हैं। इस पुस्तक का नाम 'कोन्रै-वेन्दन्' है। इसकी प्रत्येक पंक्ति में चार चरण हैं और प्रत्येक चरण में दो पद हैं किन्तु ये पद साधारणतः 'आत्तिच्चूडि' के पदों की अपेक्षा अधिक

कठिन और लम्बे हैं । इस दूसरी पुस्तक की प्रथम पंक्ति है 'अन्मैयुम् पितावुम् मुन्नरी दैवम्' माता और पिता वे परमात्मा हैं जो पहले जाने जाते हैं । इन दोनों पुस्तकों के नाम अपने आरम्भ में आने वाली प्रार्थना के शब्दों के ऊपर पड़े हैं, अर्थात् उनकी प्रारम्भिक प्रार्थनाएँ जिन शब्दों से शुरू होती हैं, वही उनके नाम पड़ गये हैं ।

अव्वैयार—एक परम्परा—इन सूत्रों को और उनके द्वारा तमिल वर्णमाला को सीखने के बाद शिशु अन्य नीति कविताओं का अध्ययन करते हैं । ये कविताएँ भाषा और भाव की दृष्टि से कठिनतर होती जाती हैं । इनमें उपमाओं और रूपकों के द्वारा शिशु के मन में नीतितत्व बैठा दिये जाते है । इसी प्रकार की दो कविताओं के नाम हैं 'नल्वलि' और 'वाक्कुण्डाम्' नल्वलि का अर्थ होता है 'सन्मार्ग' ।' ये सब अव्वैयार् नामक कवयित्री-लिखित बताये जाते हैं । 'अव्वैयार' का अर्थ होता है माता । कभी-कभी इस शब्द का अर्थ जैन भिक्षुणी होता है । किन्तु अब वह शब्द उस आदर्श मानवीमाता के आध्यात्मिक और नैतिक व्यक्तित्व को प्रकट करता है, जिसने पारिवारिक बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करके सबसे तादात्म्य स्थापित कर लिया है, जो सम्पूर्ण मानवता के कल्याण के लिए यत्नशील है, जिसका हृदय दीन और ज़रूरत-मन्दों की सहायता के लिए करुणा से ओतप्रोत है । तमिलनाड की श्रेष्ठ परम्पराओं के अनुसार प्रत्येक तमिल-भाषी की आँखों के सामने अव्वैयार का यह चित्र उपस्थित होता है । किन्तु आधुनिक गवेषणा से मालूम हुआ है कि संघकाल से लेकर इस प्रकृति और नाम वाली अनेक व्यक्तियाँ हुई होंगी । तमिल परम्परा के अनुसार अव्वैयार का व्यक्तित्व नैतिक रहस्यवादिनी स्त्री का व्यक्तित्व है ।

(3) **नीति वेण्बा**—'नीति वेण्बा' सरीखे पिछले ग्रन्थ भी इसी पवित्र नाम की कृति बतलाये जाते हैं । यद्यपि इस प्रकार के ग्रन्थ अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं, और सम्भवतः अनुवाद हैं, उनमें से कुछ निश्चय से सस्कृत से अनुवाद हैं, उन सबकी विशेषता यह है कि वे सब 'वेण्बा'

नामक छन्द में हैं। यह छन्द कुछ हद तक हमारे मन में लययुक्त भाषा—विशेषत: उपदेश की भाषा—उपस्थित करता है।

(4) **उलगनीति**—एक और ग्रंथ 'उलगनीति' है जिसका अर्थ है 'संसार की नीति'। इसमें प्रत्येक पंक्ति निषेध के रूप में है। उदाहरणार्थ 'एक भी दिन बिना पढ़े (स्वाध्याय किये बिना) न रहो, किसी के विषय में भी बुरी बातें न कहो।'

(5) **वेट्रि वेर्के**—इस पद्यावली का लेखक सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम भाग का तिरुनेलवेली के पाण्ड्यवंश का एक राजा था। कहते हैं कि रामपाण्डियन् ने यह पुस्तक लिखी है। प्रथम पद्य में आने वाले 'वेट्रिवेर्कै' शब्दों के ऊपर इस पुस्तक का नाम भी 'वेट्रिवेर्कै' पड़ गया है। इसका दूसरा नाम है 'नरुन्तोगै' (जिसका अर्थ है नीतिश्लोकों का सुगन्धित सग्रह)। इस पुस्तक का आरम्भ 'जिसने हमें अक्षर सिखलाये हैं, वह वस्तुत: परमात्मा है' इन शब्दों से होता है। यह पुस्तक काव्य-सौन्दर्य से परिपूर्ण है। इसकी कविता की भव्यता निराली है। ऊपर निर्दिष्ट वेण्बा-संग्रह को पढ़ने से पहले बच्चे 'उलगनीति' और 'वेट्रिवेर्कै' पढ़ते हैं।

(6) **नल्वलि**—वेण्बा में चार चरण होते हैं। 'नल्वलि' अधिक सरल है और सम्भवत: 'वाक्कुण्डाम्' से पीछे की है। 'नल्वलि' के अनुसार दो जातियाँ है—बड़ों की जाति और नीचों की जाति। बड़े वे हैं जो अपना सब-कुछ मुक्त-हस्त से दूसरों को दे देते हैं और नीच वे है जो लालची हैं। उसमें सरल उपमाएँ भी है, यथा 'नदी सूख जाने पर भी, तल के नीचे छिपी जलधारा से प्यासे मनुष्यों और पशुओं की प्यास बुझाती है, यद्यपि इसके लिए उसे खुदने का कष्ट उठाना पड़ता है। इसी प्रकार महान् व्यक्ति स्वयं कष्ट में होने पर भी, और दूसरों की सहायता में अपार कष्ट उठाने पर भी दूसरों की मदद करते हैं।' यह बहुत अच्छा उदाहरण है।

(7) **वाक्कुण्डाम्**—'वाक्कुण्डाम्' भी एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, किन्तु

जैसा कि हम पहले ही बतला चुके हैं, यह अपेक्षाकृत बहुत पुराना है, अतः इस शताब्दी के लोगों के लिए इसकी तमिल की शैली और मुहावरा बहुत अधिक कठिन है। उदाहरण देखिए—'अच्छे कर्म का परिणाम सदा अच्छा होता है। इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं। हम नारियल के पौधों की जड़ों को पानी देते हैं, किन्तु समय पाकर वह बड़ा और मजबूत पेड़ बनकर अपने सिर पर नारियल के गुच्छों की कृतज्ञतापूर्ण भेंट के रूप में अपने मालिक को जड़ में दिये हुए पानी के बदले में उससे सौ या हजार गुना लौटा देता है।" भाव-प्रवाह में गम्भीरता होते हुए भी नीति के सिद्धान्त इस तरह बताये गये हैं कि वे बच्चों को बिलकुल युक्तिसंगत प्रतीत होते हैं और उनका महत्त्व उनके मन में बद्धमूल हो जाता है।

(8) **सत्रहवीं शताब्दी का नन्नेरि**—कुछ अन्य लेखकों ने भी इसी शैली की पद्य-रचना की है। इन्हीं में सत्रहवीं शताब्दी के शिवप्रकाश नामक कवि विरचित 'नन्नेरि' नामक ग्रन्थ की गिनती है। नन्नेरि का अर्थ है 'सत्पथ'। यह भी वेण्बा छन्द में है। यद्यपि इसकी शैली सम्भाषण शैली नहीं है, बल्कि कवि के युग के अनुकूल साहित्यिक शैली है। इन ग्रन्थों में बच्चों को नीति के सिद्धान्त समझाने के लिए पौराणिक कहानियों का भी उपयोग किया गया है। एक उदाहरण लीजिए—"दुनिया में बाह्य रूप का नहीं बल्कि अन्दर के भाव का ही महत्त्व है। कामदेव ने शिवजी पर फूलों की ही बाण के रूप में वर्षा की, उसको शिवजी ने जला दिया। और चक्किय नायनार नामक सन्त ने भगवान पर पत्थर फेंके, क्योंकि उस बौद्ध युग में वह इसी ढंग से भगवान् की पूजा कर सकता था, और भगवान् ने उसका स्वागत किया।"

(9) **सोलहवीं शताब्दी का 'नीतिनेरि विलक्कम्'—उसका महत्त्व**—इसके बाद बच्चे 'नीति नेरिविलक्कम्' (नीतिमार्ग प्रकाश) पढ़ते हैं। यह पुस्तक सोलहवीं शताब्दी के धर्मपुरम् मठ के श्री कुमरकुरुपर स्वामी ने रची है और इस प्रकार वह उपर्युक्त शिवप्रकाश स्वामी से पूर्वकालीन

युग की है। कुमरकुरपरजी ने बनारस में एक मठ स्थापित किया था और उन्होंने खूब देश-भ्रमण किया था। उनकी पुस्तक 'तिरुक्कुरल' का सार स्वरूप है, और उन्होंने संन्यासी होने के नाते उसका 'कामत्तुप्पाल' नामक तृतीय भाग छोड़ दिया है। अर्थशास्त्र में भी उनका विशेष प्रवेश नहीं था, जबकि तिरुवल्लुवर ने उस पर खूब लिखा है। किन्तु उन्होंने हरएक बात पर व्यक्तिगत नैतिक दृष्टिकोण से विचार किया है। उस अशान्तिमय युग में, जबकि धनी लोग सदा धर्म-मार्ग पर ही नहीं चलते थे किन्तु अपने नीति-मार्गोल्लंघन के दोष को ढकने के लिए मठों और मन्दिरों को बड़े-बड़े दान दे देते थे, कुमरकुरुपर जैसे धार्मिक व्यक्तियों ने नैतिक दृष्टिकोण पर जोर देने की आवश्यकता अनुभव की। इसलिए यह कहना युक्तिसंगत नहीं है कि धार्मिक व्यक्ति नीति-तत्त्वों पर पर्याप्त बल नही देते थे, क्योंकि हिन्दू विचार-परम्परा के अनुसार विकसित आत्मा नीति की दुनिया से परे पहुँच जाती है। हम प्रायः भूल जाते हैं कि आत्मिक उन्नति के प्रारम्भ में धार्मिक व्यक्ति को नीति-कार्यों का अभ्यास हो जाता है, उसको उसके पश्चात् अपने सत्कर्म का भान नहीं रहता और इसी प्रकार वह नैतिकता से परे पहुँच जाता है, न कि उसके निषेध द्वारा। इस प्रकार धार्मिक क्षेत्र में भी 'नीति नेरिविलक्कम्' का महत्त्व सरलता से समझा जा सकता है। अतः दूसरों पर उसका प्रभाव वस्तुतः महान था। यह ग्रन्थ 'नन्नेरि' के समान प्राचीन उच्च साहित्यिक शैली में है। ग्रन्थकार ने उसे अपनी भव्य उपदेश-शैली में लिखा है, अतः वह कहीं अधिक उच्च श्रेणी की शैली में है। इन श्लोकों के सब शब्द सरल देशज तमिल के हैं, यद्यपि वे साहित्यिक परम्परा से पूर्ण हैं अतः ये श्लोक बहुत सुबोध हैं।

(10) **विजयनगर काल के चातक**—बच्चे और भी कुछ नीति-कविताओं को पढ़ते हैं। शायद विजयनगर साम्राज्य और इस काल के आन्ध्र से सम्पर्क के कारण बहुत-से 'चातक' अथवा 'नीतिग्रन्थ' लिखे गये। इनमें से प्रत्येक में सौ लम्बे श्लोक होते थे। इनमें सांसारिक

बुद्धिमत्ता दिखलायी गयी है और उसे सदा आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों पर बल देने तक ही सीमित नहीं किया गया। उनमें प्राय: अच्छी आदतों और प्रथाओं का वर्णन है, यद्यपि वे सांसारिक बुद्धिमत्ता से पूर्ण हैं। ये बच्चों के लिए बहुत रोचक और मनमोहक नहीं हैं। अपनी विद्वत्ता दिखलाने वाले प्रौढ़ व्यक्ति उन्हें अधिक पसन्द करते हैं। वे प्राय: हैमलेट में पोलोनस के भाषण के समान लगते हैं। अर्थात् उनमें उस वास्तविक नैतिक प्रेरणा की कमी है जिसने अव्वैयार आदि की कृतियों को इतना सजीव और सच्चा बना दिया है।

(11) **नालडियार और कुरल**—इसके बाद बच्चे 'नालडियार' पढते हैं। यह कविता भी वेण्बा छन्द में है और अन्त में वे 'तिरुक्कुरल' पढ़ते हैं। अन्तिम श्रेणियों में महाकाव्यों, गीतों और तमिल साहित्य की अन्य कविताओं का अध्ययन किया जाता है। आधुनिक पाठ्य-प्रणाली में भी 'तिरुक्कुरल' इस अध्ययन का शिरोमणि होता है। हमारे बच्चे इस महान अमर कृति के कुछ भाग मिडिल स्कूल की प्रथम श्रेणी से लेकर बी० ए० वा बी० एस-सी० तक पढ़ते रहते हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि तमिलनाड में बच्चों को ये नीति काव्य ग्रेजुएट होने तक पढ़ाये जाते हैं।

2 (ख) आधुनिक काल में आत्तिच्चूडि की परम्परा

हमारे राष्ट्रीय तमिल कवि भारती और उनके शिष्य भारतीदासन् ने वर्तमान युग में आत्तिच्चूडि के दो नवीन संस्करण लिखे हैं। यद्यपि ये दोनों विभिन्न क्षेत्रों में हैं, किन्तु उनसे वर्तमान पीढ़ी के मन पर भी आत्तिचूडि ने जो विशिष्ट स्थान बना लिया है उसकी एक झलक हमें मिल सकती है। उन दोनों ने एक-एक कविता लिखी है जिसका नाम उन्होंने 'पुदिय आत्तिच्चूडि' (नवीन आत्तिच्चूडि) रखा है। ये दोनों अव्वैयार की प्राचीन आत्तिच्चूडि की शैली में हैं। भारती ने नवीन राष्ट्रीय चेतना पर बल दिया है और भारतीदासन् ने नवीन जगत् के

स्वाभिमानी नागरिकों के नवीन समाज के लिए नये नीति-नियम बनाये हैं।

3 (क) संघकाल की कविता में आचार

(1) संघकालीन कविता

शायद यह कहना युक्तिसंगत होगा कि नैतिक रहस्यवाद उतना ही पुराना है, जितना कि प्राचीन तमिल साहित्य, क्योंकि प्राचीनतम संघ-कालीन साहित्य में उस ढंग की कविता हमें देखने को मिलती है। संघकालीन साहित्य स्वतन्त्र फुटकर पद्यों का समूह है, जिन्हें उस आदिम काल के महान कवियों ने गाया था। उस काल के और उससे उत्तर काल के गुणग्राहकों को इन पद्यों में से जो सर्वोत्तम जँचे, उन्हें उन्होंने आठ संग्रहों के रूप में इकट्ठा किया, जिनमें तीन से लेकर बत्तीस तक पंक्तियाँ है। दस लम्बी कविताओं का एक और संग्रह है, जिनमें कम-से-कम 103 पंक्तियाँ है। संघकाल में किसी महाकाव्य वा प्रबन्ध-काव्य की रचना नहीं हुई, जो हम तक पहुँचा हो।

(2) नाटकीय एकभाषित

तमिल का प्राचीनतम महाकाव्य 'सिलप्पदिकारम' या तो संघकाल के अन्त में, अथवा संघकाल से अगले काल के प्रारम्भ में रचा गया। संघ-काल की कविताएँ नाटकीय एकभाषित है जिनमें कवि ने अपनी कल्पनानुसार, किन्तु इस तरह जैसे उसने स्वयं उस नाटकीय घटना में भाग लिया हो, एक मौलिक मानवीय घटना का चित्रण किया है।

(3) अन्तरंग की कविता

संघकाल के कवियों ने अपनी कविताओं को 'अन्तरंग' और 'बहि-रंग' इन दो श्रेणियों में विभाजित किया है जिन्हें तमिल में 'अहम्' और 'पुरम्' कहते हैं। अन्तरंग की कविता आन्तरिक दृष्टिकोण से आत्माभि-

व्यक्ति का प्रयत्न करते हुए मानवीय मस्तिष्क और हृदय की आभ्यन्तरिक दुनिया का गीत गाती है। इस आभ्यन्तरिक दुनिया का महान आधारभूत सिद्धान्त वा सत्य प्रेम है और यह प्रेम कवि-कल्पना के विविध दृष्टिकोणों से भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होता है। कविता को मूर्तरूप चाहिए, इसलिए प्रेम के इस आदर्श अन्तरंग के आधारभूत पहलुओं के चित्रण के लिए प्रियतमा के प्रेम का चित्रण किया जाता है। हम वहाँ एक आदर्श संसार में प्रवेश करते हैं, जहाँ दो आत्माएँ मानो आन्तरिक आवाज़ से वा प्रकृति-नियम से या भाग्य से प्रेरित होकर एक साथ रहने के लिए आती हैं और तदनन्तर उन दोनों का जीवन मिलकर एक हो जाता है। एक कवि के शब्दों में वे उस कल्पित पक्षी के समान हैं जिसके दो सिर होते हैं किन्तु आत्मा एक ही होती है। प्रेम के इस संयोग का भौतिक पहलू भी है, किन्तु राजनीति, शिक्षा, आध्यात्मिक उन्नति और समाजोन्नति के विविध क्षेत्रों में समाज और समस्त विश्व के हित के लिए आत्मार्पण का जीवन व्यतीत करने में ही उसका गौरव है। इस कविता का क्षेत्र विश्वव्यापी है। उसमें आनेवाला नायक वा कोई व्यक्ति ऐतिहासिक या पौराणिक व्यक्ति नहीं है। एक दृष्टि से आन्तरिक दृष्टि से युक्त कोई मानव भी उस कविता के नायक वा नायिका की पदवी प्राप्त कर सकता है। इस संसार का बहिरंग भी वहाँ विद्यमान है, किन्तु वह उन लोगों के लिए जो इन प्रेम-कविताओं का महत्व दूसरे ढंग से नहीं समझ सकते इन कविताओं के स्थलों और गम्भीरतर अर्थों को सुझाने के लिए मानव-प्रेम के इस महान नाटक की पृष्ठभूमि मात्र के रूप में ही है।

(4) बहिरंग की कविता

अन्तरंग की इस कविता के मुकाबले में दूसरी ओर बहिरंग की कविता है, जिसमें कि ऐतिहासिक वा पौराणिक व्यक्ति आते हैं। पौराणिक व्यक्ति भी ऐतिहासिक व्यक्तियों की कोटि में ही हैं, क्योंकि वेष

और मानव-जीवन के आचार-विचार की दृष्टि से वे भी प्राचीनों की श्रेणी में ही आते हैं। पुरम् कविता का आधार यही रूप है, जिसमें कि युग के महान पुरुषों और स्त्रियों ने विशेषत: अपने मित्रों के प्रति और सामान्यत: विश्व के लोगों के प्रति अपने सन्देशों में विश्व के आदर्शों को प्रकट किया है। अन्तरंग की दुनिया भी वहाँ है, किन्तु इन पद्यों का आरम्भ उससे नहीं होता। यह दुनिया अलंकरण के लिए और विविध मनुष्यों के महत्त्व पर बल देने के लिए आती है। इस कर्मशील दुनिया के विविध क्षेत्रों में विविध व्यक्ति महत्वपूर्ण पदों पर हैं, वे अपना-अपना कर्तव्य करते है, उनकी सेवाओं में उच्च-नीच की भावना नहीं है।

(5) विजय की कल्पना

जो मनुष्य समाज के कल्याण के लिए अपने कर्तव्य का, चाहे वह कितना ही निम्न कोटि का हो, अपने विरुद्ध खड़ी हुई शक्तियों से संग्राम करके सफलता से पालन करता है, वह उस युग की सर्वोच्च परम्परा के अनुसार 'वागै' प्राप्त करता है अर्थात् जीवन-संग्राम में विजय लाभ करता है। जहाँ इस प्रकार संग्राम नहीं करना पड़ता और वह जीवन में सफल समझा जाता है, उस स्वाभाविक सफलता को 'मुल्लै' कहते है। इस प्रकार हम देखते है कि हम चाहे अन्तरंग की कविता को लें और चाहे वहिरंग की, उस युग की कविताएँ हमारे सामने, चाहे अन्तरंग दृष्टि से हों चाहे वहिरग दृष्टि से, आदर्श मानव जीवन को चित्रित करती है। अर्थात् उनसे हमें नैतिक रहस्यवाद की कविता मिलती है, जिसमें कि कोई भी वस्तु आदर्श मनुष्य के जीवन से अधिक मूल्यवान नहीं है, जो कि प्रेम के आधारभूत सिद्धान्तों से प्रेरित होकर जीता और इस तरह धर्म के विश्वव्यापी जीवन से अभिन्न हो जाता है।

3 (ख) इस परम्परा की जैन व्याख्या

हम पहले कह चुके हैं कि जैन और बौद्ध इस प्राचीन कविता की

तिरुक्कुरळ के रचयिता सन्त तिरुवळ्ळुवर

गम्भीरतर स्फूर्ति से लाभ उठाते थे और इसलिए उससे उत्तर काल की तमिल कविता मुख्यत: नीति-प्रधान हो गयी। एक और दृष्टिकोण से भी संघ-काल की कविता केवल प्रेम की मानव-भावुकता की कविता तथा युद्धक्षेत्र में मानव-शौर्य की कविता समझी जा सकती है। जैन और बौद्ध स्वभावत: इस व्याख्या से बचना चाहते थे। इसलिए उन्होंने संघ-काल के कवियों द्वारा अपनी कविता में प्रतिष्ठापित प्रेम और बलिदान के आदर्श जीवन की सुदृढ़ नींव पर कविता का भव्य भवन-निर्माण करने का प्रयत्न किया। इस प्रकार अगला युग नैतिक सूत्रश्लोकों का युग है।

4 नैतिक सूत्रों का युग

सामान्य परिचय

(अ) अठारह-अठारह कविताओं के दो संग्रह—हम पहले बतला चुके हैं कि संघकाल के आठ कविता-संग्रह ऐसे थे जिनमें कि प्रत्येक कविता में ३२ से अधिक पंक्तियाँ नहीं थीं और दस लम्बी कविताओं का एक और संग्रह था। इन दस और आठ संग्रहों को मिलाकर उत्तर-कालीन पीढ़ियों ने 'अठारह मेल कणक्कु' (अठारह उच्च गणना) का नाम दिया। इन अठारह के साथ ही और भी अठारह पुस्तके थी जो कि 'अठारह कील कणक्कु' (अठारह निम्न गणना) कहलाती थीं। उच्च और निम्न का अर्थ स्पष्ट नहीं है। शायद उनका अर्थ अपेक्षाकृत प्राचीन और नवीन था, या उनसे बाह्य और आभ्यन्तर का अभिप्राय था, या बहीखाते की शब्दावली का प्रयोग करते हुए, जिसमें एक खाताबही होती है और एक रोकड़बही, एक में मानव-जीवन का अन्तिम और ब्योरेवार लेखा है और दूसरे में संक्षिप्त लेखा। इन अन्तिम शब्दों का संघकाल की कविता तथा उत्तरकालीन काल की नैतिक कविता के लिए आलंकारिक अर्थों में प्रयोग किया गया है ऐसा समझना चाहिए।

(ख) नीति-अष्टादशी

(ख 1) **तिरुक्कुरल-सामान्य परिचय**--अठारहों नीतिग्रन्थों का महत्त्व वा कोटि समान नहीं है। इनमें सर्वोत्तम निःसन्देह तिरुवल्लुवर-लिखित 'तिरुक्कुरल' है। तमिल में कुरल दो पंक्तियों में लिखे जाने वाले छन्द का नाम है जिसमें कुल मिलाकर सात चरण होते हैं। 'तिरु' नाम के आगे आदरार्थ जोड़ा जाता है, जो संस्कृत शब्द श्री का स्थानापन्न है। इस प्रकार कुरल शैली में लिखा होने से इसका नाम तिरुक्कुरल पड़ा है। इस महान लेखक वल्लुवर के विषय में परम्परागत कुछ दन्तकथाओ के अलावा कुछ भी ज्ञात नही है। इस ग्रन्थ में 1330 दो पंक्तियों वाले पद्य हैं। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों की विवेचना करने के कारण इस पुस्तक का दूसरा नाम 'मुप्पाल्' (त्रिवर्ग) भी है। त्रिवर्ग की भारतीय विचार-परम्परा प्रसिद्ध ही है।

'अहम्' का व्यापक अर्थ—जीवन के मूल्य वा लक्ष्य की इस विचार-परम्परा में मोक्ष का पृथक् विवेचन नहीं है, क्योंकि बौद्धों और जैनों के विचारानुसार मोक्ष धर्म के सामान्य अर्थ के ही अन्तर्गत है। जीवन के लक्ष्य केवल तीन होने की यह विचार-परम्परा हिन्दुओं को भी मान्य है क्योंकि महाभारत में मोक्ष धर्म की विवेचना है। तमिल में 'अरम्' संस्कृत 'धर्म' शब्द का समानार्थक है और हमें 'धर्म' के समान 'अरम्' शब्द को भी व्यापक अर्थ में लेना चाहिए, और इस प्रकार, जैसे कि प्राचीन टीकाकार परिमेललगर ने भी बताया है, मोक्ष भी 'अरम् के ही अन्तर्गत है। महान ग्रन्थ ब्रह्मसूत्र के अन्तिम सूत्र में उस अन्तिम स्थिति का कथन है जहाँ से लौटना नहीं होता और तिरुक्कुरल के अरत्तुप्पाल (धर्मविषयक अध्याय) का अन्तिम श्लोक भी (यदि हम ऊल् को छोड़ दें) उपसंहार के रूप में उस अन्तिम दशा को बतलाता है जहाँ से वह खिसककर नहीं आता अर्थात् वह दशा, जहाँ कि वह सब चीजों की वासना से मुक्त होता है।

(2) **काम (तमिल-अहम)**—तिरुवल्लवर का यह विश्वास नहीं है

कि प्रेम, विशेषत: पति-पत्नी का वास्तविक प्रेम, जो कि सच्चे प्रेम का ही एक विकास है, कोई गर्ह्य वस्तु है। उसका इस प्रेम की शाश्वत पवित्रता में विश्वास है। कवि ने जीवन के इस महान तत्त्व को मौलिक बतलाते हुए जिस ढंग से उस पर बल दिया है उससे यह स्पष्ट हो जाता है। यद्यपि उसकी विवेचना सबसे अन्त में की गयी है, किन्तु इससे उसके महत्त्व में कमी नहीं आती। उस युग में काम शब्द उन कुत्सित विचारों से दूर था, जिनसे उत्तर-काल में वह सम्बद्ध समझा जाने लगा। उस काल का काम महान पवित्रतम मानव रोमान्टिक प्रेम के ही समानार्थक था। वह आदर्श प्रेम था। हम पहिले ही बतला चुके हैं कि संसार और विश्व के हित के लिए भौतिक प्रेम महान् आध्यात्मिक सम्मिलन में परिणत हो जाता है। दैवी प्रेम की प्राप्ति उसी सीमा तक हो सकती है कि जिस सीमा तक वह हमारे इस संसार में प्राप्त किया जा सकता है, और ज्ञात से अज्ञात की ओर जाते हुए हम सब इस आदर्श प्रेम को मानव-प्रेम के उस ज्ञात क्षेत्र में आरम्भ होते हुए ही आसानी से समझ सकते हैं। साधारण शब्द अन्बु (प्रेम) तभी समझ में आ सकता है जब कि काम शब्द अपने सब सम्बद्ध विषयों के साथ अच्छी तरह समझ में आ जाय। काम वा प्रेम की विवेचना करने वाला तिरुक्कुरल का तृतीय भाग हमें संघ-काल की अहम् कविता की याद दिलाता है। इसलिए हमें इस पुस्तक के इस भाग में अन्तरंग की कविता मिलती है। संघ-कालीन पद्यों के समान इनमें से प्रत्येक दोहा (दो पंक्ति का पद्य) नाटकीय एक-भाषित है। उसमें हमें विषयासक्ति के सम्पर्क से सर्वथा विशुद्ध आदर्श प्रेम की जिस उच्चकोटि की कविता का दर्शन होता है, वैसी संसार में और कहीं नहीं मिल सकती।

हमने सुना है कि डॉक्टर पोप और डॉक्टर ग्रौल ने उत्तरकाल में इस सुन्दर शब्द काम के साथ कुछ अन्य बातों का सम्बन्ध स्थापित हो जाने के कारण उससे विरक्त होकर पहले-पहल इस पुस्तक के उस भाग को पढ़ने से भी इनकार कर दिया। अपने तमिल अध्यापकों के बहुत

समझाने पर उन्होंने पुस्तक का वह भाग पढ़ा, और तब उन्हें मालूम हुआ कि इस पुस्तक में पवित्र आदर्श मानव-प्रेम की विवेचना कितने सुन्दर और अनुपम ढंग से की गयी है। वल्लुवर लिखित इस तमिल कामशास्त्र तथा संस्कृत में महर्षियों द्वारा लिखित काम शास्त्र तथा काम-सूत्रों में यही भेद है। संस्कृत कामशास्त्रों में मानव के मनोविकारों और भौतिक सुखों का विवेचन मानव-जीवन के मूल्यों का विचार रखे बिना वर्णनात्मक और बहिरंग दृष्टि से किया गया है। उनका दृष्टिकोण वैज्ञानिक है। किन्तु तिरुवल्लुवर ने प्रेम के मूल्यों का विचार रखकर आदर्श दृष्टिकोण से विवेचन किया है। किन्तु उसने स्मृतियों के समान बहुत से नियम नहीं बनाये। उसने नाटककार और कवि के समान प्रेम के आदर्श जीवन का चित्रण किया है। प्राचीन संघकाल के कवियों का भी यही दृष्टिकोण था। और अतः तिरुवल्लुवर ने उसी प्राचीन परम्परा का अनुसरण किया है।

अन्य भाग भी नाटकीय एकभाषित हैं—हमें इस पुस्तक के धर्म और अर्थ की विवेचना करने वाले बाकी दो भागों पर भी शायद उसी दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। उनके दोहों की व्याख्या भी हमें उन्हें नाटकीय एकभाषित समझकर करनी चाहिए। किन्तु यदि उन्हें नाटकीय एकभाषित समझा जाय तो, जिस प्रसंग में ये दोहे कहे गये उस की कल्पना करना, जिससे कि हम इस संसार में कवि द्वारा अनुभूत धर्म और अर्थ के आभ्यन्तर कवित्वमय चित्र की व्याख्या कर सकें, बहुत कठिन है। इसी कठिनाई के कारण बहुधा यह प्रश्न पूछा जाता है कि क्या ये दो पहले भाग वस्तुतः कविता हैं। वहाँ भी इन दोहों में परस्पर सम्बन्ध नहीं हैं, और कल्पना द्वारा कवि की ठीक भावना के जगत् में प्रवेश करके ही हम एक-दूसरे से असम्बद्ध मालूम होने वाले इन दोहों के आन्तरिक सम्बन्ध को समझ सकते हैं। सदाचार के संसार में इस नैतिक रहस्यवादी तिरुवल्लुवर ने आध्यात्मिक रूप से जो कुछ अनुभव किया और जो कुछ देखा उसे ही इनमें से प्रत्येक दोहा हमारे सामने रखता है,

उसी तरह से जिस तरह से कि कामत्तुप्पाल में तिरुवल्लुवर ने इस दुनिया में प्रेम के नैतिक सिद्धान्त को प्रकट किया। हम यहाँ एक उदाहरण देंगे। कवि ने देखा था कि लोग कितने यत्न से प्रेमपूर्वक अपने केशों की देख-भाल करते हैं किन्तु उसी केश के गिर जाने पर उसके प्रति अपनी पहले की सब ममता भूलकर उसे छूने से भी घृणा करते हैं। अन्यत्र यह वर्णन बिलकुल साधारण मालूम होगा। किन्तु जब कोई महान् और लोक-प्रिय व्यक्ति नीचे गिर जाता है तो स्त्री और पुरुष उसे धूल से भी तुच्छ समझते हैं, इस बात को वह बहुत अच्छे ढंग से दिखलाता है। दौड़-धूप से भरी इस आजकल की दुनिया में हम प्रत्येक दोहे का रसास्वादन इस तरह धीरे-धीरे किन्तु जीवनदायी ढंग से नहीं कर सकते।

कविता और नीतिशास्त्र—इन कवित्वपूर्ण पद्यों के इस प्रकार कल्पनापूर्ण अध्ययन से आचार की दुनिया में भी अब तक हमें अज्ञात कविता की एक नयी दुनिया के दर्शन होंगे। इसलिए वे दोहे केवल उपदेशप्रद पद्यमात्र नहीं हैं। वे कल्पना और दिव्य दृष्टि का वरदान प्राप्त एक महान् आत्मा के कवित्वपूर्ण उद्गार हैं, जिन्हें उसने अपने जीवन में अनुभव करके नैतिक रहस्यवाद की दुनिया को अपनी कविता में प्रकट किया था। इसलिए नैतिक जीवन की कवित्वपूर्ण अभिव्यक्ति के रूप में उनका मूल्य है।

(3) **अरम् (धर्म) भूमिका और उपसंहार**—मेरी सम्मति में पर-मात्मा, वर्षा, सन्तों और धर्म के महत्त्व सम्बन्धी चार अध्यायों को भूमिका समझना चाहिए और प्रथम पुस्तक के अन्तिम अध्याय को, जिसमें भाग्य की विवेचना है, उपसंहार समझना चाहिए। इनमें तिरुवल्लुवर के विचारानुसार नैतिक जीवन का मौलिक आधार बतलाया गया है, किन्तु वह उसे अपने पाठकों पर लादना नहीं चाहता, अतः उसने उसे पुस्तक के मुख्य भाग से पृथक रखकर एक अलग अध्याय में उसका विवेचन किया है।

मुख्य धर्म—अरत्तुप्पाल् में, जिसमें अरम् (धर्म) का विवेचन है,

घरेलू जीवन से प्रारम्भ किया गया है। घरेलू जीवन की विशेषता है प्रेम। जैसे कि हम पहले बतला चुके हैं, 'अन्बु' (प्रेम) का पूरा मतलब हम 'कामत्तुप्पाल्' का सन्देश समझे बिना नहीं समझ सकते। आप देखेंगे कि तिरुवल्लुवर मनुष्य के आदर्श जीवन का चित्र हमारे सामने उपस्थित करता है। प्रेम, जो कि विवाहित जीवन में प्राय: स्वाभाविक है, धीरे-धीरे अपना क्षेत्र व्यापक करता हुआ विश्व-प्रेम का रूप धारण कर लेवे। पुरुष और स्त्री प्रेम के द्वारा स्वार्थ को छोड़ देते हैं, वे अपने बच्चों से प्यार करने लगते हैं। पहले परिवार के हित से प्रारम्भ करके, और तदनन्तर अपने निजी स्वार्थों और हितों का विचार किये बिना ही जब वह स्वभाव बन जाता है तो वे गाँव, देश और अन्त में समस्त विश्व से प्यार करने लगते हैं। तिरुवल्लुवर ने प्रेम के इस बढ़ते हुए क्षेत्र में ही मधुरवाणी, कृतज्ञता, सदाचार, ईर्ष्या और असदाचरण का अभाव आदि धर्म के सब स्वरूपों का विवेचन करके उन पर बल दिया है। तब भी, जब कि इन उन्नत लोगों के विचार 'मेरा देश' और 'तुम्हारा देश' की सीमा के अन्दर ही रहते हैं, शीघ्र ही वह काल आ जाता है जब कि प्रेम इन सब सम्बन्धों की परवाह न करके सब तक पहुँचने लगता है। यहाँ कवि हमें उस मेघ की याद दिलाता है जो कि किसी सुदूर देश में उदय होकर अपने से कुछ भी सम्बन्ध न रखने वाले दूसरे दूरवर्ती देश में अपना सर्वस्व बरसा देता है। इन समुन्नत आत्माओं की यह प्रकृति बन जाती है कि वे जलाशय के समान, वा फल धारण करने वाले वृक्ष के समान दूसरों की सहायता करते हैं, जिनका जीवन ही अपना सब कुछ बिना थके दूसरों को देने के लिए है। अन्त में उस औषध वनस्पति का दृष्टान्त आता है जो कि रुग्ण स्त्री-पुरुषों को उनके रोगों और पीड़ाओं से मुक्त करने के लिए अपने पत्ते, शाखाएँ, फल और मूल, जो कि उसके प्राण और शरीर के समान हैं, दे देता है।

कीर्ति—अब वल्लुवर यश वा कीर्ति की विवेचना करता है। कुछ

दिव्य आत्माओं का नाम इस संसार के विविध कर्म-क्षेत्रों में उनके महान् कर्मों के कारण अमर हो जाता है, और संसार सदा उनकी गौरव-गाथा का गान करता है। यह कीर्ति उनके गौरव का शिखर है। इस प्रकार अमर होकर वे मृत्यु को जीत लेते हैं, यद्यपि उनका नश्वर शरीर मृत्यु का ग्रास बन जाता है। इस प्रकार हमारे सामने आदर्श मनुष्य का चित्र उपस्थित होता है, जो कि अपने आदर्श प्रेम के विस्तार के द्वारा मृत्यु के द्वार से चलकर अमरता के स्वर्ग में पहुँच जाता है, और इस दुनिया के सब प्राणियों के जीवन को मधुर और आनन्दमय बनाता है।

अरुल्-विश्वमानव की ओर प्रगति—इस स्थिति पर पहुँचकर मनुष्य वस्तुत: विश्व का नागरिक बन जाता है जहाँ कि 'मैं और मेरा' तथा 'तू ओर तेरा' के लिए कोई अवकाश ही नही रह जाता। जब मनुष्य इस द्वैध-भाव के परे पहुँच जाता है, तो वह विश्व का सच्चा नागरिक बन जाता है। तब 'अरुल' वा दया वा विश्व-प्रेम उसका गुण हो जाता है। अब उसके विश्व-प्रेम की धारा केवल मनुष्यों तक ही नहीं बहती, बल्कि सभी जीव उसके क्षेत्र में आ जाते हैं। वह अहिंसा की दुनिया में रहने लगता है। अहिंसा यहाँ कोई निषेधवाची शब्द नहीं है, बल्कि वह विश्व-प्रेम के भाव को प्रकट करता है और अहिंसा उसका चिह्न बन जाता है। इसी दृष्टिकोण के कारण यह विश्वमानव मांस-भक्षण के नाम से ही काँपता है। सत्य भी, जो कि एक दृष्टि से सब मानव आदर्शों का सार है, इस अहिंसा का एक महान् रूप-मात्र रह जाता है। सत्य वह है, जिससे इस दुनिया में किसी को कोई दु:ख नहीं पहुँचता। इस प्रकार आप देखेंगे कि यह उच्च स्थिति संन्यास नहीं है। यद्यपि तिरुवल्लुवर संन्यास के निम्नश्रेणी के त्याग की निषेधात्मक भावना के विरुद्ध नहीं है, उसका संकुचित 'अहं' का त्याग विधिस्वरूप है, जो कि अन्त में मनुष्य के विश्व-बन्धुत्व की स्थिति तक पहुँच जाने पर स्वभावत: विश्व से एकात्मकता वा उसमें लीन हो जाने में परिणत हो जाता है :

व्यावहारिक सूचनाएँ— यद्यपि तिरुवल्लुवर का दृष्टिकोण आदर्श-

वादी है, वह इस प्रकार का धार्मिक-जीवन बिताने के इच्छुकों को बड़ी व्यावहारिक सहायता देने को तैयार है। 'दूसरों से वैसा ही व्यवहार करो, जैसा कि तुम चाहते हो कि वे तुमसे करें।' यह प्राचीन कहावत संसार के सब साहित्यों में विद्यमान है। तिरुवल्लुवर ने भी यह व्यावहारिक मार्ग बतलाया है। वह आशावादी है। वह जानता है कि इस दुनिया में बुराइयाँ हैं, पर वह यह भी जानता है कि इस दुनिया में अच्छाई भी है। यह दुनिया जैसी भी है वैसी से ही हमें काम चलाना है। मधुर संगीत-झरी बहाने वाला बाजा आँखों को टेढ़ा दिखायी देता है। तिरुवल्लुवर का यह विश्वास भी है कि मनुष्य चाहे कितना ही पतित हो, वह कुछ-न-कुछ अच्छाई किये बिना रह ही नहीं सकता, जिससे कि हम उसके सब अपराधों को भूल जाते हैं और उससे प्रेम करने की प्रेरणा पाते हैं।

(4) **पोरुल्-अर्थशास्त्र-आधारभूत मानव दृष्टिकोण**—इस पुस्तक के द्वितीय भाग में समाजशास्त्र और राज्य-प्रबन्ध का विवेचन है। इस भाग का महत्त्व इस बात में है कि तिरुवल्लुवर ने राजनीति शास्त्र के आधारभूत सिद्धान्तों पर इस महान् विज्ञान के दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि मानव-जीवन के मौलिक आधार की दृष्टि से ज़ोर दिया है। उदाहरणार्थ अर्थशास्त्र के दूसरे लेखकों ने यह बताया है कि राजा वा शासक को अर्थशास्त्र, कानून और न्याय विभाग में किस प्रकार की शिक्षा प्राप्त करनी चाहिए। किन्तु तिरुवल्लुवर इससे कहीं गहरा गया है और उसने सभी मानवों के लिए शिक्षा के महत्त्व के कहीं अधिक मौलिक और मानवोचित प्रश्न को उठाया है, क्योंकि शिक्षा से ही मनुष्य की अन्तर्दृष्टि खुलती है। बाह्यचक्षु तो मांस का एक खंडमात्र है। जानवरों के भी आँखें और अन्य इन्द्रियाँ होती हैं। मनुष्य में और जानवरों में यही भेद है कि मनुष्य में शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता है। इस प्रकार वास्तविक मनुष्य-जीवन का जन्म शिक्षा से होता है। जब समस्त विश्व के दृष्टिकोण से इस पर विचार किया गया है, तो कभी-कभी हम यह भूल जाते हैं कि तिरुवल्लवर-

कृत शिक्षा के सिद्धान्तों के विवेचन और उस विवेचन-जन्य उसकी राजनीतिक विचारधारा में क्या सम्बन्ध है। पुनः जब तिरुवल्लुवर विदेशों से सम्बन्ध पर विचार करता है, तो वह इस विषय पर भी मित्रता के मानवीय दृष्टिकोण से ही विचार करता है, पर इस प्रकार शायद हम इस प्रकार के विवेचन के वास्तविक राजनीतिक और अन्तर्राष्ट्रीय मसलों को भूल जा सकते हैं, किन्तु इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि तिरुवल्लुवर ने राजनीति की पुस्तक में मेकियावेली और चाणक्य के कर्कश विज्ञान को मानवीय बना दिया है।

आधुनिक युग के लिए—इसी व्यापक दृष्टिकोण के कारण सर्वत्र राजतन्त्र ही के प्रचार के ज़माने में लिखी हुई भी उसकी राजनीति की पुस्तक आधुनिक युग में भी, जब कि राजतन्त्रों का सर्वोपरि महत्त्व लुप्त हो गया है, उपयोगी है। हमारे गणतन्त्रों और प्रजातन्त्रों के लिए भी यह पुस्तक उपयोगी है। सौभाग्य से तमिल भाषा के मुहावरे के अनुसार भाववाचक संज्ञा का पदार्थवाचक के लिए प्रयोग किया जा सकता है, और तिरुवल्लुवर ने इस सुन्दर तमिल मुहावरे का प्रयोग किया है। इस प्रयोग के अनुसार 'इरै' 'वेन्दु' आदि शब्दों से अभिव्यक्त राजा की सूक्ष्म शक्ति का अर्थ सार्वभौम शक्ति भी लगाया जा सकता है, जो कि आजकल भी प्रजातन्त्रों और गणतन्त्रों की संचालिका शक्ति है। पुनः सम्भव है कि आजकल उस प्रकार के मन्त्री न हों, जिनकी विवेचना तिरुवल्लुवर ने की है, किन्तु शाश्वत और मौलिक दृष्टिकोण के कारण कार्यवाहक शक्ति के वे सिद्धान्त आज के प्रजातान्त्रिक शासन में भी लागू हो सकते हैं।

उसका अर्थशास्त्र—उसके राज्य में भी खज़ाना है, किन्तु वह न केवल उत्पादन की न्याय्यता पर बल्कि वितरण की न्याय्यता पर भी बल देता है। एक स्थान में उसने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया है कि राज्य में भिखमंगे न होने चाहिए, यद्यपि वह ले और दे के सहयोगात्मक जीवन के गौरव को जानता है।

रूपकों का भविष्य में उपयोग—तिरुवल्लुवर ने सेना का ज़िक्र किया है, क्योंकि इस बीसवीं शताब्दी में भी हम ने सेनाओं से छुटकारा पाने का विचार करने में सफलता प्राप्त नहीं की है। हम ऐसी दुनिया में रहते हैं, जहाँ चीनी-जैसे लोग रणक्षेत्र को ही अन्तिम निर्णायक मानते है। हम अब समस्त विश्व के लिए संयुक्त राष्ट्रसंघ के अधीन एक सेना रखने का विचार करने लगे हैं। युद्ध और कूटनीति का विचार करते हुए तिरुवल्लुवर ने बहुत-सी बातें रूपकों में कही हैं, जिन का अर्थ समय आने पर एक राज्य के भीतर के गृह-युद्ध वा एक व्यक्ति के मन के भीतर के अन्तर्द्वन्द्व के लिए लगाया जा सकता है।

गांधीवादी दृष्टिकोण—यह सच है कि तिरुवल्लुवर का कूटनीति और दृढ़ता से काम लेने में विश्वास है, किन्तु कर्म में पवित्रता भी उतनी ही ज़रूरी है जितनी कि दृढ़ता। इस प्रकार आप देखेंगे कि वल्लुवर महात्मा गांधी के समान लक्ष्य की पवित्रता में ही नहीं, किन्तु उस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए साधनों की पवित्रता में भी विश्वास करता है। कर्म की पवित्रता पर इस प्रकार बल देने का महत्त्व तब हमारी समझ में सरलता से आ जाता है जब हम यह याद करते है कि शरशय्या पर पड़े हुए भीष्मपितामह ने अपने जीवन-भर के विश्वासों को मानों अपनी अन्तिम वसीयत के रूप में बतलाते हुए यह कहा है कि संकट-काल उपस्थित होने पर मनुष्य अपनी जान बचाने के लिए कोई भी कुकर्म कर सकता है। संक्षेप में यों कहिए कि यदि हमारा अन्तिम लक्ष्य नीति-संगत है, तो उसकी प्राप्ति के साधन नीतिविरुद्ध नहीं हो सकते। किन्तु वल्लुवर की दृष्टि में जीवन एक नित्य वस्तु है, अतः उस जीवन को बचाने के लिए अपने धर्म के आदर्श का बलिदान करने की आवश्यकता नहीं है। हम तिरुक्कुरल और इसी प्रकार के अन्य ग्रन्थों में यह एक महत्त्वपूर्ण अन्तर पाते हैं।

नागरिक-अंन्त—एक और भी महत्त्वपूर्ण बात है। युद्ध और कूटनीति की इन सब शक्तियों की आवश्यकता समाज के कल्याण के लिए

ही है। राजा केवल पुलिस के रूप में दूसरों पर शासन करने के लिए नहीं है, वह नागरिकों के हितों की थाती का रक्षक-मात्र है। राज्य की परीक्षा उसके नागरिकों से की जानी चाहिए। राज्य का अस्तित्व ही उसके नागरिकों की भलाई और नैतिक अभ्युदय के लिए है। नागरिकों के महत्त्व की यह भावना तिरुक्कुरल की द्वितीय पुस्तक के अन्तिम भाग में अच्छी तरह स्पष्ट कर दी गयी है। प्राचीन लोग इस भाग को 'कूडि इयल्' अर्थात् नागरिकों की पुस्तक का भाग कहते थे। दुर्भाग्य से उत्तर-काल के लोगों ने इस अन्तिम भाग के महत्त्व को नहीं समझा। किन्तु कम्बन् ने उसका महत्त्व समझा और अतः उसने कहा है कि राजा शरीर के समान स्थित रहकर प्राण वा आत्मा अर्थात् नागरिकों के लिए मानसिक, नैतिक, भौतिक और आध्यात्मिक भोगों का भोगना सम्भव करता है। तिरुवल्लुवर के चित्रणानुसार ये नागरिक वस्तुतः सन्त वा सम्पूर्ण मानव हैं। कुछ विचार देखिये :—"उनको अग्नि में फंक दो और फिर भी वे, यदि सम्भव हो तो उसे भुला देंगे और उन असह्य कष्टों को ढहाने वाले व्यक्ति को क्षमा कर देंगे। वे अपना जीवन दे देंगे, किन्तु अपने आदर्शों से पतित नहीं होंगे। वे मूर्तिमान प्रेम, सत्य और अहिंसा के समान हैं। जहाँ एक ओर ये पूर्ण नागरिक हैं, वहाँ दूसरी ओर नीच कमीने व्यक्ति (कयवर्) है, जो राज्य के शत्रु हैं। वे रूपमात्र से मनुष्य हैं; गुण से नहीं। वे हृदय-हीन हैं।" वे गन्ने के समान परिस्थिति से बाध्य होकर ही कुछ भला कर सकते हैं, अन्य बातों की अपेक्षा ये दोनों परस्पर-विरोधी चित्र हमारे सामने आदर्श नागरिकों का रूप, जैसे कि राज्य में होने चाहिए, उपस्थित करते हैं। संक्षेप में तिरुवल्लुवर द्वारा चित्रित यही आदर्श मानव-जीवन है।

(5) **तिरुक्कुरल का प्रभाव—अप्रत्यक्ष**—तिरुवल्लुवर ने जब तिरुक्कुरल लिखा, तभी से वह तमिल-साहित्य के भाग्य का विधायक रहा है। तिरुवल्लुवर ने केवल नैतिक सिद्धान्त ही नहीं बतलाये। उसकी पुस्तक में आदर्श मानव चित्रित किया गया है, अतः इस देश के महा-

काव्यों में नायकों और नायिकाओं के चरित्र-चित्रण में वल्लुवर के आदर्शों पर चलने का प्रयत्न किया गया है। उदाहरणार्थ कहा जाता है कि वल्लुवर की कृति आदर्श मानव का लक्षण ग्रन्थ है और कम्बन् की रामायण लक्ष्य-ग्रन्थ, जिसमें कि कविता-रूप में आदर्श मानव दिखाया गया है। यह बात तमिलनाड के सभी महाकाव्यों को लागू की जा सकती है। बाद की पीढ़ी, विशेषतः बौद्धों और जैनों ने इसका यह अर्थ लगाया है कि प्रत्येक महाकाव्य में किसी नैतिक सिद्धान्त का, उसके सन्देश के रूप में प्रतिपादन होना चाहिए। दण्डी ने 'भाविक' नामक अलंकार बतलाया है। वह वस्तुतः महाकाव्य की एकता है। इस एकता से ही महाकाव्य को एक सुन्दर कवितामय रूप प्राप्त होता है। परन्तु उत्तरकालीन अलंकार-शास्त्रियों ने उसकी व्याख्या इस प्रकार की है कि उससे अभिप्राय महाकाव्य की समस्त कथावस्तु के मूलभूत महान् नैतिक सिद्धान्त से है। उदाहरणार्थ हरिश्चन्द्र-चरित्र पर लिखा कोई भी महा-काव्य सत्य का सन्देश देगा। इस प्रकार की विचारसरणी एक बार शिक्षित समाज में प्रचलित हो जाय तो सब महाकाव्यों की व्याख्या किसी-न-किसी नैतिक सिद्धान्त के रूप में की जा सकती है। इस प्रकार 'शिलप्पदिकारम्' में भाग्य की अवश्यम्भाविता, सतीत्व-महिमा और न्यायमार्ग से बाल-भर भी हटने पर दण्ड की अनिवार्यता दिखलायी गयी है। बौद्ध महाकाव्य मणिमेखलै में आदर्श बौद्ध जीवन और धर्म का चित्र है, जिसके द्वारा वेश्या जाति में उत्पन्न एक छोटी लड़की भी मुक्ति और साध्वीत्व प्राप्त करती है। इस प्रकार आप देखेंगे कि महाकाव्य भी इस नैतिक रहस्यवाद से प्रभावित है। यहाँ रामायण आदि महाकाव्यों की दूसरी सुप्रसिद्ध विशेषता का निर्देश करने की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि वे स्वभावतः धार्मिक भक्ति से प्रभावित हैं, भक्ति इस देश के तमिल साहित्य का रूपनिर्धारण करने वाली दूसरी शक्ति है।

प्रभाव-प्रत्यक्ष—दूसरे प्रकार के साहित्य पर इस अप्रत्यक्ष प्रभाव के अलावा तिरुवल्लुवर के कुरल ने प्रत्यक्ष रूप से नीतिसम्बन्धी पुस्तकों

और दृष्टान्त श्लोकों को भी जन्म दिया है। इस व्याख्यान के प्रारम्भ में निर्दिष्ट इन पुस्तकों का प्रभाव तमिल-भाषियों के मन पर इस बीसवीं शताब्दी में भी विद्यमान है।

किन्तु हम यहाँ ज़रा ठहरकर तिरुक्कुरल के वंशजों अर्थात् उन पुस्तकों पर नज़र डालें जिन्होंने तिरुवल्लुवर के नैतिक रहस्यवाद से लाभ उठाकर अपने काल के तमिल भाषियों में प्रचार करने के लिए अपने नैतिक विचारों पर बल दिया है।

2. नालडियार

(1) **संग्रह**—अठारह नीति पुस्तकों में अगला बड़ा ग्रन्थ नालडियार है। इसमें वेण्बा छन्द के ४०० पद्य हैं जिनके विषय में कहा जाता है कि वे जैन सन्तों ने गाये हैं। कुछ लोग इस ग्रन्थ को पल्लवों के काल तक ले जाते हैं और कुछ का यह कहना है कि इसके अनेक पद्य मूल संस्कृत से अनुवादित हैं, यद्यपि यह पूर्ण रूप से प्रमाणित नहीं हुआ है। यह पुस्तक कम-से-कम एक हज़ार वर्ष तक सुप्रसिद्ध रही है और डॉक्टर पोप ने इसका अनुवाद करके समस्त संसार में इसका प्रभाव प्रसारित कर दिया है। एक उत्तरकालीन ग्रन्थकार ने इस संग्रह के असम्बद्ध पद्यों को प्रायः तिरुवल्लुवर के चरण-चिह्नों पर चलते हुए कई परिच्छेदों में क्रमबद्ध किया है। यद्यपि एक दृष्टिकोण से इस पुस्तक का यह क्रम उस युग का नहीं है, जब कि यह ग्रन्थ लिखा गया था, उस क्रम से हमें तिरुक्कुरल से तुलना करके इस महान् ग्रन्थ की अपनी निराली सत्ता को समझने में मदद मिलती है।

(2) **अरम्**—यह पुस्तक कम-से-कम इसको क्रमबद्ध करने वाले ग्रन्थकार के अनुसार घरेलू जीवन से प्रारम्भ नहीं होती वल्कि 'तुरवरम्' वा संन्यास से प्रारम्भ होती है और इस संसार की क्षणिकता पर बल देती है। यह सच है कि धर्म की महत्ता पर ज़ोर दिया गया है। जब इस पुस्तक में शरीर की अपवित्रता की हँसी उड़ायी गयी है तो वह

हास्यास्पद प्रतीत होता है। उसके बाद और इसी लिए वैराग्य का परिच्छेद है। शायद उस संग्रहकार के काल में संन्यासी क्रोध से उबल पड़ा करते थे, इसलिए सन्यास-सम्बन्धी अन्तिम परिच्छेद क्रोध के वश में होने से बचने की आवश्यकता बतलाता है। उसके बाद के अध्याय गृहस्थ जीवन पर हैं, जो कि यद्यपि निम्न कोटि का बतलाया गया है, किन्तु जब सन्यास सम्भव न हो तो वह जीवन का आवश्यक आश्रम है। सम्भवत: संग्रहकार ने कुरल के क्रम को इस प्रकार समझा है। संग्रहकार ने आवश्यक गुण निम्नलिखितानुसार गिनाये है। क्षमा, परस्त्री से प्रेम न करना, दानशीलता, भाग्य, सत्य और बुराई से डरना। सत्य पर परिच्छेद यद्यपि संन्यास के प्रकरण में आता है किन्तु उसमें सत्य-वादिता के महत्व पर बल नहीं दिया गया है। यह शीर्षक भ्रामक है। उसमें कुछ ऐसे नीति-तत्व बतलाये गये हैं जो सब कालों में समान हैं और पुनः भाग्य-सिद्धान्त तथा संसार की नश्वरता पर बल दिया है।

(3) **पोरुल (अर्थ)**—दूसरी पुस्तक को हम अर्थशास्त्र कह सकते हैं। इसका महत्व इसमें है कि हमें उसके द्वारा यह मालूम होता है कि उस युग के लोगों ने तिरुक्कुरल् के द्वितीय खण्ड को कैसे समझा था। तिरु-क्कुरल में जो सामाजिक और राजनैतिक कर्तव्य और अधिकार बतलाये गये हैं, इसमें केवल व्यक्तिगत दृष्टि से उनका विवेचन किया गया है। नालडियार के इस खण्ड के सात भाग हैं! पहला सचमुच राजत्व के विषय में है। तिरुक्कुरल में नागरिकों सम्बन्धी भाग में विवेचना किये हुए कुछ अन्य विषयों का विवेचन इसमें राजत्व के शीर्षक के नीचे किया गया है। राजा सम्बन्धी इस भाग में शिक्षा, कुलीनता, महापुरुष, महापुरुषों के प्रति बुराई न करने, सत्संगति, महत्ता और सतत प्रयत्न पर परिच्छेद हैं। शायद तिरुक्कुरल प्रत्येक नागरिक के पूर्णत्व प्राप्त करने का विचार करता है, किन्तु यह पुस्तक वा यह संग्रहकार जीवक आदि की जैन-परम्परा के अनुसार केवल राजा के ही पूर्ण होने वा पूर्णत्व प्राप्त करने का विचार करता है। द्वितीय भाग में समाज के सुखभोगों,

बुद्धि और बुद्धिहीनता और कृतज्ञता-रहित धन का विवेचन है। अगले भाग में कष्टों, सामाजिक जीवन, दानशीलता के अभाव, गरीबी, आत्मसम्मान और भिक्षाटन के भय का विवेचन है। पंचम भाग में सामान्य सिद्धान्त हैं, जिनमें परिषदों का विवेचन है, जैसे कि तिरुवल्लुवर ने मन्त्रियों सम्बन्धी अपने परिच्छेदों में किया है, किन्तु यह स्पष्ट नहीं है कि इस संग्रह में इस परिच्छेद को भी राजत्व के प्रकरण के अन्तर्गत क्यों नहीं रखा गया। शायद इससे यह सिद्ध होता है कि संग्रहकार के समय तक केन्द्रीय सरकार में परिषदों के हाथ में कोई शक्ति नहीं रही थी और लोगों को कम-से-कम स्थानीय स्वायत्त शासन में ही परिषदों वा पचायतों के अस्तित्व से सन्तुष्ट रहना पड़ता था, जैसा कि पल्लव और चोल-कालों के शिलालेखों से सिद्ध होता है। छठे भाग में शत्रुओं का विवेचन करने वाले अध्याय हैं, किन्तु ये शत्रु सामान्य प्रचलित अर्थ के अनुसार राजनैतिक शत्रु नहीं हैं बल्कि आलकारिक अर्थ में व्यक्ति के जीवन के शत्रु हैं, यथा मूर्खता, थोड़ी-सी विद्या, कमीनापन और कयवर अर्थात् वे जो तिरुवल्लुवर के अनुसार कभी नागरिक बन ही नहीं सकते।

हमने युद्ध आदि विषयक अध्यायों की आलंकारिक व्याख्या करने की सम्भावना बतलायी थी और सचमुच ही इस पुस्तक में वैसा ही किया गया है। सप्तम भाग में विविध विषय हैं। इस प्रकार आप देखेंगे कि अर्थशास्त्र की यह कल्पना तिरुवल्लुवर में चित्रित कल्पना से भिन्न है। सम्भवतः उस काल के राजनैतिक जीवन में इतनी अशान्ति थी कि लोग आदर्श मानव-जीवन को अपने मन के भीतर ढूंढते थे। लोक-कल्याण के विषय में जो कुछ कहा गया है, नालडियार में उसे मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन से सम्बन्धित बतलाया गया है।

(5) **कामम्**—इसमें ही कामत्तुप्पाल् भी है। इसके दो भाग हैं जिनमें से एक में इस काम के दुखों और सुखों का विवेचन है। इसका अर्थ यों लगाया जा सकता है कि हम जिसे सुख समझते हैं वह दुखों से

भरा हुआ है । यह नालडियार की भावना के अनुकूल है । इस भाग में स्वभावतः वेश्या का भी वर्णन है । वल्लुवर ने वेश्याओं का जिक्र काम के प्रकरण में नहीं किया, क्योंकि उसके आदर्श प्रेम में उनके लिए कोई स्थान नहीं, अपितु उसने वेश्याओं का जिक्र उनसे तथा कुछ अन्य लोगों से समाज को होने वाले खतरों को बतलाते हुए किया है । इसके दूसरे भाग में काम के सुन्दर पहलुओं का विवेचन है । इसमें सती स्त्री का वर्णन है । काम पर ही एक और अध्याय भी है । इसमें बहुतसे नाटकीय एकभाषित हैं, किन्तु पुस्तक के इस अन्तिम परिच्छेद में आदर्श प्रेम के इस जीवन के भी कष्टों और दुखों पर बल दिया गया है ।

(6) **सामान्य**—इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इस पुस्तक में मनुष्य की व्यक्तिगत महत्ता की प्रशंसा करके इस संसार के सब दुखों और बाधाविघ्नों के विरुद्ध मानवी नैतिक महत्व पर बल दिया गया है और यह दिखाया गया है कि पतिव्रता पत्नी और आदर्श घरबार के होते हुए भी केवल इन वस्तुओं से ही स्थायी सुख की प्राप्ति निश्चित नहीं हो जाती ।

तथापि इसके पद्य कवित्वपूर्ण हैं । वे स्थूल हैं और किसी भी हृदय को अवश्य प्रभावित करेंगे । वे कभी भी इतने गहरे नहीं जाते कि उनके तल तक पहुँचने में बहुत श्रम करना पड़े । इन वेण्बा छन्दों का लय उन दिनों की भाषण-भंगी का लय है । उनमें के विविध अलंकार नैतिक दृश्य का एक सजीव चित्र उसके सब कष्टों और सुखों के साथ हमारी आँखों के सामने ला खड़ा करते हैं । वाक्य छोटे-छोटे और ओजपूर्ण हैं । "विद्याध्ययन की कोई सीमा नहीं है । सीखने वाले थोड़े ही दिन जीते हैं । यदि कोई शान्तिपूर्वक सोचे तो स्पष्ट दिखायी देता है कि अनेक रोग हमें घेरे हुए हैं । अतः महान् पुरुष हंस पक्षी के समान, जो कि केवल दूध ही पीता है, और पानी को छोड़ देता है, उन्हीं पुस्तकों को पढ़ते हैं जिनका पढ़ना उचित और आवश्यक है" यह मूल पद्य बहुत छोटा है किन्तु अनुवाद में वह लम्बा हो गया है । प्रत्येक वाक्य में केवल

छः वा सात पद हैं। इस पुस्तक में बहुधा हास्य निहित है, गुप्त विनोद है। "कंजूस अपने धन को अपना समझता है। और मैं सोचता हूँ कि वह मेरा है। क्या वह उसका है? वह न उसका उपभोग करता है और न दूसरों को देता है और न मैं ही करता हूँ।" एक और स्थल पर कवि कंजूस को एक कुत्ता बतलाता है जिसने एक नारियल को अपने कब्जे में कर रखा है, वह उसे न स्वयं खाता है और न दूसरों को खाने देता है। एक और दृष्टान्त देखिए—"जो आज है, वह सदा नहीं रहेगा। इसे अच्छी तरह समझ लो। यदि तुम कोई सत्कार्य करने के लिए बाट जोह रहे हो तो उस स्थायी कार्य को तुरन्त कर डालो। हमारे जीवन के दिन समाप्त हो चुके हैं। मृत्यु तुरन्त आ रही है।" इन उदाहरणों से हमें इस महान ग्रन्थ की एक झलक मिल सकती है।

3. पलमोलि

इन अठारह में अगली महान् पुस्तक पलमोलि है। इस पुस्तक का यह नाम इसलिए पड़ गया है कि इसके ४०० पद्यों में से प्रत्येक के अन्त में कोई पुरानी कहावत है, तमिल में पलमोलि शब्द का अर्थ होता है कहावत। इसका लेखक मुनूरुरै अरियनार् था। उसके विषय में यह विचार है कि वह जैन था। एक उदाहरण देखिए 'विद्वान ही विद्वान् की बात समझ सकते हैं, उन्हें साधारण जन नहीं समझ सकते। सर्प ही सर्प के पैरों को जानता है।' इसके अन्तिम वाक्य में एक कहावत है, जो कि उन दिनों प्रचलित विश्वास के आधार पर है। इस प्रकार कहावतें बहुधा कभी तो विशेष के द्वारा सामान्य का समर्थन करती हैं और कभी सामान्य धर्म बतलाकर विशेष का समर्थन करती हैं। कविता में वे बहुत उपयोगी होती हैं, क्योंकि कविता सामान्य नियम को बतलाती है और विशिष्ट दृष्टान्त द्वारा उसका समर्थन करती है, अथवा विशिष्ट दृष्टान्त कहकर तदनन्तर उसके द्वारा सामान्य नियम बतलाती है। कहावतें सामान्य तौर पर सब लोगों में प्रचलित होती

हैं, अतः उस पीढ़ी के सब लोग उन्हें आसानी से समझ लेते हैं। किन्तु उन प्राचीन कहावतों में से कुछ आजकल प्रचलित नहीं हैं अतः आजकल के सामान्य जन उन्हें नहीं समझ सकते। इसके अतिरिक्त इसकी भाषा भी अधिक कठिन है और सम्भवतः नालडियार की भाषा से अधिक प्राचीन है। इस पुस्तक में कुछ ऐसे राजाओं का उल्लेख है कि जिनके नामों ने तमिलनाड में परम्परा का रूप धारण कर लिया है। उदाहरणार्थ करिकालन युवा होते हुए भी वृद्ध के रूप में न्याय करता था। यह 'कुलविद्दै कल्लामल् पागम् पाडुम्' (कुलविद्या बिना सीखे भी पक्की हो जाती है) इस कहावत की सत्यता सिद्ध करता है। एक और कहावत है 'हजार कौवों के लिए एक पत्थर।' इसका उपयोग उस शूर के लिए होता है जिस अकेले के ही सामने युद्धक्षेत्र में अनेक प्रतिद्वन्द्वी पीठ दिखाने को बाध्य होते हैं। एक और उदाहरण देखिए। 'महापुरुषों के योग्य सम्मान नीचों को देना कुत्ते को राजसिंहासन पर बिठाने के समान है।'

इस पुस्तक में भी वाक्य छोटे, सरल और ओजपूर्ण हैं, कभी-कभी सब वाक्य इकट्टे होकर एक बड़े नैतिक सत्य पर बल देते हैं। प्रत्येक पद्य में अन्य अलंकारों के साथ-ही-साथ अर्थान्तरन्यास भी आकर, पद्य में निर्दशित सत्य को अन्तिम रूप देकर उसे अलंकृत करता है।

4. संख्याएँ—इन्नानार्पदु—इनियवैनार्पदु

इसके बाद कुछ छोटी पुस्तकें आती हैं और उनमें से कुछ का नामकरण उनके पद्यों की संख्या के ऊपर हुआ है। इनियवैनार्पदु (मधुर चालीसा) नामक एक पुस्तक में समाज तथा व्यक्ति के लिए मधुर नैतिक तथ्यों का विवेचन करने वाले ४० पद्य हैं। इन्नानार्पदु (कटु-चालीसा) नामक ४० पद्यों के एक और संग्रह में ऐसे कृत्य बतलाये गये हैं जो नैतिक दृष्टि से मधुर नहीं कटु हैं। प्रत्येक पद्य में उन्होंने चार अवाञ्छनीय वस्तुएँ बतायी हैं। इन चारों के कष्टों में साम्य में ही इन

पद्यों का सौन्दर्य है। एक उदाहरण देखिए—"जिस पुस्तक का अर्थ कोई नहीं समझ सकता, उससे उद्धरण देना कटु है। अन्धकार में तंग गली में अकेले जाना वस्तुतः क्रूरतापूर्ण है। निर्दय जनों के पास जाना वस्तुतः क्रूरतापूर्ण है। गरीबों के लिए दानशीलता वस्तुतः क्रूरतापूर्ण है।" मधुरचालीसा में मधुर कृत्य बताये गये हैं। इन पद्यों में चार नहीं, केवल तीन वक्तव्य हैं। सम्भवतः यह पुस्तक इन्नानार्पदु (कटुचालीसा) के बाद निषेधात्मक नहीं बल्कि विध्यात्मक दृष्टिकोण से नैतिक तथ्यों पर बल देने के लिए लिखी गयी थी। एक उदाहरण देखिए—'भिखारी होने पर भी सीखना वस्तुतः मधुर है। सभा में तर्कों से सहायता देना वस्तुतः मधुर है। मधुरस्मिता सुन्दरियों के शब्द वस्तुतः मधुर हैं। जो निःसन्देह महान् हैं उनका संग वस्तुतः मधुर है।'

5. दवाएँ

इन अठारह में की कुछ अन्य पुस्तकों के नाम हमें उन दिनों प्रचलित औषधों की याद दिलाते हैं। इन औषधों में से कुछ आजकल भी प्रचलित हैं। इन औषधों में से कुछ चार से अधिक और कुछ चार से कम जड़ियों के मिलाने से बनती हैं। जो औषधें चार जड़ियों से बनती हैं, उनका वर्णन इन्ननार्पदु (कटुचालीसा) में हो चुका है। अब इन पुस्तकों में 5, 6 वा 3 जड़ियों से बनने वाली औषधें ही आयी हैं। इन पुस्तकों में 3, 4 वा 6 नैतिक तथ्यों का उन जड़ियों के रूपक से वर्णन किया गया है।

6. तिरिकडुकम् (त्रिकटु)

आयुर्वेद में 'त्रिकटु' तीन कड़वी दवाओं को मिलाने से बनता है, और इस पुस्तक के प्रत्येक पद्य में सदाचरण के तीन तत्वों का विवेचन है। नैतिक सिद्धान्त हमारी प्राकृतिक प्रवृत्तियों और इच्छाओं पर नियन्त्रण रखते हैं, इसलिए उन्हें कटु बताया है। इस पुस्तक का लेखक

नल्लातनार है। इसका एक उदाहरण देखिए—'अशिक्षितों से मिलकर रहना, अपनी पत्नी को छड़ी से पीटना, अपने घर में कमीनों को बुलाना, अज्ञान से ये तीन खतरे पैदा होते हैं।' एक और देखिए : 'अध्यापक-रहित ग्राम, गुत्थियों को सुलझाने में समर्थ वृद्धों से रहित सभा और अपने पास की वस्तु में दूसरों को हिस्सा न देने वालों का संग, इन तीन का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता।'

7. चिरुपंचमूलम्

इस औषध में पाँच वनस्पतियों की जड़ें होती हैं। इसी प्रकार कारियाचान् लिखित इस नाम की पुस्तक के प्रत्येक पद्य में जड़ के समान पाँच महान् तथ्य बताये गये हैं। एक उदाहरण देखिए—"1. भोग उनके पास हैं, जिनके पास धन है। 2. धर्म उनके पास है, जिनमें अरुल् (दया) है। 3. दयावान् व्यक्ति कभी कुकर्म नहीं करता। 4. पाप उसके पास नहीं फटकता। 5. वह कभी किसी से चुग़ली नहीं करता।"

8. एलादि

एलादि में इलायची आदि 6 दवाएँ होती हैं, जिन्हें पीसकर मिला लेते हैं। कणिमेदावियार लिखित इस कविता में 80 पद्य हैं। प्रत्येक पद्य में 6 नीति तत्व बताये गये हैं। शायद एक समय में इसमें 100 पद्य थे। इसके एक पद्य का अनुवाद निम्नलिखित है। "जो मित्र है, जो कभी झूठ नहीं बोलता, जो सदा सत्य प्रमाणित करता है, जो बाज़ारू औरत की बात नहीं मानता, जो मद्यपान नहीं करता, ऐसा मनुष्य पुस्तकों के लेखकों के द्वारा बतायी हुई पूर्णताओं से पूर्ण है।" एलादि में आदर्श मनुष्य के चित्रित करने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु एक ही पद्य में दिखलाने के लिए अभीष्ट तथ्यों की संख्या इतनी बड़ी होने के कारण उनका काव्य-सौन्दर्य तक पहुँचना बहुत कठिन है।

औषध-भावना

इन पुस्तकों का औषधों के ऊपर नामकरण ही हमें उनके द्वारा प्रचार की हुई नैतिकता की भावना का परिचय देता है। वे बड़ी कविता की दृष्टि से लिखी गयी हैं। वे उन औषधों के समान हैं, जो स्वाद में कड़वी होने पर भी मनुष्य के नश्वर शरीर के लिए हितकारी हैं।

9. आशावाद-नान्मणिक्कटिगै

एक ऐसी पुस्तक भी है कि यदि हम उस के नाम पर भरोसा करें तो उसका दृष्टिकोण आशावादी प्रतीत होगा। उसका नाम है नान्मणिक्कटिगै और उसके लेखक का नाम विलम्बिनाकनार। उसमें 101 पद्य हैं, अतः संभव है कि परम्परागत संख्या एक सौ से ऊपर का एक पद्य प्रक्षिप्त हो, किन्तु इस प्रक्षेप को पहचानना कठिन हैं। प्रत्येक पद्य में चार बहुमूल्य रत्न हैं। इसमें कोई औषध वा उसे बनानेवाली जड़ियाँ नहीं हैं, किन्तु नैतिक सिद्धान्तों का एक आभूषण बनानेवाली चार मणियाँ हैं। इसीलिए इस पुस्तक का नाम है नान्मणिक्कटिगै, जिसका अर्थ है चार मणियों का हार। एक उदाहरण देखिए। "संस्कार करने पर ही रत्न की प्रभा प्रकट होती है। घोड़े का गुण उस पर जीन कसकर सवारी करने पर ही प्रकट होता है। सोने को आग में तपाकर उसको मलशुद्ध करने पर ही उसकी कान्ति प्रकट होती है। सम्बन्धियों की महत्ता गाढ़ा समय आने पर ही प्रकट होती है।" एक और भी देखिये, "थूहर के पौधे में सुगन्ध पैदा होती है। मृग के शरीर के भीतर सुगन्धित कस्तूरी पैदा होती है। समुद्र में बहुमूल्य मोती पैदा होता है। कौन जानता है, महापुरुष का जन्म किस कुल में होता है?" इस प्रकार आप देखेंगे कि यद्यपि चार दृष्टान्त दिये गये हैं किन्तु उनमें से पहिले तीन अन्तिम के समर्थन के लिए ही हैं।

10. लघुकृति-मुदुमोलिकांची

मदुरा के कुडलूर किलार लिखित मुदुमोलिकांची (वृद्धवाणीकांची) नामक एक और छोटी पुस्तक है। इसमें दस-दस वक्तव्यों की दस मालाएँ हैं। इन दस मालाओं में से प्रत्येक दस विभिन्न परिस्थितियों में बतलाता है कि (1) क्या बड़ा है ? (2) इसी प्रकार वस्तुतः बुद्धि क्या है ? (3) किस प्रकार का अनादर वा अपमान नहीं करना चाहिए ? (4) किस का उपभोग नहीं करना चाहिए ? (5) क्या सरल है ? (6) क्या झूठा है ? (7) असली गरीबी क्या है ? (8) किसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती ? (9) कौनसा दुख वा सुख दूसरे से बड़ा नहीं है ? (10) किसे हम जीवन, मित्रता नहीं कह सकते इत्यादि। उदाहरण देखिये, "सदाचरण विद्या से बड़ा है।", "किसी की दानशीलता से उसकी दया सीखो।" "कोई भी गरीब को दानशील न होने के लिए दोष नहीं देगा।" "मूर्ख की सहायता अलग रहने से भी बुरी है, उससे सुख नहीं होता।" "जो कुछ बिना समझे सीखा जाता है वह विद्या नहीं है।" "सन्तान से बढ़कर सौभाग्य नहीं है।" "यह कहना कि बुद्धि से महान व्यक्ति का जीवन सुखी नहीं होता, मिथ्या कथन है।" "जिन्होंने उसके लिए प्रयत्न किया है वे आसानी से स्वर्ग पहुँच सकते हैं।" "जो मनुष्य सन्मार्ग पर नहीं है, वह वस्तुतः गरीब है।" "जो महत्ता में ऊँचा उठना चाहता है उसे महान् शब्दों की कमी नहीं होगी।"

11-16. अंतरंग की कविता

इन अठारह में से एक-तिहाई अर्थात् छै पुस्तकों का यह भिन्न समूह है। वे हैं तिनैमालै नूट्रैम्बदु, तिनै एलुबदु, तिनै ऐम्बदु, तिनै मालै नाट्रैम्बदु, कैन्निलै और कारनार्पदु। इनके लेखकों के नाम हैं क्रमशः कणिमेदवियार्, भूवादियार्, मारन् पोरैयनार, कण्णन्चेन्दनार, पुल्लन् काटनार, और कण्णन् कूत्तनार्। उनमें तिरुक्कुरल् के कामत्तुप्पाल् के उदाहरणों का अनुसरण करते हुए काम का विवेचन है। उनमें भी नाट-

कीय एकभाषित हैं और वे इस बात पर बल देते हैं कि काम वा प्रेम जीवन की एक महत्वपूर्ण वस्तु है । हम पहले ही कह चुके हैं कि इन अठारह पुस्तकों में से तिरुक्कुरल के सिवाय अन्य पुस्तकें काम के इस बड़े महत्त्व पर बल नहीं देतीं। इसका कारण शायद जैनों का प्रभाव है, क्योंकि वे गृहस्थ जीवन की अपेक्षा वैराग्य को अधिक महत्व देते थे। अब तक वर्णित अधिकांश पुस्तकें जैनों वा उनके चेलों की लिखी हुई थीं। सम्भवत: वे सब ही पाण्ड्य देश, विशेषत: मदुरा के रहने वाले थे, जब कि उस प्रदेश पर जैनों का प्रभाव था। वेद-धर्मानुयायी हिन्दुओं ने भी, शायद इसी प्रभाव के कारण, विशेषतः उस अशान्तिपूर्ण काल के कारण विवाह से पूर्व प्रेम की निन्दा की है, और उन्होंने संसार से वैराग्य के जीवन के नहीं बल्कि विवाहित दम्पती के उस सुव्यवस्थित और स्थायी प्रेम के गुण गाये हैं, जिसका प्रारम्भ विवाह से पूर्व ही प्रेम के रूप में नहीं हुआ था। इसलिए संघ-परम्परा में विश्वास करने वालों की ओर से जैनों और वैदिक हिन्दुओं के इन विचारों के विरुद्ध प्रतिक्रिया हुई होगी। परिपाडल् नामक एक कवि ने वेद-धर्मानुयायी विद्वानों द्वारा प्रशंसित विवाहानन्तर प्रेम की तुलना में विवाह से पूर्व ही के रोमांटिक प्रेम के आदर्श को, जिसका अन्त यद्यपि बाद को विवाहित प्रेम में होता है, बहुत ऊँचा ठहराकर उसकी गुणावली का बखान किया है। यह एक प्रकार का उत्तर है। इरैयनार् अकप्पोरुल् की टीका से हमें एक और प्रकार का उत्तर मिलता है। उसमें बताया गया है कि रोमांटिक प्रेम का परिणाम अन्त में वैराग्य और तप में होता है। तिरुवल्लुवर ने अपने उत्तर में काम को ही धर्म का मूल आधार बताया है। यहाँ उल्लिखित छै पुस्तकों में दूसरे प्रकार की प्रतिक्रिया है जिसमें कि जैनों और बौद्धों द्वारा प्रचारित गृहस्थ जीवन में आंशिक त्याग के आदर्शों को प्रेम की व्यवस्था में शामिल कर लिया गया है। यदि कोई पुरुष अपनी पत्नी से भिन्न किसी दूसरी स्त्री की ओर आँख भी न उठाये तो यह पुरुष का महान् शील बताया गया है। यह एक प्रकार का परदे का शील है।

इन कविताओं में इस प्रकार के सदाचारी महापुरुष का गुणगान किया गया है। एक माता की पुत्री अपने प्रेमी के साथ भाग गयी है, और वह अपनी उस पुत्री को खोजती हुई घूम रही है। मार्ग में उसकी एक दम्पती से भेंट होती है। तब वह महापुरुष उस माता से कहता है कि मैंने तुम्हारे बताये हुए हुलिया वाले एक शूरवीर को मार्ग में आते देखा है किन्तु लड़की के विषय में मेरी पत्नी बतायेगी, क्योंकि उसका चेहरा मैंने नहीं देखा, क्योंकि उन दिनों प्रचलित आचार नियमों के अनुसार वह अपनी पत्नी के अलावा अन्य किसी स्त्री का चेहरा नही देखता था। ये उत्तर-कालीन कवि विवाह-पूर्व प्रेम की विवाहित प्रेम में परिणति का अधिका-धिक वर्णन करते हैं। संभवत: इन सब ढंगों से इन विद्वान कवियों ने संघकाल के विवाह-पूर्व प्रेम के आदर्श को जैन और बौद्ध यतियों के लिए ग्राह्य बनाया है। "तिनैमालै नूट्रैम्बदु" से संलग्न एक प्रशंसात्मक पद्य यह महत्वपूर्ण बात बतलाता है कि वह पुस्तक कलवियल् वा रोमांटिक प्रेम के प्राचीन आदर्श के विरोधियों का क्रोध शान्त करने के उद्देश्य से उस प्रेम का गुणगान करने के लिए लिखी गयी थी। इस प्रकार छै पुस्तकें 'अहप्पोरुल्' का गुणगान करती हैं।

17. कलवलिनार्पदु-पुरम् की कविता

'कलवलिनार्पदु' नामक एक पुस्तक संघकाल की 'पुरम्' कविता में कीर्तित युद्ध की महिमा का बखान करती है। इसका लेखक पोय्कैयार् है और इसमें युद्धानन्तर घोड़ों, हाथियों और शूरों की लाशों से पटे हुए रणक्षेत्र का वर्णन किया गया है। वह युद्ध भयानक था, किन्तु अन्ततो-गत्वा कवि के कथनानुसार कुरूप वस्तुओं का भी एक सुन्दर पहलू होता है। कवि ने बहुत-सी सरल उपमाओं द्वारा इसी पहलू का बखान किया है। सम्भवत: इसी प्रकार के वर्णन से उत्तरकाल में परणि वा रणभूमि की कविता का उद्गम हुआ।

18. आचारक्कोवै

अब एक और पुस्तक उल्लेख करने से बाकी रह गयी है। उसका नाम है 'आचारक्कोवै' जिसका अर्थ है 'आचारमाला'। उसके लेखक का नाम 'पेरुवायिल् मुल्लियार्' है। यह पुस्तक दिखलाती है कि आन्तरिक नैतिक सिद्धान्तों के स्थान में कुछ प्रचलित रिवाजों अथवा बाह्य आचारों पर ज़ोर दिया जाने लगा था। यह बात सत्य है कि व्यक्ति और समाज के कल्याण के लिए यह आवश्यक है कि कुछ अच्छे नियम आदत का रूप धारण कर लें, किन्तु इस बात को मान लेने पर भी उन आदतों को आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों की श्रेणी में रखना बहुत कठिन है। ऐसा करने से नैतिकता की आन्तरिक शक्ति और स्फूर्ति जाती रहेगी। आत्मा को ऊँचा उठाने वाली नैतिकता नित्य-प्रति के जीवन के निष्प्राण दैनिक आचार के समकक्ष रह जायगी। उदाहरणार्थ एक पद्य का अनुवाद दिया जाता है। "महापुरुष एक वस्त्र के बिना स्नान नहीं करते; वे केवल एक वस्त्र धारण करके भोजन नहीं करते; पानी में खड़े हुए वे अपना गीला वस्त्र नहीं निचोड़ते; महापुरुषों की गोष्ठी में केवल एक वस्त्र धारण किये हुए नहीं जाते। इस पुस्तक में यह नियम पाया जाता है।" इस पुस्तक में इस प्रकार की नैतिकता का विवेचन किया गया है। अपने नाम के अनुसार इस पुस्तक में आचारों की सूची दी गयी है।

इ. निष्कर्ष

इन पुस्तकों का यह परिचय देने के बाद अब यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस किसी ने इन अठारह कृतियों को एक समान महत्वपूर्ण समझकर 'पदिनेन्कील्कणक्कु' (अष्टादशी) नाम से एक संग्रह में रक्खा, उस में तुलना-बुद्धि व साहित्यिक विवेक बिल्कुल न था। तिरुक्कुरल् को आचारक्कोवै के साथ रखना महान साहित्यिक पाप है। किन्तु ये सब कृतियाँ जिस ढंग से एक ही साथ रक्खी गयी हैं, उससे हमें तमिलनाड में नैतिक सिद्धान्तों के इतिहास का ज्ञान प्राप्त होता है।

6. प्रभाव

1. जैन नीति ग्रन्थ

जैनों के अन्य ग्रन्थ भी हैं। अरुनूकलच्चेप्पु भी एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है, यद्यपि उसका महत्व केवल जैनों की दृष्टि में है। वेण्बा छन्दों में रचित अरनेरिच्चारम् (नीति-मार्ग सार) नामक ग्रन्थ में इसका विस्तार से विवेचन किया गया है। ये दोनों ग्रन्थ ऊपर विवेचित कुछ अन्य महान् ग्रन्थों के ही समान व्यापक शाश्वत नीतितत्वों के दर्शन को रचने का प्रयत्न करते हुए भी जैन-सिद्धान्ती होने के कारण इनको व्यापक मान्यता प्राप्त नहीं हुई। तिरुक्कुरल् से स्फूर्ति प्राप्त करके नैतिक सूत्र देने वाले अन्य ग्रन्थों का परिचय इस निबन्ध के आरम्भ में दिया जा चुका है।

2. उत्तरकालीन कविता

इस प्रकार आप देखेंगे कि तमिल भाषियों के जीवन और साहित्य के निर्माण में नैतिक रहस्यवाद का बहुत महत्वपूर्ण प्रभाव है। प्राचीन काल में जिन युद्धों का इतना महत्व था, उनको परवर्ती-काल में आन्तरिक आत्मिक संघर्ष समझा जाने लगा, और उन्होंने हमारे मन के भीतर होते रहने वाले बुरी भावनाओं और अज्ञान के साथ युद्ध का आलंकारिक चित्र उपस्थित किया है उदाहरणार्थ तत्तुवरायर् तथा अन्य लोगों ने परणि अर्थात् रणकविता की यही व्याख्या की है। इस प्रकार नीति-कविता तथा तद्भिन्न कविता के भेद को कम करने का प्रयत्न किया गया है। महाकाव्यों पर इस प्रभाव की विवेचना हम पहले ही कर चुके हैं।

आज भी तमिल के अध्ययन में उत्तरकालीन नीति साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है और उसका इतिहास पहले ही दिया जा चुका है। वह तिरुक्कुरल के प्रत्यक्ष प्रभाव का परिणाम है। वह जैन-ग्रन्थों के समान साम्प्रदायिक नहीं है, केवल कहीं-कहीं लेखकों के मत का निर्देश किया गया है।

3. आधुनिक कविता

अब आधुनिक तमिल पर नैतिक रहस्यवाद की इस कविता के प्रभाव का विवेचन उचित होगा। आजकल एक ओर मिथ्याविश्वास के विरुद्ध और दूसरी ओर धर्म की गलत व्याख्या के विरुद्ध एक विद्रोह की आवाज़ उठी है, क्योंकि आजकल जाति वा बाह्याचार को ही धर्म समझने लगे हैं। परमात्मा की दया की भावना सान्त्वना के रूप में और न्यायोचित दण्ड से भी बचने के मार्ग के रूप में बतायी गयी थी। नीतिभ्रष्ट पीढ़ी ने उसका यह अर्थ लगाया कि मनुष्य चाहे कितने ही पाप-कार्य करता रहे, परमात्मा की दया उसको बचा लेगी। हृदयपरिवर्तन और पश्चात्ताप मनकी पुनः कुमार्ग की ओर प्रवृत्ति से रक्षा करने के लिए आवश्यक है, किन्तु दुर्भाग्य से इनकी न केवल उपेक्षा की गयी किन्तु मतलबी लोगों ने उन्हें अनावश्यक भी समझा। इस प्रकार झूठा धर्म समाज-विघातक बन गया। इसलिए यह उचित ही है कि नवीन युग इन सब अप्राकृतिक बातों की भर्त्सना करता है, और वर्तमान कविता इस अर्थ में नैतिकता की भावना से अनुप्राणित है। यह नैतिकता सामाजिक भी है और वैयक्तिक भी, राजनैतिक भी है और बौद्धिक भी। इस नैतिकता की व्याख्या आधुनिक मानवतावाद के रूप में की जा सकती है। अतः भारती और अन्यों की सच्ची धार्मिक भावना भी नैतिक अध्यात्मवाद से ही स्फूर्ति प्राप्त करती है।

4. सिद्ध लोग

प्राचीनतर युगों में भी धर्म के प्रति ऐसे विद्रोह वा विरोध-प्रदर्शन हुए थे। सम्प्रदायवाद तब भी था, जो कि सब धर्मों की आधारभूत एकता को भूल जाता था। रहस्यवाद की चयनवादी शाखा वाले धर्म के इस भ्रष्ट रूप का विरोध करने के साथ ही बाह्य आचारों की हँसी उड़ाते थे। वे तमिलनाड में सिद्ध नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी कविता सामान्य जनों के हृदय को लगती थी। उनकी कविता लोकतान्त्रिक थी,

और उसकी शैली सदा प्राकृतजनों तथा उनके लोकगीतों की भाषा के निकटतर थी। ये सिद्ध सम्भवतः निर्गुण ब्रह्म के उपासकों से अभिन्न थे। वे योग और तन्त्र तथा कष्टपीड़ित जनता के लिए औषधों में विश्वास करते थे। सिद्धों की कविता कबीर की सन्तवाणी के बहुत निकट पहुँचती है, यहाँ उनका धार्मिक रहस्यवाद नैतिक रहस्यवाद से अभिन्न हो जाता है। तमिलनाड में चयनवादी सम्प्रदाय बहुत पुराना है, उसका सम्बन्ध उत्तर-भारत के तान्त्रिक शैव, नाथ और ऐसे ही अन्य धार्मिक सम्प्रदायों से है। सबसे प्राचीन सिद्ध तिरुमूलर थे। सातवीं वा आठवीं शताब्दी के सन्त सुन्दरर् ने उनका उल्लेख किया है। एक और अन्य सिद्ध शिव वाक्कियर थे। उनका काल भी सम्भवतः वही है। अव्वैयार भी इसी सम्प्रदाय की थीं। एक उत्तरकालीन पट्टिनत्तार और विजयनगर काल के कुछ अन्य लोग, सत्रहवीं शताब्दी के तायुमाणवर्, सिद्ध-गीतों के लेखक, जोकि उत्तरकाल के सूफ़ी और अरबी साहित्य से प्रभावित हुए, ज्ञानवेदेयन् का लेखक, वल्लवर नामक एक लेखक, उन्नीसवीं शताब्दी के समरस सन्मार्ग के रामलिंग स्वामिगल् इस परम्परा को आधुनिक काल तक ले आते हैं। वीरशैव रहस्यवादियों को जातिप्रथा से आन्तरिक घृणा थी। वे जब तमिलनाड में बस गये और अन्य शैवसिद्धान्त के मठों के आचार्य बन गये तो उन्होंने सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दियों में इस प्रदेश के लोगों के हृदयों को जीतने के लिए एक प्रकार के चयनवाद का विकास किया और अपनी पुरानी रूढ़िवादिता को छोड़ दिया। आधुनिक भारत में भी सिद्धगीत लोकप्रिय हैं।

तिरुमूलर के तिरुमन्दिरम् की शैवों के आगमग्रन्थों में गणना है। इस प्रकार आप देखेंगे कि इस चयनवादी पद्धति का शैवसिद्धान्त से सम्बन्ध है। तिरुवल्लुवर का अनुसरण करते हुए तिरुमूलर ने भी अपने दर्शन में अरम् वा धर्म वा सदाचार को मुख्य स्थान दिया है। योग के आठ अंगों में दो यम और नियम हैं जिन्हें भारत के सब चयनवादी सम्प्रदायों ने माना है।

5. शैव महाकाव्य

शैव आगमों में पेरियपुराणम् बारहवीं पुस्तक है। वह बारहवीं शताब्दी की है और उसे चोल साम्राज्य के एक मन्त्री ने लिखा था। उसमें तमिलनाड के शैव सन्तों की कहानियां हैं। ये सन्त सब जातियों के थे और विभिन्न सामाजिक स्तर के थे। सन्त सुन्दरर् ने पहले सन्तों की यह सूची दी थी। इसमें ६३ शैव महात्माओं के जीवन चरित हैं। शायद यह जैन पुराणों की परम्परा पर है क्योंकि उनमें भी ६३ पुरातनों (प्राचीन महात्माओं) की जीवनियाँ हैं। पेरियपुराणम् महाकाव्य में सबके लिए आशा का सन्देश है। कोई भी आदमी हो और वह किसी भी पद पर हो, यदि वह अपने सामने रखे हुए आदर्श को नहीं छोड़ता और आवश्यकता होने पर उसके लिए अपने प्राण भी दे देता है तो इस सन्देश के अनुसार उसको अवश्य मोक्ष प्राप्त होता है। बहुत बार यह आदर्श समाज सेवा होता है, जिसका व्रत इन सन्तों ने मनुष्य के भीतर रहने वाले परमात्मा के नाम पर ले रखा है। इस प्रकार आप देखेंगे कि यहाँ पर भी नैतिक रहस्यवाद और धार्मिक रहस्यवाद में कोई भेद नहीं रहता। ये सन्त तोन्टर् या परमात्मा के सेवक कहलाते हैं। वैष्णव सन्तों के विषय में भी कहा जाता है कि वे इस तोन्टर् जाति के हैं, जिसका यह मतलब निकलता है कि वे भी जाति भेद को नहीं मानते। वे मानते हैं कि परमपिता परमात्मा के पुत्र होने के नाते सब मनुष्य भाई-भाई हैं और वे सेवा और प्रेम के दिव्य गणराज्य में रहते हैं।

7. उपसंहार

संघकाल की कविता और तमिल महाकाव्यों का इतिहास, अठारह नीतिग्रन्थों का इतिहास, शैव और वैष्णव सन्तों और पदों के लेखकों का इतिहास, जैन और हिन्दू महाकाव्यों का इतिहास, पुराणों और प्रबन्धों का इतिहास और आधुनिक तमिल का इतिहास ये सब तमिल साहित्य के इतिहास के अन्तर्गत हैं। इस संक्षिप्त परिचय से आपको

मालूम होगा कि इन सब कालों में नीति-शास्त्र का केन्द्रीय स्थान रहा है। इस प्रकार तमिल में सन्तवाणी का महत्व और तमिल के सब प्रकार के साहित्य से उसका सम्बन्ध आसानी से देखा जा सकता है और वह हमें भारत के अन्य साहित्यों की सन्तवाणी से उसकी तुलना करने के लिए प्रेरित करता है और अन्त में उससे भारत की आधारभूत मौलिक एकता सिद्ध होती है। आशा है कि यह संक्षिप्त परिचय तमिल साहित्य के सामान्य स्वरूप को ही नहीं बल्कि तमिल साहित्य पर डाले हुए इस नये प्रकाश की सहायता से भारत के अन्य साहित्यों को भी और अच्छी तरह समझने में सहायक सिद्ध होगा।

तमिऴ के प्राचीन महाकाव्य

का० श्री० श्रीनिवासाचार्य

तमिऴ भाषा तीन हज़ार वर्षों से भी पुरानी है, और चलती भाषा है। साहित्य से वह सदा ही समृद्ध रही है। इतनी पुरानी होने पर भी उसके व्याकरण में परिवर्तन कम हुआ है। इसलिए किसी भी काल के तमिऴ-साहित्य को थोड़े ही परिश्रम से लोग समझ सकते हैं।

संस्कृत के अनुष्टुप् छन्द की तरह, प्राचीन तमिऴ काव्यों में आशिरियप्पा, वेण्बा, कलिप्पा और वंजिप्पा—इन चार छन्दों का उपयोग किया गया है। कई तरह के वृत्तों में कविता करने की रीति बाद में आयी। ये वृत्त उपर्युक्त छन्दों के उपभेद (पा-इनम्) हैं। छन्दों के इस विभाग के कारण तमिऴ में यह बतलाया जा सकता है कि अमुक काव्य पुराना है या नहीं। पुराने काव्यों में अधिकतर आशिरियप्पा और वेण्बा छन्द का प्रयोग हुआ है।

तमिऴ-साहित्य के विशाल क्षेत्र को पद्य-साहित्य ने घेर रखा है। कोश व व्याकरण, पुराण व जीवनियाँ, ज्योतिष व वैद्यक, धर्मशास्त्र व नीतिशास्त्र, भूगोल व खगोल—सभी विषय पुराने जमाने में कविता के रूप में लिखे गये। सभी ग्रन्थ ताड़पत्रों पर लिखे जाते थे।

तमिऴ के उपलब्ध साहित्य में सर्वप्रथम प्राचीन ग्रन्थ है, 'तोल्काप्पियम्'। इसके रचयिता तोल्काप्पियर्, महामुनि अगस्त्य के बारह शिष्यों में प्रधान थे। 'तोल्काप्पियर' शब्द का अर्थ है—कपि गोत्र के वृद्ध नेता।

तोल्काप्पियर् की रचना होने से इस ग्रन्थ का नाम 'तोल्काप्पियम्' पड़ा। संस्कृत के 'काव्य' शब्द से इसका कोई सम्बन्ध नहीं है। और, तोल्काप्पियम् तो काव्य नहीं, व्याकरण और लक्षण-ग्रन्थ है। यह व्याकरण का ग्रन्थ होने पर भी तत्कालीन तमिळ-जीवन पर अच्छा प्रकाश डालता है।

संस्कृत में ऐन्द्र नाम का एक व्याकरण था, जो अब नहीं मिलता। तोल्काप्पियर् इस प्राचीन ऐन्द्र व्याकरण के बड़े पंडित थे। उन्होंने अपने सूत्र में बताया है—'इन्द्र ने ऐसा कहा था'। इस तरह हम देखते हैं कि तमिळ में कई बातें बहुत पुराने संस्कृत ग्रन्थों से ली गयी थीं; और वे पुराने संस्कृत-ग्रन्थ आज नहीं मिल रहे हैं। पैशाची प्राकृत में गुणाढ्य की लिखी हुई 'बृहत्कथा' अब लुप्त हो गयी है। उसके आधार पर दुर्विनीत नामक गंगराज ने एक संस्कृत काव्य बनाया था, वह भी अब नहीं मिलता; लेकिन उसका तमिळ रूप 'पेरुंकदै' के नाम से उपलब्ध है।

पहले-पहल अगस्त्य ने तमिळ व्याकरण की रचना की थी; पर उनका व्याकरण 'अगत्तियम्' अब नहीं मिलता। तोल्काप्पियर् ने इसी अगस्त्य व्याकरण के आधार पर अपना व्याकरण लिखा था और अगस्त्य के कुछ सूत्र इसमें मिलते हैं।

तमिळ शब्द का अर्थ है 'माधुर्य'। यों तो अपनी भाषा हर किसी को मीठी लगती है, परन्तु तमिळ कवियों ने इस शब्द का उपयोग इसी अर्थ में अपने काव्यों में भी किया है। 'उसका था वह तमिळ स्वभाव', 'तमिळ ही तुम प्रिये, लगती !—ऐसी पंक्तियाँ काव्यों में पायी जाती हैं। यहाँ 'मधुर' के अर्थ में तमिळ शब्द का प्रयोग हुआ है। उत्तरापथ के निवासी, तमिळ में जो विशिष्ट ळकार है, उसका उच्चारण न कर सकने के कारण उसे द्रमिड व द्रविड कहने लगे। इसीसे तमिळ लोगों का नाम द्रविड पड़ा। संस्कृत में भी इन्हीं शब्दों का उपयोग हुआ है, जैसे, द्रमिडोपनिषत्, 'द्राविडीं वेदसंहिताम्' आदि।

प्राचीन काल में तमिळ पंडितों का एक सुदृढ़ संगठन था। उनकी वह प्राचीन संस्था 'संघ' के नाम से प्रसिद्ध है। प्राचीन तमिळ के तीन

संघ थे, जिनमें से प्रथम दो संघों में अगस्त्य मुनि विद्यमान थे और वे भाषा के अनुसन्धान-कार्य में लगे थे। प्रथम संघ का केन्द्र-स्थान दक्षिण मदुरै, मध्यम संघ का कपाटपुर और अन्तिम संघ का मदुरै रहा। मध्यम संघ के कपाटपुर का उल्लेख महर्षि वाल्मीकि ने भी किष्किन्धा काण्ड के ४०वें सर्ग में किया है—

ततो हेममयं दिव्यं मुक्तामणिविभूषितम्।
युक्तं कवाटं पाण्ड्यानां गता द्रक्ष्यथ वानराः॥

कवि चक्रवर्ती ओट्टक्कूत्तर ने भी इस नगर का उल्लेख अपनी एक कविता में किया है।

संघ-काल के विद्वान् एक ही समय के, एक ही स्थान के, एक ही जाति के, एक ही कुल के, एक ही धर्म के, या एक ही जीविका करने वाले नहीं थे। ये लोग अलग-अलग जगहों में रहते हुए अपनी भाषा की सेवा किया करते, और पर्याप्त ज्ञान प्राप्त करने पर मदुरै जाकर वहाँ के कवियों के साथ मिल-जुलकर, कुछ समय तक वहाँ ठहरकर, भाषा-ग्रन्थों का परिशीलन करते और वहाँ से प्रकाण्ड पडित व कवि होकर लौट आते थे।

तमिऴ् लोगों का विश्वप्रेम बहुत पुराना है। 'सभी गाँव हमारे हैं। सभी लोग हमारे बान्धव है' (यादुम् ऊरे यावरुम् केळिर्) यह उनका जीवन-सूत्र था। प्राचीन काल में भारत में अठारह भाषाएँ प्रचलित थीं और इन अठारह भाषाओं के जानकार, तमिऴ् प्रान्त की भिन्न-भिन्न जगहों में रहते थे। स्त्रियाँ भी बहुत-सी भाषाएँ जानती थीं।

तमिऴ् कवि स्वयं अपने प्रान्त के नेता तो थे ही, वे दूसरे प्रान्तों में भी जाकर वहाँ के कवियों से विचार-विनिमय करते थे। बाहरी प्रान्तों के कवि-गण भी तमिऴ् प्रान्त में आकर आदर-सत्कार पाकर लौटते थे। उत्तर भारत से प्रहस्त नाम का एक राजा दक्षिणापथ को आया था। दक्षिण के कवि भगवान् कपिल से उसने तमिऴ् सीखी थी। तमिऴ् प्रान्त

के रंग-बिरंगे फूलों के नाम उसको सिखाने के लिए भगवान् कपिल ने 'कुरिंजि पाट्टु' नाम का काव्य बनाया था।

दूसरा राजा ब्रह्मदत्त मदुरै के तमिळ् संघ का एक कवि था। उसने तमिळ् में कई कविताएँ लिखी हैं। तमिळ् संगीत में भी वह बड़ा निपुण था।

'शिलप्पधिकारम्' नाम का पुराना तमिळ् महाकाव्य कहता है कि काविरिप्पूम्पट्टिनम् में अनेक भाषाओं के बोलने वाले कई देशों के लोग एकसाथ मिल-जुलकर हँसी-खुशी से रहते थे। मदुरै वगैरह शहरों में भी इसी तरह भिन्न-भिन्न देश के लोग रहते थे। अपनी-अपनी भाषाओं की खूबियाँ एक-दूसरे को बताने में उन्हें बड़ा आनन्द आता था।

तमिळ् प्रान्त की शिल्प-कला के निर्माण में गुजरात, बंगाल, नेपाल, लंका आदि कई स्थानों के शिल्पी और कारीगरों ने भाग लिया था। 'मणिमेखला' नामक महाकाव्य में, राजमहल के एक सुन्दर मण्डप का वर्णन आता है। कवि कहता है कि उस मण्डप को मगध देश के जौहरी, महाराष्ट्र के सुनार, अवंती के लोहार और यवन देश के सुतारों के सहयोग से तमिळ् प्रान्त के कारीगरों ने बनाया था।

मगध विनैञरुम्, मराट्टक्कम्मरुम्,
अवन्तिक्कोल्लरुम्, यवनत्तच्चरुम्,
तण्तमिळ् विनैञर् तम्मोडु कूडि···

प्राचीन तमिळ् ग्रन्थों में प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन अधिक है। उस काल की कविता प्रकृति की गोद में पली थी। उस काल की वीरता में आध्यात्मिक प्रेम भी मिला हुआ है। वहाँ सदैव संगीत-नाद के साथ झरने बह रहे हैं। ललनाएँ उनमें क्रीड़ा कर रही हैं। आनन्द से फूल बीनकर चट्टानों पर रखकर वे अपना सौन्दर्य निरख रही हैं। नायक शिकार खेलता हुआ वहाँ आता है। उन ललनाओं के मध्य वह किसी नायिका को देखता है। दोनों की दृष्टि मिलती है और प्रेम के प्रवाह में दोनों का मन एक हो जाता है।

ग़रीब ग्वाले की एक झोंपड़ी है। उसके खम्भे में बंधे हुए पत्तों को बकरियाँ चबा रही हैं। समुद्र-तीर पर बसने वाले धीवरों की गलियों में, मोतियों को सीपों में डालकर, बन्दर बच्चों के साथ खेल रहे हैं। शाम को बंसी बजाते हुए ग्वाले गायों के साथ घर लौटते हैं। कवि-गण राजाओं के साथ काव्यालाप कर रहे हैं।

एक ओर टूटी झोंपड़ियाँ हैं, जहाँ चूल्हे जलाये बहुत दिन हो गये। चूल्हे में घास-फूंस उगे हैं। ऐसे दरिद्रियों के सामने वहाँ दूसरी ओर देखिए: व्यापार की मण्डियाँ हैं, बाज़ार-हाट हैं, राजमन्दिरों में महा-लक्ष्मी का नृत्य हो रहा है। इस साहित्य में वीरता, प्रेम, दया, शोक आदि के रसभीने दृश्य हमें मिलते हैं। अच्छी-से-अच्छी सूक्तियाँ भी मिलती हैं: "मरण से दु:खद बात और कोई नहीं है; लेकिन जब आपके हाथ में दूसरे को देने लायक कोई चीज़ न हो, तब वही मरण सुखद हो जाता है।"

प्रथम संघ-काल के तमिळ-ग्रन्थों में से अगस्त्य व्याकरण के कुछ सूत्र, मध्यम संघ का तोल्काप्पियम्, और अन्तिम संघ के ग्रन्थों में एट्टुत्तोहै, पत्तुप्पाट्टु और पदिनेण्कीळ्कणक्कु—ये ही अब उपलब्ध हैं, जिनके अध्ययन से उपर्युक्त बातें जानी गयी हैं।

एट्टुत्तोहै में आठ ग्रन्थों का समावेश है। इनमें नीतिपूर्ण शृंगार, युद्ध-विषयक वर्णन, तमिळ राजाओं के चरित्र, लोगों का आचार-व्यवहार, महाविष्णु, भगवान् स्कन्द, वैगै नाम की नदी व मदुरा नगर की स्तुतियाँ आदि कई बातें हैं।

पदिनेण्कीळ्कणक्कु—अठारह नीति-ग्रन्थों का संग्रह है, जिसमें 'तिरुक्कुरळ्' भी मिला है।

अधिकतर मुक्तक कविताओं का यह युग था, और तमिळ साहित्य का यह इतिहास सन् 100 तक हुआ। इसके बाद, 100 से 600 ईस्वी तक पाँच तमिळ महाकाव्यों का उदय हुआ। शिलप्पधिकारम्, मणि-मेखला, जीवक-चिन्तामणि, वलैयापदी और कुण्डलकेशी—ये पाँच

तमिऴ् महाकाव्य हैं। वळैयापदी की बहत्तर कविताएँ और कुण्डल केशी की उन्नीस कविताएँ आज मिलती हैं, क्योंकि कई ग्रन्थों में इनका उद्धरण है। बाकी तीन महाकाव्य शिलप्पधिकारम्, मणिमेखला और जीवक-चिन्तामणि—आज पूर्ण रूप से मिलते हैं। तमिल में पंच महाकाव्य नाम का कोई विभाग नहीं है; लेकिन सम्भव है कि संस्कृत पंच महाकाव्यों के अनुकरण पर यह विभाग पिछले काल में हुआ हो। संस्कृत के पाँच महाकाव्यों में से दो तो कालिदास के हैं—रघुवंश और कुमारसम्भव; बाकी तीन हैं—माघ का शिशुपाल-वध, श्रीहर्ष का नैषधीयचरित और भारवि का किरातार्जुनीय। लेकिन तमिऴ् के पाँच महाकाव्य पाँच विभिन्न महाकवियों के रचे हुए हैं। शिलप्पधिकारम्, इळंगोवडिगळ् की अमर मौलिक रचना है। ये मणि-मेखला के प्रणेता शीत्तलैच्चात्तनार् के समकालीन, और चेर-राज शेंगुट्टु-वन् के भाई थे। मणिमेखला के रचयिता शीत्तलैच्चात्तनार् मदुरै में अनाज का व्यापार करते थे, और बौद्ध धर्म के प्रेमी थे। जीवक-चिन्ता-मणि के विधाता तिरुत्तक्केदेवर् का जन्म चोलराज के कुल में हुआ था और वे युवावस्था में ही जैन सन्यासी हुए। वळैयापदी के कवि के बारे में हम कुछ नहीं जान सके हैं, क्योंकि वह काव्य उपलब्ध नहीं है। कुण्डलकेशी के रचियता नाथगुप्त नाम के बौद्ध थे, और इस काव्य की कथा 'थेरीगाथा' में भी मिलती है। वळैयापदी और कुण्डलकेशी ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में महाकाव्य थे या नहीं, यह भी हम नहीं जान सके हैं। इसलिए 'तमिळ के तीन महाकाव्य' यह संज्ञा ही आज उचित प्रतीत होती है। इन तीन महाकाव्यों को मैं मणि-त्रय कहूँगा। मणि-मेखला और जीवक-चिन्तामणि में तो 'मणि' शब्द है ही। शिलप्पधि-कारम् का अर्थ है, शिलम्बु यानी पायल (कण्णगी की पायल) के बारे में कहनेवाला काव्य। इसलिए मैं हिन्दी में इसका नामकरण 'मणि-मंजीर' करता हूँ। मणि-मंजीर, मणिमेखला और जीवकचिन्तामणि ये मणि-त्रय हुए।

अब यह प्रश्न उठता है कि इन महाकाव्यों का आज क्या प्रयोजन है ? काव्यों के बहुत-से प्रयोजन लक्षणकारों ने गिनाये हैं, जैसे, काव्य कीर्ति के लिए है, धन के लिए है, जीवन का व्यवहार जानने के लिए है, अमंगल के विनाश के लिए हैं, शीघ्र ही परम आनन्द पाने के लिए है और प्रेमिका की मीठी बातों की तरह समुचित जीवन-सन्देश देने के लिए है। 'काव्यं यशसे अर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये। सद्यः पर-निर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे ॥' मैं कहूँगा कि महाकाव्यों का उपयोग आज भी इसलिए है कि मनुष्य अब भी मनुष्य है। जब तक जग में प्रेम और युद्ध अर्थात् संघर्ष का अस्तित्व रहेगा, तब तक सभी भाषाओं के महाकाव्य जीते-जागते रहेंगे। ये महाकाव्य जग-जीवन की चिरन्तन गाथाएँ हैं और विभिन्न भाषाओं के महाकाव्य एक-दूसरे के पूरक और सहायक है।

इसे प्रमाणित करने के लिए अब मैं एक उदाहरण दूँगा। विभिन्न कवियों में भाव-साम्य तो है ही; उसका विवेचन यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ मैं यह साबित कर रहा हूँ कि भारतीय भाषाएँ एक-दूसरी की पूरक और सहायक हैं।

महाकवि कालिदास के रघुवंश में, चौथे सर्ग में इन्द्रध्वज का उल्लेख है। कालिदास कहते हैं कि, 'इन्द्रध्वज की तरह नयी-नयी उन्नतियाँ पाते हुए रघु महाराज को उत्सुकता से देख-देखकर, बाल-बच्चोंवाले प्रजा-जन बड़े ही आनन्दित हुए। "पुरुहूतध्वजस्येव तस्योन्नयनपंक्तयः। नवाभ्युत्थानदर्शिन्यो ननन्दुः सप्रजाः प्रजाः।" यहाँ जो इन्द्रध्वज की उपमा दी गयी है यह क्या है ? रघुवंश की टीका में मल्लिनाथ लिखते हैं—'पुरुहूतध्वजः-इन्द्रध्वजः। स किल राजभिर्वृष्ट्यर्थं पूज्यते।' अर्थात् इन्द्रध्वज की पूजा राजा लोग वर्षा के लिए किया करते हैं।

कालिदास के समय में लोग इन्द्रोत्सव मनाते थे, और उसके बारे में अच्छी तरह जानते थे; इसलिए कालिदास ने यह प्रसिद्ध उपमा दी है। परन्तु इन्द्रोत्सव क्या था, इन्द्रध्वज क्या था, वह उत्सव कैसे मनाया

जाता था—इन बातों के बारे में संस्कृत-ग्रन्थों में कोई विवरण नहीं मिलता; सिवाय इसके कि भविष्योत्तर पुराण में इसका उल्लेख-मात्र है। वहाँ कहा गया है कि, 'राजद्वार पर ध्वजाकार चतुरस्र बनाया जाता है, जिसे इन्द्रध्वज कहते हैं। यह नगरवासियों की भलाई करता है।' चतुरस्रं ध्वजाकारं राजद्वारे प्रतिष्ठितम्। आहुः शक्रध्वजं नाम पौरलौकसुखावहम् ॥ परन्तु सच्ची बात यह है कि इस उत्सव को राजा के साथ मिलकर प्रजाजन मनाते थे, और यह उत्सव उस काल में सारे भारत में प्रचलित था।

उत्तरापथ में जब कालिदास के महाकाव्यों का प्रचार व प्रसार हो रहा था, उसी समय यानी ईस्वी पहली शताब्दी में तमिऴ में शिलप्प-धिकारम् और मणिमेखला का उदय हुआ था। इन दोनों काव्यों में इन्द्रोत्सव का विस्तृत वर्णन है।

पुराने युग में चोल देश का शासक एक महाप्रतापी राजा था। उसने दुनिया के राजाओं को तो क्या, देवों के शत्रु असुरों को भी युद्ध में परास्त कर दिया था। असुरों ने आसमान में उडनेवाले किले बनाये थे, पर चोलराज ने उनका विध्वंस कर डाला था। इसलिए उसका नाम 'तूंगेयिलेरिन्द तोडित्तोऴ् शेम्बियन्' पड़ा। (तूंगु-उड़ते हुए, एयिल्-गढ़ों को, एरिन्द-तोड़नेवाला, तोडितोऴ्—बाजूबन्द से शोभित, शेम्बि-यन—चोलराज।) चोल देश की प्राचीन नगरी काविरिप्पूम्पट्टिनम्, उसकी राजधानी थी। वहाँ के लोग जग-भर में अपने उत्तम आचरण के लिए प्रसिद्ध थे।

मलय पर्वत में तपस्या करनेवाले अगस्त्य मुनि उस देश को सब तरह से सम्पन्न बनाना चाहते थे। उनके आदेश से चोलराज देवेन्द्र के पास गया। देवराज से उसने प्रार्थना की—"मैं अपने नगर में अट्ठा-ईस दिन इन्द्रोत्सव मनाना चाहता हूँ। तब आप वहाँ उपस्थित रहिये।" इन्द्र ने यह बात मान ली। तभी से प्रतिवर्ष इन्द्रोत्सव होने लगा।

फिर उस चोलराज की कई सन्ततियाँ आयीं और चली गयीं, परन्तु इन्द्रोत्सव कभी नहीं रुका।

हर वर्ष इन्द्रोत्सव धूमधाम से होता था। काविरिप्पूम्पट्टिनम् में रहनेवाले सभी धर्माचार्य, ज्योतिषी, देवी-देवता, भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलनेवाले व्यापारी, मंत्रिगण और राज्य के अधिकारी इकट्ठे हुए और सोचने लगे—'अगर इन्द्रोत्सव रुक जायेगा, तो हम पर बड़ी भारी आपत्ति आ पड़ेगी। नगर के बीच में रहनेवाला बाज़ार का भूत हमें बहुत ही सतायेगा; पापियों को मारकर खानेवाला चौराहे का भूत यहाँ से भाग जायेगा; इसलिए उत्सव तो मनाना ही चाहिये।' आज भी हम देखते हैं कि वर्षा के अभाव में बाज़ार में काले भूत का संचार होता है, और चोर-लुटेरों को पकड़कर सजा देनेवाले न्याय-देवता कूच कर जाते हैं।

फिर इन्द्रोत्सव की आयोजना होने लगी। वज्रायुध के मन्दिर में जो डंका था, वह हाथी पर चढ़ाया गया। डंका पीटनेवाला बहुत ही प्राचीन कुल का था। जिस ज़माने में चारों ओर पर्वत-ही-पर्वत थे, और कहीं जमीन का नामोनिशान नहीं था, उस ज़माने से उसका कुल चला आता था। पहले तो उसने राजधानी की महिमा गायी; फिर कहने लगा :—

"बादल खूब गरजे और महीने में तीन बार वर्षा हो। राजा का शासन नीतिपूर्ण हो। इन्द्रोत्सव के समय स्वर्ग खाली हो जाता है; देवेन्द्र के साथ सभी देवता यहाँ पधारते हैं। इसलिए राज-वीथियों के बाहरी फाटकों में व मन्दिर-द्वारों में पूर्ण कुम्भ और स्वर्णपालिकाओं की स्थापना करो। कई तरह की प्रतिमाओं से बने हुए दीपों की मालाएँ नगर-भर में जगमगाने दो। सुपारी के गुच्छ, केले, गन्ने और पुष्पलताएँ बाँधकर भवनों को सजाओ। स्तम्भों को मोती की मालाओं से अलंकृत करो। पुरानी बालुका को सड़कों से हटाकर नयी भरो। द्वार और गोपुरों पर भाँति भाँति के रँगीन कपड़ों की ध्वजाएँ फहरने दो। भाल-

नेत्रवाले महादेव जी से लेकर चतुष्क-भूत तक के मन्दिरों में जाकर षडंग के ज्ञाता ब्राह्मण लोग आवश्यक अनुष्ठान करें। धर्मोपदेश देने-वाले हे सज्जनो, आप लोग सभा-मंडपों और आम जगहों में जाकर अपने-अपने व्याख्यान सुनाइये। हे सिद्धान्तवादियो, आप विद्या-मंडप में जाइये और अपने-अपने स्थान पर बैठकर वाद-विवाद कीजिये। किसी से वैर-भाव मत रखिये, क्रोध न कीजिये।"

घोषणा इन शब्दों के साथ पूर्ण हुई—"भूख, बीमारी और डाह मिट जायें। वर्षा और सम्पत्तियों का स्रोत बहता रहे।"

"पशियुम् पिणियुम् पहैयुम् नींगि, वशियुम् वळनुम् शुरक्क।"

यह है इन्द्रोत्सव का वर्णन। इस तरह हम देखते हैं कि तमिळ् भाषा संस्कृत की पूरक और सहायक है।

दूसरों की भाषा जानने के कारण एक आदमी की जान कैसे बच गयी; यही नहीं, वह कैसे उन लोगों का गुरु बन बैठा, इस बारे में एक कहानी मणिमेखला काव्य में मिलती है।

काविरिप्पूम्पट्टिनम् में साधुवन् नाम का एक धनी व्यापारी रहता था। एक समय वह किसी वेश्या के जाल में फँसा और उसने अपनी सारी जायदाद गँवा दी। वह धन पाने के लिए कुछ व्यापारियों के साथ विदेश चला। कुछ दूर जाने पर जहाज़ समुद्र में डूब गया। साधुवन् मस्तूल के एक टुकड़े के सहारे उस समुद्र-तीर पर जा पहुंचा, जिसके पास ही नागों का पहाड़ था।

उसके साथ के कुछ व्यापारी जहाज के टूटे टुकड़ों के सहारे कावि-रिप्पूम्पट्टिनम् वापस आये, और वहाँ साधुवन् की मृत्यु-वार्ता सुना दी। यह सुनकर साधुवन् की पत्नी आद्रा शोकसागर में डूब गयी, और उसने अग्नि में प्रवेश किया। लेकिन आग की लपट उसे शीतल चन्दन-सी लगी। तभी आकाशवाणी हुई—"साधुवन् जीता है और जल्दी ही लौट आयेगा।"

इधर थका-मांदा साधुवन् एक पेड़ के नीचे सो रहा था कि कई

नाग वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने सोचा कि आज हमें अच्छा भोजन मिल गया है; इसे मारकर खायेंगे।

साधुवन् नागों की भाषा जानता था, इसलिए उनके जगाने पर वह उन्हीं की भाषा में बोलने लगा। वे उसे अपने गुरुदेव के पास ले गये। उनका गुरुदेव शराब के बर्तनों, मांस के ढेरों और सूखी हड्डियों के बीच, अपनी स्त्री के साथ बैठा था।

साधुवन् ने अपनी कहानी उसे सुनायी। तब गुरुदेव ने आज्ञा दी—"अरे, यह आदमी भूखा है। इसे खूब मांस और शराब दो। एक नव-यौवना नारी भी दे दो।"

"मुझे ये सब नहीं चाहिए।"—साधुवन् ने उस पर तरस खाकर कहा।

गुरुदेव को क्रोध आ गया—"अरे मूर्ख! नारी और भोजन के अलावा मनुष्य को सुखी करनेवाली वस्तु और कौन-सी है?"

साधुवन् उसे धीरे-धीरे समझाने लगा—"शराब पीना व जीवों की हिंसा करना—इन दो बातों को सज्जनों ने मना किया है, क्योंकि ये दोनों पापकर्म है। जन्म के बाद आदमी मरता है, और मरने के बाद जन्म लेता है, जैसे कि वह सोने के बाद जागता है। मनुष्य का जन्म पाकर कोई पुण्य करता है तो वह स्वर्ग में जाता है, और पाप करने पर नरक में जाता है, पुण्य से सुख मिलता है, और पाप से दुःख। जीव को अपने पुण्य-पापों के अनुसार ही दूसरा शरीर मिलता है। इसलिए, तुम आज से सब जीवों पर दया करना सीखो।"

साधुवन् के उपदेशों का गुरुदेव पर अच्छा प्रभाव पड़ा। गुरुदेव ने उसी दिन से अहिंसा का व्रत ले लिया। इस तरह साधुवन् गुरुदेव का भी गुरु बना, और उसकी दी हुई भेंटों को लेकर अपने घर लौट आया।

वाल्मीकि, व्यास और कालिदास के समान शिलप्पधिकारम् के महाकवि इलंगोवडिगल् भारत के राष्ट्रीय कवि हैं। उनका काव्य मणिमंजीर पुरानी, जीवित और समृद्ध तमिल भाषा का आदिकाव्य है।

इलंगोवडिगल्, चेरराज इमयवरम्बन् के दूसरे पुत्र थे। इमयवरम्बन् यानी जिसका आज्ञाचक्र हिमगिरि तक चलता था। इलंगोवडिगल् का बड़ा भाई था शेंगुट्टुवन्।

एक दिन चेरराज अपनी रानी नर्चोण और दोनों पुत्रों के साथ सभा-मंडप में विराजमान था; तब वहाँ एक प्रसिद्ध ज्योतिषी आया। उसने दोनों राजकुमारों को देखा, और राजा से कहा, "चेरराज, आपके बाद इस राज्य का शासक आपका दूसरा पुत्र ही बनेगा, क्योंकि उसी में मुझे राजा के योग्य लक्षण दिखायी देते हैं।"

दूसरा राजकुमार तुरन्त उठ खड़ा हुआ और बोला, "बड़े भाई के रहते छोटे का शासक बनना अन्याय है। पिताजी, मेरे भाई शेंगुट्टुवन् पृथ्वीराज होंगे और मैं यतिराज बनूंगा।" यह कहकर वह सीधे तिरु-क्कुणवायिल् नामक गाँव के मन्दिर में जा बसा, और उसी दिन संन्यास ले लिया। यही थे इलंगोवडिगल्—शिलप्पधिकारम् के महाकवि।

शिलप्पधिकारम् का मंगलाचरण, वेदमन्त्रों के समान है। इसमें चन्द्रमा, सूर्य, वर्षा और काविरिप्पूम्पट्टिनम् की वंदना की गयी है।

"हम चन्द्रमा की वंदना करते हैं,
चन्द्रमा की वंदना करते हैं;
क्योंकि, चोलराज के शीतल श्वेत छत्र की तरह, सारे
ज़ग में उसकी शुभ्र ज्योत्स्ना फैली हुई है।"

"हम सूर्य की वन्दना करते हैं,
सूर्य की वन्दना करते हैं;
क्योंकि, कावेरी-राज्य के अधिपति चोलराज के आज्ञाचक्र की
भाँति, यह सूरज कांचनशृंगवाले मेरुगिरि की परिक्रमा करता है।"

"हम वर्षा की वन्दना करते हैं,
वर्षा की वन्दना करते हैं;
क्योंकि, चोलराज की भाँति यह वर्षा भी रत्नाकर-मेखला
भूमि को समृद्ध बनाती है।"

"हम काविरिप्पूम्पट्टिनम् की वंदना करते हैं,
काविरिप्पूम्पट्टिनम् की वंदना करते हैं;
क्योंकि, चोल राजकुल की तरह यह नगर भी
भव्य और उन्नत है।"

काविरिप्पूम्पट्टिनम्—वह मनोरम नगर है, जहाँ कावेरी समुद्रराज से मिलती है। इस नगर में एक बडा धनी व्यापारी था मानाय्कन्, जिसका बेटा कोवलन् सुन्दर युवक था। इसका विवाह नगरसेठ माशात्तुवान् की रूपवती कन्या कण्णगी से हुआ। कोवलन् और कण्णगी बहुत दिनों तक सुख से रहे; लेकिन 'सब दिन जात न एक समान।'

कोवलन् का प्रेम नगर की नाट्यसुन्दरी माधवी पर जड़ गया। माधवी के मधुर संगीत और मनमोहक नाच से मुग्ध होकर वह कलामय जीवन बिताने लगा। माधवी से उसे वह कलाकंद मिला, जो कण्णगी के पास से नहीं मिल सकता था। फिर भी कण्णगी वही पुरानी पतिव्रता थी, और कोवलन् जो कुछ दौलत या जवाहर माँगता था उसे तुरन्त देती थी।

इन्द्रोत्सव का समय आया। लोगों ने अट्ठाईस दिन का वह उत्सव धूमधाम से मनाया। उत्सव के बाद अगले दिन कोवलन् माधवी के साथ समुद्र की शोभा निहारने गया। वहाँ दोनों ने वीणा पर बहुत-से गाने गाये। अन्त में माधवी ने एक ऐसा गाना गाया, जिससे यह ध्वनित होता था कि वह किसी दूसरे युवक पर मोहित है। कोवलन् को उस पर सन्देह हुआ, और वह खीझकर घर लौट आया। उसकी सारी जायदाद अब माधवी के पास चली गयी थी।

कोवलन् ने वहाँ से मदुरै जाकर नये सिरे से व्यापार करने का निश्चय किया। उसके पास कण्णगी के रत्नजटित नूपुर थे। एक पायल को बेचकर उसी पूंजी से वह व्यापार करना चाहता था। कोवलन् और कण्णगी मदुरै के रास्ते में चले। इतने में माधवी ने कोवलन् को अपना प्रेम-सन्देश भेजा, और अनुनय विनय के साथ उसकी भेंट के लिए प्रार्थना

की। वह गर्भवती थी। लेकिन तब तक कोवलन् कण्णगी के साथ मदुरै की ओर बहुत दूर चला गया था।

मदुरै में एक ग्वालिन के यहाँ कण्णगी को छोड़कर कोवलन् बाज़ार में पायल बेचने गया। इधर मदुरै के राजमहल से एक सोनार रानी का एक नूपुर चुरा ले गया था। दैववश कोवलन् उसी सोनार के पास जा पहुँचा, और कण्णगी के मणिमंजीर को बेचना चाहा। सोनार सीधे राजा के पास गया और बोला, "महाराज, रानी के नूपुर का चोर अभी बाजार में है।" राजा ने चोर को मारकर नूपुर को वापस लाने का आदेश दिया। राजसेवकों में एक उद्धत युवक था, जिसने सोनार के उकसाने के कारण तलवार के एक ही वार से कोवलन् का काम तमाम कर दिया।

वीरपत्नी कण्णगी ने अपने पति की हत्या के बारे में सुना, तो वह आगबबूला हो गयी। वह, उसके पास जो दूसरी पायल थी, उसे लेकर तेज़ी से चल पड़ी। बाज़ार में उसने अपने मरे पड़े पति को देखा। चारों ओर जमा हुई जनता से कण्णगी ने पूछा—"क्या इस शहर में पतिव्रता स्त्रियाँ नहीं हैं? क्या सज्जन लोग नहीं हैं? क्या यहाँ कोई देवता भी है?"

वह रोती-चिल्लाती राजमहल में गयी। राजा को उसने दिखा दिया कि रानी के नूपर और उसके अपने नूपुर में फरक था। रानी की पायल के घूँघरू मोती के बने थे, और कण्णगी की पायल में माणिक्य के घूँघरू थे। जिस क्षण राजा को मालूम हुआ कि उसके हाथ से अनीति हुई है उसी क्षण उसके मुँह से यह उद्गार निकला—"मैं राजा हूँ? नहीं, मैं चोर हूँ!"

"यानो अरशन्? याने कल्वन्!"

और उसके प्राणपखेरू उड़ गये। कण्णगी के धार्मिक प्रकोप के संताप से सारा मदुरै नगर धधककर जलने लगा। कण्णगी ने कहा, "मैं अपने पति के साथ मदुरै के पूर्व-द्वार से आयी थी, और अब अकेली शून्यता के

साथ पश्चिम द्वार से जा रही हूँ।" वह रात-दिन वहाँ से चलती रही और चेर राज्य के तिरुच्चेंगोड्डु नामक पर्वत पर जा पहुँची। वहाँ स्वर्ग से आये हुए कोवलन् के साथ उसका समागम हुआ, और वह अपने पति के साथ स्वर्ग में जा पहुँची, जहाँ देवताओं ने उन दोनों का स्वागत किया।

चेरराज शेंगुट्टुवन् ने वीरपत्नी कण्णगी के लिए एक शानदार मन्दिर बनवाया। मन्दिर के प्रतिष्ठापन के शुभ मुहूर्त पर भारतवर्ष के सभी राजा लोग आये थे और लंकाधिप गजबाहु भी वहाँ उपस्थित था। गजबाहु ने लंका में भी कण्णगी देवी का मन्दिर बनवाया था। पतिव्रता नारी को देवी बनाने का पहला उपक्रम इसी काव्य में हुआ है। इस काव्य-कथा की घटनाएँ चोल, पांड्य और चेर इन तीनों तमिळ् राज्यों में हुई; इसलिए समूचे तमिळ् प्रान्त के जन-जीवन को चित्रित करने वाला यह पहला राष्ट्रीय महाकाव्य है।

मणिमेखला घटना-क्रम की दृष्टि से शिलप्पधिकारम् का ही उत्त-रार्ध है; क्योंकि इसमें माधवी की पुत्री मणिमेखला की जीवन-गाथा है। "इस अणुमय जग में रहनेवाले सारे मानवों को जो लोग भोजन देते हैं, वे जीवन-दान करते हैं।"—

मण्तिणि ञालत्तु वाळ्वोर्क्केल्लाम्,
उण्डि कोडुत्तोर् उयिर् कोडुत्तोरे।

यही महामन्त्र, इस महाकाव्य का परमोत्तम सन्देश है।

निरपराध कोवलन् की हत्या की बात सुनकर माधवी बौद्ध-भिक्षुणी बन गयी। उसने अपनी बेटी मणिमेखला को भी तपस्या का मार्ग दिखा दिया।

एक दिन मणिमेखला अपनी माता की सहेली सुधामति के साथ पूजा के लिए नये फूल लाने गयी। बाहर धूप पड़ रही थी, लेकिन उप-वन में पेड़ों की शीतल छाया अत्यन्त सुखकर थी। भौंरे मुरलीगान को मात कर रहे थे। मोर नाच रहे थे और बन्दर तमाशा देख रहे थे।

सुन्दर सरोवर के नीले पानी में शतपत्र कमल के फूल पर एक राजहंस विराजमान था। आम के पेड़ों पर कोयले कुहुक रही थीं। मणिमेखला और सुधामति, प्रकृति-सौन्दर्य को निहारती हुई फूल बीन रही थीं।

चोलराज का बेटा उदयकुमार अचानक वहाँ आ पहुँचा। बहुत दिनों से वह मणिमेखला पर आसक्त था। उसी उपवन में एक छोटा कमरा था। सुधामति ने झट कमरे के अन्दर मणिमेखला को छिपा रखा और बाहर से दरवाज़े बन्द कर दिये।

सुधामति ने सोचा कि राजकुमार को सुधारने का यह अच्छा मौका है। उसने कहा, "तुम मणिमेखला से प्रेम करना छोड़ दो, क्योंकि यह तो शारीरिक प्रेम है, और यह शरीर आखिर क्या है? कर्मों से यह शरीर मिला है। जरा और मरण से यह ग्रस्त है। कठिन रोगों का यह आगार है। आशाएँ-निराशाएँ इसमें बसती हैं। दोषों का यह खजाना है। क्रोध-मात्सर्यों का यह घर है। कितना तुच्छ है यह शरीर! मणि-मेखला तो तपस्विनी है। उसके विषय में कुत्सित कामना करना छोड़ दो। वह तुम्हें शाप देने की शक्ति रखती है।"

शाप का नाम सुनकर राजकुमार सहमकर वहाँ से चला गया। इसी समय मणिमेखला की रक्षा करने के लिए मणिमेखला देवी वहाँ आयी। वह कोवलन् की कुलदेवी थी। कोवलन् के किसी पूर्वज को उसने समुद्र में डूबने से बचाया था। इसी उपकार की स्मृति में माधवी ने अपनी बेटी का नाम मणिमेखला रखा था।

मणिमेखला देवी मणिमेखला को मणिपल्लव नामक द्वीप को ले गयी। वहाँ मणिमेखला को बुद्धपीठिका के दर्शन हुए। उसी द्वीप में गोमुखवाला एक सरोवर था। हर साल बुद्ध-जयन्ती के अवसर पर उस सरोवर में से एक दैविक भिक्षापात्र निकल आता था। एक बार भिक्षा ले लेने पर अमृतसुरभि नामक उस पात्र में अन्न उत्तरोत्तर बढ़ता जाता था। मणिमेखला का कोई पुण्यविशेष था, जिससे वह पात्र उसे मिल गया। उस पात्र के साथ मणिमेखला काविरिप्पूम्पट्टिनम् वापस

आयी, और वहाँ के गरीब भूखों को अन्नदान करने लगी। राजकुमार के त्रास से बचने के लिए वह धर्मशाला में एक विद्याधरी के रूप में विचर रही थी। लेकिन राजकुमार को किसी तरह उसका पता लग गया और वह एक रात उससे मिलने आया।

उसी रात को कांचन नाम के विद्याधर ने, जो मणिमेखला को अपनी पत्नी कायचण्डिका समझता था, सन्देह में आकर, राजकुमार को मार डाला।

उदयकुमार के मरण से, राजा और रानी को बड़ा शोक हुआ, और वे मणिमेखला को कई तरहों से सताने लगे।

प्रसिद्ध बौद्धधर्माचार्य अरवणवडिगळ् शरीर से वृद्ध थे, पर बात के पक्के थे। वे सदा सत्य वचन ही बोलते थे, और जटिल समस्याओं को सुलझाने में निपुण थे। वे रानी के पास गये और बोले, "अमुक ने जन्म लिया, अमुक व्यक्ति वृद्ध हुआ, अमुक को अमुक रोग हो गया और अमुक व्यक्ति मर गया—ये सब बातें तो जग में स्वाभाविक हैं।"

उनके उपदेशों से रानी का मन निर्मल हुआ। मणिमेखला को विमुक्त कर वह भी धर्म के आचरण में लग गयी।

इसी समय कांची में बड़ा भारी अकाल पड़ा। अरवणवडिगळ् माधवी व सुधामति के साथ वहाँ गये; क्योंकि वहाँ उनकी सेवाओं की आवश्यकता थी। यह समाचार सुनकर मणिमेखला भी अमृतसुरभि को लिये तुरत कांची गयी। कांची के राजा ने उसका बड़ा स्वागत किया। मणिमेखला ने वहाँ बुद्धपीठिका की स्थापना करायी। उसने नगरवासियों को कई दिन तक भरपेट भोजन कराया।

उसके बाद मणिमेखला अरवणवडिगळ् की शरण में आयी। उन्होंने उसे बौद्ध-धर्म की दीक्षा दी। ज्ञानदीप की प्रभा से मणिमेखला का दिव्य रूप और भी अधिक आलोकित हो उठा, और वह जन्म-बन्धन से मुक्ति पाने के लिए कठोरतम तपस्या में लग गयी।

जैन-दर्शन के धुरन्धर आचार्य तिरुत्तक्कदेवर् ने गद्यचिन्तामणि की

सहायता से जीवक-चिन्तामणि महाकाव्य की रचना की। जैनों का कहना है कि क्षत्रचूडामणि के आधार पर यह काव्य लिखा गया है। जीवन्धर नाटक और जीवन्धर चम्पू में भी जीवक की कथा है; लेकिन इन ग्रन्थों के और इस महाकाव्य के कथा-सूत्र में कई भेद दिखायी देते हैं। तमिऴ में इस महाकाव्य की विशेषता यह है कि तमिऴ साहित्य के इतिहास में विविध प्रकार के ललित वृत्तों का उपयोग पहलेपहल तिरुत्तक्कदेवर् ने किया था। बाद में इस महाकाव्य की वृत्ति और शैली का प्रभाव महाकवि कम्बर् पर पड़ा है। लेकिन जीवक-चिन्तामणि के पदलालित्य और अर्थगौरव के साथ होड़ लेनेवाला दूसरा महाकाव्य अब तक तमिल में नहीं हुआ।

इसकी कहानी यह है कि सच्छन्द नाम का राजा अपने राज्यभार को मन्त्री के हाथ सौंपकर रानी विजया के साथ सुख से रहता था। लेकिन मन्त्री ने कुटिल षड्यन्त्र रचकर राजा की हत्या की। गर्भवती रानी विजया मोर के आकारवाले वायुयान से बच निकली और जहां वह जाकर उतरी वहाँ एक श्मशान था। उसी श्मशान में जीवक का जन्म हुआ। कन्दुक्कडन् नामक व्यापारी के यहाँ इस बालक का पालन-पोषण हुआ। जीवक बड़ा वीर था और सभी कलाओं का जानकार था। गांधर्वदत्ता, गुणमाला, पद्मा, हेमसरी, कनकमाला, विमला, सुरमंजरी और लक्षणा—इन आठ सुन्दरियों के साथ उसका विवाह हुआ। बाद में वह अपनी माता मे मिला, और पुराने मन्त्री को हराकर उसने अपना राजपाट ले लिया। अन्त में उसने जैन धर्माचार्यों से उपदेश पाकर कठिन तपस्या की और मुक्ति पायी।

इस महाकाव्य में जीवक के विवाह के प्रकरण मुख्य हैं; इसलिए जैन लोग इसे 'विवाह-ग्रन्थ' (मण-नूल्) कहते हैं। जैनों के यहाँ विवाह के अवसर पर इस काव्य के पठन की प्रथा है।

वळैयापदी काव्य का कथा-भाग क्या था, यह हम स्थिर रूप से नहीं कह सकते; क्योंकि इसका कोई आधार नहीं है। कुछ लोग कहते

हैं कि वैश्य-पुराण में इसकी कथा है। लेकिन हम उसे प्रामाणिक नहीं मान सकते।

कुण्डलकेशी नामक तमिळ काव्य का मंगलाचरण भगवान् बुद्ध की स्तुति से हुआ है। "जो देव अपनी महत्ता को स्वयं प्राप्त कर, अन्त तक लोगों की भलाई के चिन्तन में लगा रहा, जिसने गुण की ही बातें कीं, जिसने अपने लिए कुछ न करके दूसरों की सद्गति के लिए दुःख भोगा, ऐसे उस बुद्धदेव के चरणों की हम शरण लेते हैं।"

इस काव्य का कथाभाग नीलकेशी नामक जैन वाद-ग्रन्थ की टीका में मिलता है। थेरीगाथाओं में भद्रा कुंडलकेशा की जो कहानी है, उससे यह कहानी थोड़ी भिन्न है।

किसी शहर में काल नाम का एक वैश्य युवक रहता था, जो अपने समय का बड़ा भारी वीर माना जाता था। देखने में वह बहुत सुन्दर था। बुद्धदेव पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी। उसने बौद्ध-धर्म के सारे ग्रन्थों का गहरा अध्ययन किया था।

परन्तु यौवन एक ऐसी अवस्था है, जिसमें बड़े-बड़े ऋषि-मुनि भी कामदेव के चंगुल में फँस जाते हैं। तिस पर काल तो खूबसूरत नौजवान था। स्त्रियाँ उस पर आसक्त थी। और स्त्रियों को लुभाने के लिए उसे हर दिन नये-नये गहने और कपड़े लाने पड़े, सिंगार की बहुत-सी वस्तुएँ जुटानी पड़ीं। अब उसके पास पैसे न रहे, इसलिए वह अपना बल दिखा-कर दूसरों का मालमता लूटने लगा। चोर को तो हरदम कोई-न-कोई बहाना निकालना ही पड़ता है, और झूठ बोलना उसका स्वभाव बन जाता है। वह अपने कुकर्मों को भूलने के लिए शराब पीने लगता है। जब वह देखता है कि कोई उसको पकड़ने की ताक में है, तब वह उस आदमी की जान ही ले लेता है।

इस तरह से काल—जो बौद्ध धर्म का अनुयायी था—अब सचमुच दूसरों का प्राण हरनेवाला काल बन गया था। उस शहर में ऐसे कोई साधु-सन्त, बंधु-बांधव या स्त्री-पुरुष नहीं थे, जो काल के अत्याचारों से

तंग न आये हों। काल ने किसी को सुख की साँस नहीं लेने दी। अब तो राज्य के कर्मचारी भी उससे डरने लगे। काल के अत्याचारों की खबर राजा को मिली; तब उसने काल को पकड़कर फाँसी पर लगाने का हुक्म दिया। राज्य के सिपाही बहुत दिन कोशिश करके काल को पकड़ पाये और शहर के चौराहों पर से उसे राजा के पास ले गये।

अटारियों के झरोखों से सुन्दरी युवतियाँ बड़ी ही उत्सुकता से काल को देख रही थीं। काल के पौरुष के आगे मानों सिपाही इधर-उधर झाँकनेवाले चोर मालूम पड़ते थे। उस वीर पुरुष को देखकर एक सुन्दर युवती का मन पिघल गया। दया ने प्रेम का रूप ले लिया। वह थी नगर सेठ की पुत्री भद्रा, जो अपने घुंघराले केशों के सौन्दर्य से लोगों का मन मोह लेती थी। इसलिए लोग उसे कुण्डलकेशी कहते थे।

कुण्डलकेशी झट अपने पिता के पास गयी और बोली, "आप इस नवयुवक को प्राणदंड से बचाइये, वरना मैं अपने प्राण त्याग दूंगी।" नगरसेठ राजा के पास गया। उसने अपनी बेटी की हालत राजा को सुनाकर कहा—"आप इस बार काल को माफ कर दीजिये। उसके द्वारा लोगों को जो नुकसान हुआ है उसकी भरपाई मैं कर दूंगा।" काल बुद्धदेव का भक्त था, और राजा भी बौद्ध-धर्म को मानता था; इसलिए भी काल को मुक्ति मिल गयी। भद्रा के साथ उसका विवाह हो गया।

कुछ दिनों तक पति-पत्नी आनन्द से रहे। लेकिन कुत्ते की पूंछ कहीं सीधी हो सकती है ? एक दिन रात को, काल बड़ी देर से घर आया, और उसकी आँखें जवानी के मद में लाल थीं। भद्रा गुस्से में आकर बोली, "अरे तुम तो चोर हो, और आखिर तक चोर ही रहोगे।" यह बात काल के मन में पैठ गयी। वह भद्रा के साथ राजी-खुशी से रहने लगा; लेकिन उसने इसका बदला लेने का निश्चय कर लिया था। एक दिन उसने कहा, "सुनो प्यारी, उस पहाड़ की चोटी पर एक बौद्ध-मुनि रहते हैं। उनके दर्शन से हमें पुण्य मिलेगा, मेरे सारे पाप धुल जायेंगे।

भद्रा हर्षित हुई; बोली—"वे तो कोई बड़े तपस्वी होंगे। मैं रास्ते

में रंग-बिरंगे फूलों व पक्षियों को देखती चलूंगी, और आपके साथ पहाड़ पर चढ़ने में मुझे बड़ा मज़ा आयेगा।"

इस तरह वे दोनों पहाड़ की चोटी पर चढ़ आये। काल एक ऐसे स्थान पर आकर ठहर गया जहाँ रास्ता तंग था, और पहाड़ की उस ओर पाताल-सा गहरा गड्ढा था।

"भद्रे!", होंठ चबाते हुए उसने कहा, "तुमने मुझे चोर कहकर मेरी निन्दा की थी न? मेरी निन्दा करके आज तक कोई जीता नहीं बचा।"

कुण्डलकेशी को अब बात समझ में आ गयी। तमिल में एक कहावत है 'तर्कोल्लियै मुर्कोल्लिय'—"जो तुम्हें मारना चाहता है उसे तुम पहले मार डालो।" इस कहावत की याद उसे आयी। उसने कहा, "नाथ, आप ही मेरे सर्वस्व हैं। आपके हाथ से मरने में तो मुझे आनन्द ही है। लेकिन उससे पहले मैं आपकी तीन बार प्रदक्षिणा कर नमस्कार कर लूंगी। उसके बाद आप जो चाहें कीजिये।" भद्रा के इस प्रेम को देखकर काल एक क्षण स्तम्भित रह गया; बोला, "ठीक है।" भद्रा ने दो बार उसकी प्रदक्षिणा की। काल उसको मारने की चिन्ता मे था। इधर भद्रा ने अपनी पूरी ताकत से उसे पहाड़ की चोटी से गहरे गड्ढे में गिरा दिया। काल पहाड़ से लुढ़ककर, चट्टानों में सिर फूटकर मर गया। मरते दम भी उसके मुंह से बुद्ध का नाम निकल पड़ा।

अब तो भद्रा बहुत पछतायी। जीवन से उसे विराग हो गया। उसने बौद्ध-धर्म की दीक्षा ली। सारे देश में पर्यटन कर वह बौद्ध-धर्म का प्रचार करने लगी।

यह है संक्षेप में प्राचीन तमिळ काव्यों का परिचय।

इसके बाद तमिल साहित्य के इतिहास में भक्ति-युग का प्रारम्भ होता है। शैव-सन्त नायन्मार, और वैष्णव सन्त आळवारों ने भक्ति-मंदाकिनी बहाकर, जनता के हृदय को विशुद्ध भगवत्प्रेम के आनन्द में लीन करा दिया। बगुले की धवलता में, निविड़ रात्रि की कालिमा में, समुद्र के अविरत घोष में, आकाश की अनन्तता में, फूलों की उत्फुल्ल हंसी में

हंसों के उन्मुक्त संचार में, भौंरों की गूंज में, नदी के कलकल निनाद में, कोकिल के कल-कूजन में—हर कहीं भगवान के अमर सन्देश इन भक्तों को मिलते थे। और भारत की सभी भाषाओं में बहुत-से उत्तम भक्ति-काव्य हैं।

तमिळ काव्यों में ऐसी अनोखी सामग्रियाँ भरी पड़ी हैं, जो विभिन्न साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन में सहायक और पूरक हो सकती हैं। संस्कृत, प्राकृत और प्रचलित भारतीय भाषाओं के साहित्यकार जिस दिन एकत्रित होकर, गंभीर तपस्या और ऐतिहासिक व वैज्ञानिक अनुसधान के बाद, प्राचीन जन-जीवन का यथार्थ और रोचक इतिहास लिखेंगे, वह दिन भारत के लिए सुदिन होगा, और उसी सुदिन के शुभ मुहूर्त पर भारतीय साहित्य का भाग्योदय होगा।

तमिऴ का शैव भक्ति-वाङ्मय

श्री आर० सिंगारसुन्दरम्

अनादिकाल से समस्त संसार के मानव मानसिक शान्ति और विचारों की उदात्तता के ध्येय की प्राप्ति के लिए एक निश्चित मार्ग पर चलते रहे हैं, क्योंकि उन्होंने समझ लिया है कि सब कार्यों का एक सर्वोच्चमूल कारण है। यह मार्ग स्थान-स्थान, प्रान्त-प्रान्त, देश-देश और जाति-जाति में विभिन्न रहा हो, किन्तु एक सामान्य ध्येय स्पष्ट दिखायी देता है और वह है परब्रह्म की प्राप्ति। उस लक्ष्य पर पहुँचने के मार्ग विभिन्न रहे हैं। इसीलिए मानव-मन की इस प्रबल प्रेरणा ने समान ध्येय किन्तु विभिन्न रूपों वाले अनेक धर्मों को जन्म दिया होगा। इनमें से कुछ धर्म काल की कठिन परीक्षा में पास हुए, युग बीत जाने पर भी वे जीते रहे, और उनका रूप अधिकाधिक परिष्कृत तथा व्यापक होता गया। हिन्दू धर्म भी उन्हीं में से एक है, और शैवमत भी उसी की एक शाखा है।

धर्म का उद्देश्य केवल परब्रह्म की प्राप्ति ही नहीं रहा है। वह प्रत्येक व्यक्ति को समाज का एक उपयोगी, पुण्यात्मा और सदाशय-युक्त सदस्य बनाता है, जिसमें सहनशीलता, कल्पना-शक्ति और आत्मिक-विकास के गुण भी विद्यमान हों। ऐसा नागरिक समाज के लिए परमोपयोगी सिद्ध होता है। धर्मों के अनेक संस्थापक और उपदेशक इसी

प्रकार के व्यक्ति थे और उन्होंने समाज तथा राष्ट्र के कल्याण के लिए अपना भाग प्रदान किया।

जहाँ तक हमारे देश भारत का ताल्लुक है, धर्म और आध्यात्मिकता के क्षेत्र में उल्लेख-योग्य और स्थायी उन्नति और विकास हुए हैं, यद्यपि कभी-कभी राजनैतिक और बाह्य कारणों से कुछ धक्के लगे है।

हमारे पूर्वज परमेश्वर वा परब्रह्म को विश्व का मूल कारण मानते थे। उन्होंने इस परब्रह्म के सृष्टि, स्थिति और लय ये तीन मुख्य कार्य बतलाये हैं, तदनुसार परमात्मा की कल्पना विभिन्न रूपों में की गयी, जिन्होंने विभिन्न विचार-सरणियों का रूप धारण किया।

इतिहास तथा भूगर्भ से प्राप्त वस्तुओं से पता चलता है कि देश का वह भाग, जहाँ की प्रधान भाषा तमिल है, तथा जिसके कुछ अंशों में आजकल कुछ कालानन्तर तमिल से ही निकली हुई उसकी अन्य तीन भाषा-भगिनियाँ बोली जाती हैं, बड़ी संस्कृति तथा सभ्यता का निवासस्थान रहा है। यहाँ ही शैव नाम से प्रसिद्ध मत का जन्म हुआ। उसके जन्म के काल का पता नहीं चल सका। सम्भवतः वह तब प्रकट हुआ जब "पत्थर तो प्रकट हो चुके थे, किन्तु बालू नहीं।" तमिल लोगों को इस शैवमत से आन्तरिक प्रेम था। वे उसमें उसी तरह तन्मय हो गये थे, जैसे शरीर और आत्मा। सीधे-सादे शब्दों में शैव वह मत है जिसके अनुसार प्रेम ही परमात्मा है। क्योंकि परमात्मा का ही दूसरा नाम 'शिव' है, इस मत के मानने वाले शैव कहलाते है।

विभिन्न कालों में शैव मत के अनुयायियों में कुछ बहुत प्रमुख व्यक्ति उत्पन्न हुए, जिन पर परमात्मा की अनुकम्पा थी, और उनमें से कुछ को विलक्षण शक्तियाँ और गुण प्राप्त थे। उन सब ने इस संसार से बिदा लेने के बाद मोक्ष प्राप्त किया। ये व्यक्ति 'नायनार' अर्थात् सन्त कहलाते हैं।

उनमें सन्त और राजनीतिज्ञ माणिक्कवासगर ने अपने 'तिरुवाचकम्' में भगवान शिव की स्तुति इस प्रकार की है। 'सब राष्ट्रों

के परमेश्वर और दक्षिण के प्रभु भगवान शिव को नमस्कार।"

इस प्रकार यद्यपि भगवान शिव सर्वव्यापक और समस्त विश्व की नियामक सर्वोच्च शक्ति है, हम साधारणतः उसका निवास-स्थान महान् हिमालय को मानते हैं, सम्भवतः इसलिए कि वह उसके श्वशुर का स्थान है। किन्तु दक्षिण भारत को उस पर सर्वोपरि दावा था, अतः वहाँ उसको प्यार के साथ दक्षिण का प्रभु कहा गया। भगवान् ने भी दक्षिण मथुरा आदि दक्षिण के पुण्य स्थलों में अनेक अद्‌भुत लीलाएँ करके दक्षिण वालों के इस दावे का समर्थन किया। तिरुविलयाडल आदि महापुराणों में इन लीलाओं का सविस्तार वर्णन है।

शैव सम्प्रदाय के अनुसार सब कार्यों का मूल कारण भगवान् शिव है, जैसा कि सन्त नावुक्करसर ने कहा है 'उसकी प्रेरणा के बिना एक परमाणु भी नहीं हिलता।' आधुनिक विज्ञान ने यह बात सिद्ध कर दी है कि एक परमाणु की बनावट आकार में छोटा होने पर भी सौर-जगत् के समान ही है। और विश्व में इसी प्रकार के अनन्त विशाल सौर जगत् हैं। इस प्रकार परमाणु से लेकर विश्व तक की गति में शाश्वत साम्य है और शिव इस सब विश्व की नियामक सर्वोपरि शक्ति है। शैवों के लिए यह बड़े गर्व और सौभाग्य का विषय है कि वही शिव उनका प्रभु है और उसके द्वारा उन्हें मुक्ति प्राप्त होगी।

शैव मत में अनेक उदात्त सिद्धान्त अन्तर्भूत हैं, यथा सबसे प्रेम, समाज की सेवा के लिए जीवन को अर्पण कर देना, स्त्रियों की स्वाधीनता, अहिंसा, सबके विकास के लिए समान अवसर प्रदान, सबको अपने ढंग से पूजा की आज़ादी, समाज-सुधार, जिसे हम ठीक समझते हैं उस रास्ते पर वीरता और निर्भयता से चलना आदि। युग-युगान्तरों में शैवमत के कट्टर अनुयायियों के आचरण यही दिखलाते हैं। इस धर्म का क्षेत्र असीम है और वह जानी हुई सीमाओं से परे पहुँचता है। इस तरह हम आसानी से देख सकते है कि महात्मा गांधी, विनोबा भावे, रामकृष्ण आदि वर्तमान युग के महानुभावों को जो आदर्श प्रिय

थे उन पर शैव लोग अनादि काल से आचरण करते आ रहे हैं।

ललित कलाओं पर भी उन्होंने कम ध्यान नहीं दिया। शैवों ने संगीत, कला और कविता सबका खूब विकास किया। उनके द्वारा की हुई इन कलाओं की अमर कृतियाँ मौजूद हैं। आज हम आध्यात्मिक और नैतिक आदर्शों से पूर्ण शैवों की कविता और उनके संगीत की एक झाँकी दिखलायेंगे। उनमें से अधिकांश बहुत सरल है जिससे कि साधारण आदमी उन उपदेशों को सुगमता से समझकर उन पर आचरण कर सकता है। किन्तु जैसे-जैसे कोई व्यक्ति आध्यात्मिक और नैतिक संस्कृति में ऊँचा उठता जाता है, उन्हीं साधारण प्रतीत होने वाले पदों से अधिक-अधिक गम्भीर विचार प्रकट होते जायेंगे और अन्त में वे आध्यात्मिक जीवन के उच्चतम शिखर पर पहुँचा देंगे। इनमें सर्वश्रेष्ठ भक्तिगीत तेवारम और तिरुवाचकम् मे केवल शैवों को ही नहीं बल्कि अन्य सम्प्रदायों के सच्चे भक्तों को भी बड़ी सात्वना प्राप्त होती है। उनसे प्राप्त होने वाला मधुर आनन्द अद्वितीय है। श्रोता का तनमन उनमें तल्लीन हो जाता है और वह उस महाप्रभु से एकात्मता अनुभव करने लगता है।

युगों मे करोड़ों व्यक्ति शैवधर्म के अनुयायी रहे हैं, किन्तु जैसा कि पहले वता चुके हैं, जिन्होंने अपने आदर्शों और सिद्धान्तों पर अपने जीवन में आचरण करने में विशिष्ट रहकर अन्त में प्रभु के चरण-कमलों में मोक्ष प्राप्त किया, वे 'नायनार' कहलाते हैं। इनमें समाज की सभी श्रेणियों के, मस्तिष्क के विकास के विविध स्तरों पर स्थित, विविध काम-धन्धे वाले, विविध स्वभाव वाले और कम या अधिक शिक्षित सभी तरह के व्यक्ति थे, और ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने असाधारण स्थितियों में जीवन बिताया था। उनमें कोचेनगल चोलन, चेरामन्, मंगमरकरसी जैसे चेर, चोल और पाण्ड्य राजवंशों के राजा और रानी थे, सेक्किलार और माणिक्कवासगर जैसे राजनीतिज्ञ थे, सिरु-तोंडर जैसे योद्धा थे, अप्पूदि अडिगळ् जैसे ब्राह्मण थे, नावुक्करसर जैसे

किसान थे, और ग्वाले, शिकारी, मछुए, कुम्हार, जुलाहे, व्यापारी आदि अन्य विविध धन्धे करने वाले व्यक्ति थे। पुनः इन्होंने भिन्न-भिन्न आयु में मोक्ष प्राप्त किया। उदाहरणार्थ ज्ञान सम्बन्धर को शैशव में ही प्रभु का अनुग्रह प्राप्त हुआ और तीन साल की उम्र में ही जगन्माता उमा-देवी ने उनको अपना स्तनपान कराया। नावुक्करसर ८१ वर्ष की उम्र तक जीते रहे, और तिरुमूलर के विषय में कहा जाता है कि उन्होंने तीन हजार वर्ष से भी अधिक काल तक जीते रहकर तिरुमन्तिरम् (श्रीमन्त्र) की रचना की।

इन सन्तों का धार्मिक उत्साह और भक्ति की गहराई भी विभिन्न और विविध तरह के थे। उनके जीवन-वृत्तान्त पढ़ने से विदित होता है कि उन सभी के मनों में श्रद्धा और प्रेम की एक-सी अविचल धारा बह रही थी, किन्तु वह प्रत्येक के लिए भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट हुई। उनमें से एक सन्त सेक्किलार का आविर्भाव सबके बाद हुआ और उसने अपनी अमर कृति पेरियपुराणम् (महापुराण) में इनका सजीव चित्र दिया है। उसे पढ़ने से हम यह अनुभव करते हैं कि शैवधर्म ने अनेकता में एकता स्थापित करके उन सबको भगवान् शिव के शाश्वत प्रसाद के दैवी छत्र के नीचे शरण दी। यह भी स्पष्ट है कि विभिन्न सन्तों ने भगवान् के प्रति अपनी भक्ति विभिन्न दृष्टिकोणों से विभिन्न रूपों में प्रकट की।

सन्त नावुक्करसर नौकर से काम कराने वाले अपने सर्वोच्च मालिक के रूप में भगवान से प्यार करते थे और वे मनुष्य-जाति की सेवा के द्वारा परमात्मा की सेवा में अपने-आप को अर्पण करते थे। उन्होंने कहा है 'मेरा कर्तव्य तो केवल सेवा करना है और तू मेरा रखवारा है।' यह गीता में भगवान् कृष्ण के उपदेश दिये हुए निष्काम कर्म के सिद्धान्त से बहुत मिलता-जुलता है। वे भगवान् की स्तुति का गान करने और पूजा करने में कभी भूल नहीं करते थे। यह भक्ति मालिक के प्रति सेवक की भक्ति 'दासभक्ति' कहलाती है।

उससे पूर्वकालीन सन्त माणिक्कवासकर एक राजा के प्रधान मन्त्री

थे। उनकी प्रभुभक्ति गुरु के प्रति शिष्य की भावना में प्रकट हुई थी। उनके विचारों की नम्रता और विनय तिरुवाचकम् में भलीभाँति प्रकट हुए हैं। वे समझते हैं कि वे गुरु के आशीर्वाद के अधिकारी नहीं हैं, क्योंकि उनका प्रभु से प्रेम ढोंग मात्र है। यह भक्ति गुरु-शिष्य भक्ति के ढंग की है।

सन्त सुन्दरर् अपने प्रभु को अपने मित्र—ज़रूरत पड़ने पर काम आने वाले सच्चे मित्र के रूप में देखते हैं। वे प्रभु से अपने समपदस्थ के रूप में प्यार करते थे, किन्तु दैवी मित्र किसी मूर्खता के लिए सुन्दरर् को क्षमा करने वाले नहीं थे, यद्यपि उन्होंने अपने भक्त के लिए उसके एक प्रेम के मामले में दूत का काम भी किया। यहाँ भक्ति दो समान पद के मित्रों के प्रेम के ढंग की है।

बहुत से अन्य नायनमारों ने भी भगवान् शिव और भगवती पार्वती की अन्य विविध ढंगों से स्तुति की है। उनकी भक्ति अत्यन्त बाह्य संकेतों से लेकर अत्यन्त नम्र आन्तरिक संकेतों तक की थी। 'पेरिय पुराणम्' से यह बात भली भाँति स्पष्ट हो जाती है। ये सन्त-महात्मा तमिल की शैवभक्ति कविता के मूलप्रेरक व मूलस्रोत थे। इनकी कविता को भजन वा स्तोत्र कह सकते हैं।

शैव धर्म के ग्रन्थों के शास्त्र, चरित और स्तोत्र ये तीन मुख्य विभाग किये जा सकते हैं। शास्त्र चौदह हैं, पुराण वा चरित अठारह और स्तोत्र वा भजन बारह 'तिरुमुरै' कहलाते हैं। ये आगमों के समान है और उन्हें विविध नायनमारों ने गाया है।

ये १२ श्रेणी विभाजित भजन-संग्रह शैव-भक्ति-कविता का सार समझे जाते हैं। पाठक उनको पढ़कर बीते हुए युगों की नाड़ी और सभ्यता का अनुभव कर सकता है। वह जान सकता है कि मध्ययुग से लेकर उससे पाँच सहस्रवर्ष पूर्व तक के भिन्न-भिन्न कालों में उनके लेखक कैसे रहते थे। शैव लोगों की उन पर वैसी ही श्रद्धा है जैसी कि

बाइबिल पर ईसाइयों की। पवित्र भजनों के इन 12 संग्रहों में निम्न-लिखितानुसार लगभग 18327 पद्य हैं।

नाम	लेखक	पद्यसंख्या
तेवारम्	नावुक्करसर	8239
	सम्बन्दर	
	सुन्दरर्	
तिरुवाचकम्	माणिक्कवासगर	656
तिरुमन्तिरम्	तिरुमूलर	3000
पेरियपुराणम्	सेक्किलार	4286
अन्य ग्रन्थ	नक्किलर	
	सेन्दन्नर	
	पट्टिनात्थार	2186
	कारैकाल अम्मैयार आदि	

अब हम इन मुख्य ग्रन्थों की, प्रत्येक की, एक झाँकी दिखलायेंगे।

तेवारम्

यह और तिरुवाचकम् अमर ग्रन्थ हैं तथा उनकी ज्योति और गौरव शाश्वत हैं। इनके लेखक नायनमारों में सर्वोच्च हैं। उनके काल भिन्न-भिन्न है, यद्यपि सम्बन्दर और नावुक्करसर समकालीन थे। सुन्दरर् दूसरों से उत्तरकालीन है, और तिरुतोंडर तोगै नाम से विख्यात उसके पद्यों में सब नायनमारों का उल्लेख है और सेक्किलार कृत पेरियपुराणम् का वही आधार है। कहा जाता है कि तेवारम् में एक लाख से अधिक पद थे, किन्तु आजकल लगभग 8 हजार ही मिलते हैं। चोल राजा अभय कुलशेखर ने दैवी प्रेरणा से किस तरह इन पदों को प्राप्त किया इसका एक चामत्कारिक वृत्तान्त चला आता है। वे चिदम्बरम् के भगवान् नटराज के मन्दिर के सुवर्णमय मण्डप के गुम्बज में बन्द मिले थे।

इस ग्रन्थ के कर्ता तीनों नायनमार दक्षिण के अनेक तीर्थों और

उत्तर के भी केदारनाथ आदि स्थलों में शैव मत का प्रचार करते हुए घूमे थे। यात्रा करते हुए उन्होंने समाज की भलाई के लिए अनेक काम किये तथा बहुत से चामत्कारिक कृत्य यथा मुर्दे को जिलाना, खेती के अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न करना, दुर्भिक्ष का नाश आदि करके दिखलाये। प्रत्येक स्थान पर प्रकृति की शोभा और भव्यता को देख वे उसमें आनन्दमग्न हो गये, जिसका वर्णन इन पद्यों में प्राचीन प्रांजल शैली में किया गया है। शेक्सपीयर और रवीन्द्रनाथ ठाकुर के समान वे समाज के लिए कविता की सर्वोच्च उपादेयता को अच्छी तरह समझते थे। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने गीतांजलि में कहा है, 'मैं यहाँ तेरे लिए गान गाने के वास्ते हूँ।' इस प्रकार भक्ति कविताएँ आन्तरिक शान्ति, वैयक्तिक सन्तोष और सामाजिक सौमनस्य का मूल थीं। सन्त नावुक्करसर ने बतलाया कि शैव में केवल एक बात होनी चाहिए कि वह भगवान् शिव का सच्चा भक्त हो और फिर उसे किसी बात से भी भय नहीं हो सकता। पडिरिपुलियूलियूर में (जो आजकल कडलूर कहलाता है) गाये हुए अपने पद में उन्होंने घोषणा की है :

'चाहे पृथ्वी पाताल में धँसी चली जाये, और समुद्र अपने तटों से ऊपर उमड़ उठे, और सातों भुवन आकाश में अपने नियत मार्ग से विचलित हो जायें, सूर्य और चन्द्र अपनी ज्योति को खो बैठें और नीचे गिर पड़ें, किन्तु त्रिनेत्र भगवान् के चरणों के भक्त को किसी बात का डर नहीं।'

फिर उन्होंने गरजकर कहा है कि वह यम से नहीं डरता और न वह किसी की आधीनता स्वीकार करता है। जिन्होंने भगवान् शिव को आत्मार्पण कर दिया है, उनके लिए आनन्द-ही-आनन्द है। जिस मनुष्य के पास अपार सम्पत्ति है, या जो किसी देश का शासक राजा है, यदि वह शिव का भक्त नहीं है तो नावुक्करसर की दृष्टि में उसका कोई मूल्य नहीं है, किन्तु जो शिव से प्रेम करता है यदि वह किसी जघन्य रोग से पीड़ित भी हो, वा गोमांस-भक्षक भी हो, तो नावुक्करसर उसके

दास भी बनकर उसकी सेवा करने को तैयार हैं। सच्चे शैव की अचलता उक्त पद्यों में भली भाँति दर्शायी गयी है। सारे देश में सदा पैदल घूमते रहने के कारण नायनार जनता के निकट सम्पर्क में आते थे और उनकी कठिनाइयों को अच्छी तरह् समझ सकते थे, अतः वे भगवान् से उनके मंगल के लिए प्रार्थना कर सकते थे। इसीलिए कुडैयूर में अकाल पड़ने पर सन्त सुन्दरर् अन्न प्राप्त करके लोगों के कष्टों को दूर कर सकते थे।

भगवान् सन्त मुन्दरर् के गाये हुए पदों से इतने प्रसन्न हुए कि वे उनके मित्र हो गये और तदनन्तर उन्होंने सन्त मुन्दरर् का एक भिन्न जाति की लड़की से विवाह करा दिया, यद्यपि उस समय का रिवाज आसानी मे इस प्रकार के विवाह की अनुमति नहीं देता था।

सन्त सुन्दरर् के पद इतने दिव्य और प्रभावशाली थे कि शैवमत जनता को मार्गभ्रष्ट करने वाले अन्य मतों की तुलना में श्रेष्ठ सिद्ध हुआ। उस समय के मदुरा के शासक पांड्य राजा को सम्बन्दर ने शैव-मत की दीक्षा दी। सम्बन्दर पर तीन वर्ष की उम्र में ही भगवान् की कृपा हुई और वे तभी से पवित्र पद गाने लग गये।

तेवारम् के इन पदों के साहित्य वैभव की महिमा तभी अच्छी तरह् समझायी जा सकती है जब कि श्रोतृ वर्ग तमिल भाषा अच्छी तरह् समझता हो। फिर भी मैं यह् कह सकता हूँ कि इस समस्त ग्रन्थ में जगह्-जगह् रूपक, उपमा आदि अलंकारों की भरमार है, उनका मन पर बहुत सुन्दर असर होता है और वह् भक्ति भावना को जगाने में बहुत सहायक होता है।

नावुक्करसर को कैलाश को मूर्तरूप में देखने की इच्छा हुई तो भगवान ने उनको तिरुवैयार (पाँच नदियों का ग्राम) नामक स्थान में वह् दिखलाया। जो कुछ उन्होंने देखा उसका मनोहर वर्णन उन्होंने दस पद्यों में किया है। उनके माधुर्य से हम आनन्द सागर में गोते लगाने लगते हैं प्राकृतिक सौन्दर्य का वर्णन ऐसा सजीव है कि सारा दृश्य हमारी

आँखों के सामने नाचने लगता है और साथ ही उनका आध्यात्मिक अर्थ भी है। सारांश यह है कि नावुक्करसर ने यह अच्छी तरह समझ लिया कि प्रकृति ही भगवान् है और भगवान् शंकर और उमा प्रकृति की समस्त सृष्टि में नर और नारी के रूप में चाहे वे पक्षी हों, पशु हों वा मनुष्य हों, सर्वव्यापी हैं। इस अनुभव के बाद नावुक्करसर के हृदय से यह उद्‌गार निकलता है कि मैंने वह देखा जो पहले कभी नहीं देखा था, मैंने समस्त सृष्टि में शक्ति और शिव को देखा।

तेवारम् में इन सन्तों के गाये हुए तमिल पद्यों से प्रसन्न होकर भगवान् शिव ने जाति के कल्याण के लिए उनकी समस्त इच्छाएँ पूरी कीं। कुछ पद्यों में शिव को आर्य भाषा संस्कृत और तमिल का मिश्रण बताया गया है।

ये पद्य विशेष ताल के साथ पण नामक विशेष रागों से गाये जाते हैं। भगवान् शिव ने सम्बन्दर को उनके पदों को श्रुतिमधुर बनाने के लिए एक जोड़ी मंजीरे दिये थे। संगीत तेवारम् का एक मुख्य अंग है। उसमें लगभग २० राग वा पण हैं और भिन्न-भिन्न ताल हैं। उनमें से कुछ हिन्दुस्तानी वा कर्नाटक संगीत के परम्परागत रागों से बहुत कुछ मिलते-जुलते हैं। ये पद जब ठीक राग और ताल के साथ गाये जाते हैं तो, विशेषतः तब जब कि अर्थ पूरी तरह समझ में आये, किसी को भी मन्त्र-मुग्ध कर देते हैं, मानो वह अमृतपान कर रहा है।

तिरुवाचकम्

इसे सन्त माणिक्कवासगर ने रचा है। इसमें 656 पद हैं। तमिल साहित्य का अध्ययन करने वाले प्रसिद्ध पाश्चात्य विद्वान रेवरेंड डाक्टर जी० यू० पोप के शब्दों में शिव शब्द को हटा दें तो तिरुवाचकम् अपने सार और दर्शन में सब धर्मों के लिए समान है। इन पदों में बतलाये हुए बिरले दर्शन की गहराई को शब्दों से नहीं बताया जा सकता। इसका प्रारम्भिक अध्याय (शिव-पुराणम्) बड़े संक्षिप्त रूप में विश्व के कल्याण

के लिए भगवान शिव के कृत्यों की अनन्तता को बतलाता है। पिडित-पट्टु (पकड़े गये) नामक एक और अध्याय में (इस शब्द का अर्थ है कि सन्त ने भगवान् को पकड़ लिया और वह उन्हें उनका आशीर्वाद प्राप्त किये बिना नहीं छोड़ेगा) लेखक दृढ़ता से कहता है कि वह भवबन्धन से मुक्ति पाये बिना कभी भी नहीं छोड़ सकता। एक और पद्य में भगवान् शिव को बच्चे को स्तन पान कराने वाली माता बतलाया है, जो कि जानती है कि कब दूध पिलाना चाहिए। इस ग्रन्थ के 'तिरु वैम्बावै' और 'तिरुपल्लि एलुची' नामक खण्ड बहुत प्रसिद्ध हैं। वे ब्राह्म मुहूर्त में विशेषत: धनुर (मार्गशिर) मास मे गाये जाते हैं। तिरुवेम्बावै में सन्त देर तक सोती हुई भक्त स्त्री को सम्बोधन करके कहता है कि जल्दी उठकर नदी में स्नान करके भगवान् शिव की स्तुति करो। इस में से यह ध्वनि निकलती है कि हे ससार अज्ञान निद्रा से जागकर भगवान को पहचानो। 'तिरुप्पल्लि एलुची' में सन्त उषा के मनोहारी सौन्दर्य का अद्भुत ढग से वर्णन करते हुए भगवान् शिव से प्रार्थना करता है कि जागकर यहाँ इकट्ठे भक्तवृन्द पर अपने आशीर्वादामृत की वर्षा करो। इस वर्णन में नये खिले कमल, सूर्योदय, तारों का अस्त, दिव्य संगीत, चिड़ियों का चहचहाना आदि कवियों का परम्परागत प्रातः-काल वर्णन है और तिरुवाचकम् के इस साहित्य-सौन्दर्य में उसकी आध्यात्मिक अगाध गहराई अन्तर्निहित है।

तिरुमन्तिरम्

सन्त तिरुमूलर कृत इस ग्रन्थ में ३००० पद्य है। कहते हैं कि यह लेखक स्वयं नन्दिदेव का शिष्य था और प्रत्येक पद्य एक-एक वर्ष के गम्भीर ध्यान के बाद रचा गया है। इन पद्यों की रचना अत्यन्त सरल है, किन्तु वे वेदान्त के ढंग के अर्थ से पूर्ण हैं। तिरुमूलर ने ठीक ही कहा है कि परमात्मा और प्रेम एक ही वस्तु है और जो इस बात को नहीं समझते वे मूर्ख हैं। वे कहते हैं कि जैसे उन्हें आनन्द प्राप्त करने का सौभाग्य

प्राप्त हुआ वैसे ही समस्त संसार को प्राप्त होना चाहिए। क्या यह व्यापक दृष्टिकोण का सुन्दर उदाहरण नहीं है। सम्भवत: यीशु क्रिस्त ने कुछ काल बाद वही बात एक भिन्न ढंग से कही थी, जबकि उन्होंने कहा—'दूसरों से वैसा ही व्यवहार कर, जैसा कि तू चाहता है कि वे तुझसे करें।' तिरुमन्तिरम् धार्मिक और आध्यात्मिक सम्पत्ति का अक्षय भण्डार है।

पेरियपुराणम्

इसमें प्रसिद्ध 63 शैव संतों (नायनमारों) की जीवनियाँ धर्म और भक्ति के वातावरण में कविता के ढंग से दी गयी हैं। इसका लेखक सेक्किलार था जो कि चोल राजा अनबय का मन्त्री था। कहते हैं कि इस ग्रन्थ की प्रथम पंक्ति स्वयं भगवान् नटराज ने रचकर सेक्किलार को दी थी और उससे उसने ग्रन्थारम्भ किया। इस पंक्ति का अर्थ है 'परमात्मा संसार के समस्त ज्ञान से परे है।' प्राय: ये सब जीवनियाँ साहित्य भंडार के अमूल्य रत्न हैं और उनकी भावाभिव्यक्ति, विचार-कल्पना और अर्थगाम्भीर्य अनुपम है। विविध सन्तों की जीवनियाँ लिखते हुए लेखक ने उनके अनेक विशिष्ट गुणों पर प्रकाश डाला है। कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं।

सन्त कण्णप्पर अपढ़ शिकारी थे, प्राणिहिंसा उनका पेशा था। किन्तु जब उन्होंने एक जंगल में शिवलिंग की एक आँख से खून बहते देखा तो उन्होंने अपनी एक आँख निकालकर लिंग में लगा दी। भगवान् ने उनकी भक्ति की परीक्षा करनी चाही और लिंग की दूसरी आँख से खून बहने लगा। तब कण्णप्पर अपनी दूसरी आँख भी निकालने लगे। भक्ति में इतनी निःस्वार्थता का उदाहरण अन्यत्र नहीं मिल सकता। रामायण में भी गुह शिकारी था और श्रीराम के प्रति उसके हृदय में अगाध प्रेम था, किन्तु वह किसी तरह भी सन्त कण्णप्पर के त्याग की बराबरी नहीं कर सकता।

एक और उदाहरण देखिये। सन्त सिरुतोंडर ने एक शिवभक्त को पकाकर खिलाने के लिए अपने पुत्र के टुकड़े कर दिये, किन्तु जब वह भगवान् की कृपा से पुनर्जीवित हो गया तो सन्त को खुशी नहीं हुई, बल्कि भक्त के भोजन में विलम्ब होते देख उसे बुरा लगा। इस प्रकार इस भक्त ने अपने पुत्र के प्राणों को भी बलि देकर भगवान् और उसके भक्तों के प्रति जो प्रगाढ़ भक्ति दिखलायी उसका चित्रण किया गया है।

इन सन्तों में कुछ स्त्रियाँ भी हैं। शायद किसी अन्य धर्म मे भक्त स्त्रियों को तब तक मोक्ष प्राप्त नही हो सकता जब तक कि वे जन्मान्तर में पुरुष का जन्म न लें। किन्तु शैव धर्म में तीन प्रसिद्ध मन्त स्त्रियाँ हुई है जिनको मोक्ष प्राप्त हुआ। उत्तर भारत की मीरा एक और उदाहरण है जिस पर भगवान् कृष्ण की कृपा हुई थी।

इस प्रकार पेरियपुराणम की कविताएँ नायनमारों की पवित्र जीवनियों का चित्रण मात्र नहीं है बल्कि उनसे भगवान् की सच्ची भक्ति के लिए सदा प्रेरणा प्राप्त होती रहेगी। उनका सम्बन्ध इतिहास के विभिन्न कालों से है इसलिए उनको पढ़ने से हमें उन कालों के रीति-रिवाज, संस्कृति, सभ्यता, राजनैतिक स्थिरता और व्यापार सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त होता है।

अन्य कृतियों में नक्किकरर कृत 'तिरुमुरुगाट्रु पडै' भगवान् कार्तिकेय के विषय में है जिनको दक्षिण भारत में मुरुगन कहते है। इसके प्रतिदिन पाठ से भक्त को उस देवता की कृपा प्राप्त होती है। नक्किकरर को इसका गान करते सुनकर प्रसन्न होकर स्कन्द भगवान् ने उसको एक दैत्य के पंजे से छुड़ाया था। पट्टिनात्तार, सेन्दनर आदि अन्य भक्तों ने भी भगवान् शिव की स्तुति के गीत तथा शैव-दर्शन सम्बन्धी पद रचे हैं। इन सब का काल 400 से लेकर 500 वर्ष पूर्व है किन्तु तिरुमूलर का काल ईसा से 5000 वर्ष पूर्व है।

आधुनिक काल के शैव भक्त कवियों में सन्त अरुणगिरि हैं जिनके लिखित तिरुपुगल में विविध तीर्थों के कार्तिकेय की स्तुति है। इसके ८

गेय हैं। सन्त रामलिंग लगभग १०० वर्ष पहले जीवित थे। उन्होंने तिरुअरुप्पा रचा है। यह अपने दार्शनिक विचारों की सरलता तथा धर्म के विषय में आधुनिक दृष्टिकोण के लिए सुप्रसिद्ध है। आजकल मठ शैव-भक्ति साहित्य के खज़ाने की रक्षा करके आधुनिक ज़माने में उनका प्रचार कर रहे हैं।

शिव भगवान् की जय।
नमः पार्वती पतये।
हर हर महादेव।

आळ्वारों का वैष्णव भक्ति-साहित्य

डा० मलिक मोहम्मद पी० एच० डी०

तमिळ् साहित्य की बहुत ही प्राचीन परम्परा है। अब तमिळ् में उपलब्ध सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'तोलकाप्पियम्' ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी का माना जाता है। सम्भव है कि उससे पूर्व भी तमिल में महत्त्वपूर्ण साहित्य रचा गया हो जो हमें उपलब्ध नहीं है। तमिल-साहित्य के प्राचीन काल को 'संघकाल' कहते हैं।

तमिल-साहित्य के इतिहास में सामान्यतया छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक का काल 'भक्ति-काल' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी काल में ही वैष्णव भक्त-कवि आळवार तथा शैव-सन्त कवि नायनमार हुए थे। इस काल में तमिल में जिस साहित्य का निर्माण हुआ था, वह पूर्णतः भक्ति-साहित्य है। ऐसा मालूम पड़ता है कि इस युग में भक्ति-विषय को छोड़कर और कोई विषय कवियों के लिए रह ही नहीं गया था। भारत की विभिन्न आधुनिक भाषाओं के साहित्यो के इतिहासों को देखने से पता चलता है कि तमिल को छोड़कर किसी भी आधुनिक भारतीय भाषा में दसवीं शताब्दी के पूर्व भक्ति-साहित्य का निर्माण नहीं हुआ था। अधिकांश भारतीय भाषाओं में तो पन्द्रहवीं शताब्दी के लग-भग ही भक्ति-साहित्य का निर्माण हुआ है। तमिल-साहित्य के विषय में यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण बात है कि छठी शताब्दी से लेकर नौवीं शताब्दी तक का साहित्य भक्ति-भावना से परिपूर्ण है। इसका तात्पर्य

यह नहीं है कि नौवीं शती के बाद तमिल में भक्ति-साहित्य का सर्जन नहीं हुआ हो। वैसे तो तमिल में भक्ति की धारा आरम्भ से ही बही है और नवीं शताब्दी के उपरान्त भी भक्ति-प्रधान कृतियों का सर्जन हुआ। और यही क्यों, आज भी हो रहा है।

तमिल का विशाल भक्ति-साहित्य हमें दो भागों में प्राप्त है—वैष्णव-भक्ति-साहित्य और शैव-भक्ति-साहित्य। तमिल के वैष्णव-भक्त कवि 'आळवार' के नाम से प्रसिद्ध हैं। आळवारों का काल सामान्यतया पाँचवीं शताब्दी और नवी शताब्दी के बीच में माना जाता है। 'आळवार' शब्द का अर्थ है 'मग्न होना'। इस अर्थ में यह शब्द किसी भी ऐसे सन्त महात्मा के लिए प्रयुक्त हो सकता है जिसने आध्यात्मिक ज्ञान-रूपी सागर में गोता लगाया हो।[1] 'आळवार' शब्द का दूसरा अर्थ है 'शासन करने वाला'। (आळदल=शासन करना) अतः आळवार शब्द से आशय उस व्यक्ति से है जो भगवद्-भक्ति और भगवद्-गुणों के अनुभवों में मग्न रहने के कारण भगवान् पर प्रेमपूर्ण आधिपत्य करता हो। आज 'आळवार' के नाम से वे ही बारह वैष्णव-भक्त प्रसिद्ध हैं जिनके पदों का सकलन श्री नाथमुनि ने नवी शती के अन्त में 'दिव्य प्रबन्धम्' के नाम से किया था।

बारह आळवारों के नाम क्रम से इस प्रकार हैं—पोयगै आळवार, भूतत्ताळवार, पेयाळवार, तिरुमळिशै आळवार, नम्माळवार, मधुर कवि आळवार, कुलशेखराळवार, पेरियाळवार, आंडाळ, तोंडरडीपोडी आळवार तिरुप्पाण आळवार और तिरुमंगै आळवार। इनके संस्कृत नाम भी अलग मिलते हैं। नम्माळवार को शठकोप, पेरियाळवार को विष्णुचित्त और आंडाळ को गोदा भी कहा जाता है। प्रथम चार भक्तों को प्राचीन, बाद के पाँच को मध्य तथा शेष तीन को अन्तिम काल के मानने की परिपाटी भी चली आती है। ये सभी आळवार तमिळ-भाषी थे। इनकी रचनाओं में इनके तमिळ नाम ही मिलते है। अतः ये तमिल-प्रदेश में अपने तमिल नामों से ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

1. 'Grains of Gold', R. S. Desikan, page 6.

गुरु-परम्परा-ग्रन्थों में आळवारों की जीवन-घटनाओं से सम्बन्धित अनेक चमत्कारपूर्ण और अलौकिक कथाएँ दी गयीं हैं। इन कथाओं को भावुक भक्तों के विश्वास का बल ही केवल प्राप्त है। यहाँ आळवारों के जीवन-वृत्तों पर अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता नहीं है। फिर भी तमिल-प्रदेश में आळवारों के विषय में प्रचलित दो-एक प्रसिद्ध जन-श्रुतियों का उल्लेख करना आवश्यक मालूम पड़ता है। आळवार भक्तों में कुलशेखराळवार का एक विशेष स्थान है। ये केरल के राजा थे। इनकी अपार वैष्णव-भक्ति की ओर संकेत करने वाली अनेक जनश्रुतियाँ हैं। कहा जाता है कि एक बार जब ये कथावाचक से रामायण का व्याख्यान सुन रहे थे और उसमें सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण की नियुक्त कर अकेले ही श्री रामचन्द्र का खरदूषण की विपुल सेना से युद्ध करने का प्रसंग आया, तब कुलशेखर ने तन्मय होकर राम की सहायता के लिए अपनी समग्र सेनाओं को प्रस्थान करने की आज्ञा दे दी। कथावाचक के यह कहने पर ही कि राम अकेले ही सबको मारकर सीता-सहित विजयी होकर लौटे, 'कुलशेखर ने अपनी सेना को वापस बुलाया। एक अन्य अवसर पर जब कथावाचक ने कहा कि रावण ने सीता का हरण किया, इन्होंने श्रीलंका पर चढाई कर सीताजी को लाने की आज्ञा सेनापति को दी और स्वयं समुद्र तट पर जाकर समुद्र में उतरने लगे। कथावाचक के यह कहने पर कि श्री रामचन्द्र रावण को मारकर सीताजी सहित लौटे, ये राजमहल की ओर वापस आये।

इस तरह नम्माळवार के जीवन से सम्बन्धित अनेक जनश्रुतियाँ हैं। नम्माळवार तो निम्न जाति के थे। इनके शिष्य मधुर कवि आळवार वयोवृद्ध ब्राह्मण थे। मधुर कवि द्वारा नम्माळवार का शिष्यत्व ग्रहण करने के विषय में एक प्रसिद्ध जनश्रुति है। मधुर कवि तीर्थ-यात्रा के लिए सद्गुरु की खोज में निकले थे। कहीं भी सद्गुरु नहीं मिला। तब उन्होंने काशी में रहते हुए एक दिन दक्षिण दिशा में एक ज्योति-पुञ्ज देखा। तुरन्त वे उसे लक्ष्य करके चल पड़े। जहाँ आकर वह प्रकाश-

राशि रुकी थी, वहाँ नम्माळवार शिशु-रूप में पड़े थे। दोनों में वार्तालाप हुआ। मधुर कवि ने तुरन्त नम्माळवार का शिष्यत्व ग्रहण किया।

वैष्णव-सन्त-कवयित्री आंडाळ के विषय में भी अनेक जनश्रुतियाँ प्रचलित हैं। आंडाळ पेरियाळवार की पोष्य-पुत्री थीं। आंडाळ के मन में बचपन से ही विष्णु भगवान् के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया था। जब आंडाल पूर्ण यौवन को प्राप्त हुई तो पेरियाळवार उनके लिए सुयोग्य वर खोजने लगे। जब आंडाळ को अपने पिता की चिन्ता का कारण मालूम हुआ तो उन्होंने स्पष्ट रूप से कह दिया—"मैंने श्रीरंगम् के भगवान् को ही अपने पति के रूप में वरण कर लिया है। यदि कोई कहे कि मैं किसी दूसरे की हूँ, तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी।" कहा जाता है कि आंडाळ का विवाह श्रीरंगपति के साथ ही हुआ और विवाहोपरान्त विवाह-मण्डप में दिव्यालोक-सा व्याप्त हो गया और आंडाळ विद्युत् की चमक के समान उस ज्योति में समा गयी।

इस प्रकार की अन्य अनेक जनश्रुतियाँ आळवारों के विषय में तमिल-प्रदेश में प्रचलित हैं। ये भक्त-हृदय की श्रद्धापूर्ण कल्पनाएँ हैं। आळवारों के जीवन-वृत्तों से यह जाना जा सकता है कि वे बहुत ही उच्च आदर्शों को लेकर जीते थे। उनके जीवन भी उनकी रचनाओं में प्रतिपादित विचारधारा को पुष्ट करते हुए दीखते हैं। प्रायः सभी आळवार साधारण श्रेणी के ही मनुष्य थे। सांसारिक वैभवादि की ओर उनका आकर्षण किंचित् भी नहीं था। इन भक्तों के बीच ऊँच-नीच सभी जाति के लोग थे। भगवद्-भक्ति एवं आत्मोन्नति ही उनका परम उद्देश्य था। उन्होंने सभी जाति और वर्ग के लोगों को अपनाया था। आखिर उनका जीवन भी क्या था? आदर्श का अद्भुत नमूना था इसलिए भक्त उनको अवतार तक समझने लगे। यहाँ तक कि दक्षिण भारत के कई तीर्थ-स्थानों में इन आळवार भक्तों की प्रतिमाएँ देव-मूर्तियों के समान पूजी जाने लगीं।[1]

1. **आळवारों के सम्बन्ध में स्वामी शुद्धानन्द भारती ने जो लिखा है**

आळवारों की रचनाएँ उनके जीवन-काल में संगृहीत नहीं हुईं। इनकी रचनाओं के जो नाम आज मिलते हैं, वे आळवारों के अपने दिये हुए नहीं मालूम पड़ते। इनके पद शताब्दियों तक मौखिक रूप में जीवित रहे। इसलिए सम्भव है कि बहुत से पद नष्ट हो गये हों। नवीं शताब्दी के अन्त में श्री नाथ मुनि ने बड़े परिश्रम से इन पदों का संकलन किया। तत्पश्चात् आळवारों की रचनाओं के संग्रह का नाम 'दिव्य प्रबन्धम्' अथवा 'अरुळिचेयल' अर्थात् 'अनुग्रहपूर्ण दान' पड़ा। इस पूरे सग्रह के पदों की संख्या 4000 के लगभग है। अतः सुविधा के लिए इस पद-संग्रह को 'नालायिर दिव्य प्रबन्धम्' अर्थात् 'चार सहस्र पावन पद' की संज्ञा दी गयी है।

नम्माळवार की रचना 'तिरुवायमोळी' उनकी रचनाओं में ही नहीं, बल्कि समस्त आळवार-साहित्य में सबसे अधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'तिरुवायमोळी' का अर्थ है संत महात्मा के मुख से निकली हुई दिव्य-वाणी। 'तिरुवायमोळी' को 'सामवेद सार' भी कहा जाता है। तमिल के भक्ति-साहित्य में नम्माळवार को जो स्थान प्राप्त हुआ है, वह शायद ही किसी अन्य कवि को मिला हो। इन्हें 'श्री वैष्णव कुलपति' भी कहा जाता है। कहते हैं कि श्री रामानुजाचार्य ने ब्रह्म-सूत्रों पर भाष्य लिखते समय अपने सन्देहों का समाधान नम्माळवार की रचनाओं को देखकर ही किया था। 'तिरुवायमोळी' पर अनेक भाष्य लिखे गये हैं। तेलुगु और कन्नड़ में उसका अनुवाद हो चुका है। संस्कृत में 'सहस्र गीति' के नाम से वह श्लोकों में अनूदित है। नम्माळवार के नाम पर अनेक प्रशस्ति-ग्रन्थ लिखे गये हैं जिनमें 'आचार्य-हृदय' 'पादुका सहस्रम्',

---

वह पूर्णतः सत्य है : "An Alvar is a golden river of love and ecstacy, which finds its dynamic place in the boundless Ocean of Sachidananda. An Alvar is a living Gita, breathing Upanishad, a moving temple, a hymning torrent of divine rapture."

'द्राविड़ उपदेश-रत्नावली', 'शठकोपरन्तादि' आदि मुख्य हैं। इन में नम्माळवार की बड़ी स्तुति की गयी है।

वैष्णव संत-कवियत्री आंडाळ की दो महत्वपूर्ण रचनाएँ—'तिरुप्पावै' और 'नाच्चियार तिरुमोळी' तमिल साहित्य को ही नहीं, बल्कि समस्त भारतीय भक्ति-साहित्य को गौरव प्रदान करने वाली हैं। कई विद्वानों ने और दार्शनिकों ने मुक्त-कण्ठ से आंडाळ की रचनाओं की प्रशंसा की है। आंडाळ की 'तिरुप्पावै' में 'मार्गली नोन्पु' अर्थात् कात्यायनी व्रत वर्णित है। आंडाळ की दोनों रचनाओं ने तमिल जनता के धार्मिक जीवन को बहुत ही प्रभावित किया है। कहा जाता है कि श्री रामानुजाचार्य, जिन्होंने विशिष्टाद्वैतवादी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था, आंडाळ के पदों को गा-गाकर आत्मविभोर हो जाते थे। आंडाळ की रचना 'तिरुप्पावै' में उनकी तल्लीनता देखकर उन्हें 'तिरुप्पावै जीयर' (तिरुप्पावै प्रेमी) भी कहा जाता है। श्री वेदान्त देशिकाचार्य ने आंडाळ की प्रशस्ति गाते हुए 'गोदा-स्तुति' नामक ग्रन्थ लिखा है। कहा जाता है कि प्रसिद्ध शैव-कवि माणिक्कवाचकर ने भी 'तिरुप्पावै' का अनुकरण करके ही उसी विषय को लेकर 'तिरुवेंबावै' की रचना की। श्री आंडाळ की प्रेम-साधना को अपनी कथावस्तु बनाकर राजा श्री कृष्णदेवराय ने स्वयं तेलुगु भाषा में 'आमुक्तमाल्यदा' नामक महाकाव्य रचा।

इस प्रकार प्रत्येक आळवार की रचनाओं का अपना-अपना विशेष महत्व है।

भक्ति-आन्दोलन और आळवार

आळवारों की विचारधारा अथवा भक्ति-पद्धति पर विचार करने से पूर्व यह देखना आवश्यक है कि आळवारों के 'प्रबन्धम्' का भक्ति-आन्दोलन की दृष्टि से क्या महत्व है। हिन्दी-प्रदेश में यह बहुत ही प्रसिद्ध उक्ति है कि 'भक्ति द्राविड़ ऊपजी, लाये रामानन्द।' यह उक्ति तमिल प्रदेश के उस भक्ति-आन्दोलन की ओर संकेत करती है जो वैष्णव भक्त

आळवारों के द्वारा चलाया गया था। आळवार भक्तों ने पाँचवीं शताब्दी से आठवीं-नवीं शताब्दी तक भक्ति का जो तीव्र आन्दोलन चलाया था, वह परवर्ती शताब्दियों में एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण कर समस्त भारतवर्ष में व्याप्त हो गया। यही कारण है कि आळवार-रचित 'प्रबन्धम्' उसी 'द्राविड़ ऊपजी' वाले भक्ति-आन्दोलन का मूल-ग्रन्थ माना जाता है।

डॉ० ग्रियर्सन महाशय ने पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के उत्तर-भारतीय भक्ति-आन्दोलन के विषय में आश्चर्यचकित होकर कहा है—"कोई भी व्यक्ति जिसे पन्द्रहवीं तथा बाद की शताब्दियों के साहित्य का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त है, उस भारी व्यवधान को लक्ष्य किये बिना नहीं रह सकता, जो प्राचीन और नूतन धार्मिक भावनाओं में दृष्टिगोचर होता है। हम अपने को ऐसे धार्मिक आन्दोलन के सामने पाते हैं जो उन सब आन्दोलनों से अधिक विशाल है, जिन्हें भारतवर्ष ने कभी देखा है। इस युग में धर्म ज्ञान का नहीं, अपितु भावावेश का विषय हो गया था।" प्रस्तुत लेखक का मत है कि अगर डॉ० ग्रियर्सन को तमिल-प्रदेश में आळवारों द्वारा चलाये गये भक्ति-आन्दोलन का पूरा पता चलता तो वे शायद ही ऐसा कहते। भारतीय भक्ति-आन्दोलन पर लिखनेवाले अनेक विद्वानों ने भी यही गलती की है। चूंकि इनके सामने तमिल प्रदेश के भक्ति-आन्दोलन का वास्तविक चित्र नहीं था और आळवारों के विषय में पर्याप्त ज्ञान नहीं था, अतः उन लोगों ने आळवारों द्वारा चलाये गये भक्ति-आन्दोलन की ओर कम ध्यान दिया है। भक्ति-आन्दोलन 'बिजली की चमक' के समान अचानक उत्पन्न नहीं हुआ। उसके पीछे शताब्दियों का इतिहास है। और वह आन्दोलन तमिल-प्रदेश में प्रारम्भ हुआ था और उसके प्रमुख प्रवर्तक थे आळवार भक्त।

तमिल-प्रदेश में छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक के काल में जो भक्ति-आन्दोलन अपने चरमोत्कर्ष रूप में था, उसके बीज छठी

शती के पहले ही मिल जाते हैं। तमिल-साहित्य के 'संघकाल' की समाप्ति दूसरी शताब्दी तक मानी जाती है। इसके पश्चात् तमिल में जो साहित्य मिलता है, वह जैन और बौद्ध मुनियों द्वारा रचित है। अतः इस भक्ति-पूर्व काल को 'संघोत्तर काल' अथवा 'बौद्ध-जैन काल' कहा जाता है। इस काल में बौद्धों और जैनों ने तमिल में अनेक महा-काव्यों की रचना की और साहित्य को समृद्ध किया। प्रारम्भ में इनका उद्देश्य केवल साहित्य सर्जन ही था। परन्तु धीरे-धीरे धर्म-प्रचार का उद्देश्य प्रबल होता गया तो उन्होंने धार्मिक प्रचारार्थ ही साहित्य का सर्जन शुरू कर दिया। भक्ति-काल के प्रारम्भ में शैव और वैष्णव धर्मों का खण्डन मात्र उनका लक्ष्य रह गया। कालान्तर में जैन और बौद्ध-धर्मावलम्बियों का आचरण-पक्ष भी गिरने लगा और उनमें अनेक दुरा-चारों ने प्रवेश कर लिया। प्रारम्भ में जो राज्याश्रय जैनों को प्राप्त हुआ था, उसका दुरुपयोग कर उन लोगों ने शैव और वैष्णव संतों को सताना प्रारम्भ कर दिया। इसी युग में पाशुपत, कापालिक तथा काल-मुख कहलानेवाले लोगों के कुकृत्यों का भी परिचय मिलता है, जिनका भक्ति-आन्दोलन के प्रवर्तकों ने बड़ा खण्डन किया है। एक ओर जैन बौद्ध धर्मों की यह स्थिति थी और दूसरी ओर वैदिक धर्म की भी बुरी हालत थी। चूँकि वैदिक धर्मावलम्बियों ने अपने धर्म और वेद इत्यादि को केवल ब्राह्मण लोगों तक ही सीमित रखा, अतः साधारण जनता से उनका कोई सम्पर्क नहीं था। पाँचवीं और छठी शताब्दी में आकर बौद्धों और जैनों का आचरण-पक्ष जब बहुत गिरने लगा तो एक ऐसा वातावरण तमिल-प्रदेश में उत्पन्न हुआ, जिसे बौद्धों और जैनों के आचार-विचारों से तंग आनेवाली जनता को ऐसा मार्ग दिखाने के लिए, जिसमें समान रूप से सब आत्म-शान्ति प्राप्त कर सकें और आचरण-पक्ष भी ऊँचा रहे और वैदिक धर्म को, जो अब तक यज्ञादि कठिन नियमों को पकड़े आया है, सरल बनाकर मुक्ति के साधनों को सुलभ और सर्व साधारण के लिए प्राप्य बनाने के लिए हिन्दू-धर्म में सुधारकों

की आवश्यकता हुई। युग की इस आवश्यकता की पूर्ति करने के लिए ही वैष्णव भक्त-कवि आळवार और शैव भक्त-कवि नायनमार अवतरित हुए। बौद्ध और जैन नास्तिक धर्मों की तुलना मे उन्होंने भगवान् की सत्ता, उदारता और दयार्द्रता का प्रचार किया। छठी शताब्दी से लेकर नवीं शती तक के काल में इन वैष्णव आळवारों ने तथा शैव संत नायनमारों ने भक्ति की जो सरिता प्रवाहित की, उसकी तरल तरगों में तमिल-प्रदेश की समस्त जनता मज्जन और अवगाहन कर शान्ति प्राप्त कर सकी।

आळवारों तथा नायनमारों ने जनता की भाषा तमिल में भक्ति-प्रधान गेय पद रचकर साधारण जनता को मन्त्र-मुग्ध कर दिया, जनता में वास्तविक भक्ति-भावना का जागरण कराया। वैदिक भक्ति के स्वरूप को सुधारकर उसे सर्वसाधारण के लिए सुलभ बनाया। इसमें आळवार भक्तों का विशेष हाथ था। डॉ० कृष्णस्वामी अय्यंगार का कहना है कि "भक्ति-मार्ग को नया रूप प्रदान करने वाले प्रथम लोग आळवार भक्त ही हैं। उन्होंने भक्ति को केवल उच्च श्रेणी के लोगों के लिए ही नही, बल्कि सर्वसाधारण के लिए भी सुलभ और साध्य बना दिया।"[1] डॉ० एस० एन० दास गुप्ता ने भी लिखा है कि "भक्ति को भावात्मक जगत् की दिशा में ले जाने वाले प्रथम भक्त आळवार ही हैं।"[2] आळवारों के भावप्रधान भक्ति-पदों ने तमिल-प्रदेश में भक्ति-मय वातावरण की सृष्टि की। इस युग में भक्ति धर्म का ही नहीं, अपितु भावावेश का विषय हो गया। आळवारों के गेय पदों में हृत्तन्त्री को झंकृत कर देनेवाली शक्ति थी। कठोर-से-कठोर हृदय को भी द्रवित कर देने का सामर्थ्य था। भक्ति-रस-सिन्धु में डुबो देने का सरस संगीत

1. Hisfory of Tirupati, Vol. I. Dr. S. Krishnaswamy Iyengar, pagc73-74.
2. A History ot Indian Philosophy, Vol III,—Dr. S. N. Das Gupta, page 82 (2nd Edition)

था। उनके गीतों को गा-गाकर भक्त आत्मविभोर हो जाते थे। इस प्रकार भक्ति-आन्दोलन ने एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण किया। इसका पूरा-पूरा श्रेय आळवार भक्तों को ही है। आळवारों ने छठी शताब्दी से लेकर नवीं शताब्दी तक तमिल-प्रदेश में भक्ति की जो पावन गंगा बहायी थी, वह बाद की शताब्दियों में भी प्रवहमान रही। उनका काम केवल भक्ति-भावना के समाधिमय क्षणों में अपने मानस में उत्पन्न होने वाले उद्‌गारों को सुन्दर पदावली में व्यक्त करना था। उनके भक्ति-प्रधान गीतों में प्रेम और श्रद्धा की भावनाओं का अतिरेक था और हृदय-पक्ष की प्रधानता थी, जो साधारण भावुक हृदय को अनायास ही आकर्षित कर लेती थी।

आळवारों की परम्परा में उनके पश्चात् कुछ ऐसे विद्वान हुए जिन्होंने आळवारों की भक्ति-भावना के लिए दार्शनिक पृष्ठभूमि तैयार की। ये 'आचार्य' कहलाये। ये आळवारों की विचार-धारा से प्रभावित थे। इनके द्वारा 'प्रबन्धम्' पर अनेक भाष्य प्रस्तुत किये गये। आळवारों की विचारधारा का शास्त्रीय विवेचन हुआ। इन आचार्यों में श्री रामानुजाचार्य का विशेष स्थान है। श्री रामानुज की विशिष्टाद्वैतवादी विचारधारा का निर्माण तो आळवार-साहित्य की पृष्ठभूमि पर ही हुआ है। इसमें सन्देह नहीं। श्री रामानुज की शिष्य-परम्परा में श्री रामानन्द भी आये जिन्होंने भक्ति का व्यापक प्रचार उत्तर भारत में किया। इससे भक्ति-आन्दोलन को और भी बल मिला। 'प्रबन्धम्' के भक्ति-तत्वों ने परवर्ती भक्ति-साहित्य को बहुत ही प्रभावित किया। इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ 'प्रबन्धम्' ही ठहरता है।

कुछ विद्वानों ने श्रीमद्‌भागवत को भक्ति-आन्दोलन के मूल ग्रन्थ के रूप में माना है। परन्तु श्रीमद्‌भागवत अपने वर्तमान रूप में 'प्रबन्धम्' के बाद की रचना मालूम पड़ती है। अधिकांश विद्वानों ने उसे नवीं शती के बाद की रचना माना है। श्रीमद्‌भागवत में भक्ति का जो शास्त्रीय विवेचन प्रस्तुत किया गया है, वह आळवारों की विचार-

धारा से प्रभावित मालूम पड़ता है। 'प्रबन्धम्' में ऐसी बहुत-सी बातें हैं, ऐसी भी कुछ कृष्ण-लीलाओं का वर्णन है, जो भागवत में नहीं हैं। भागवत में जिन फूलों, वृक्षों का वर्णन है, वे उत्तर में नहीं हैं, दक्षिण भारत में ही हैं। अतः कुछ हद तक स्पष्ट हो जाता है कि भागवत की रचना तमिल-प्रदेश में ही हुई थी और वह 'प्रबन्धम्' से प्रभावित है। श्री 'दिनकर' ने ठीक ही लिखा है—"गीता और भागवत तथा गीता और रामानुज के बीच की कड़ी आळवार सन्त हैं। भक्ति का दर्शन आळवारों के तमिल प्रबन्धों से आया है और कदाचित् भागवत भी उसी प्रबन्धम् से प्रभावित है। प्रबन्धम् में आळवारों के पद मूल रूप में रखे गये थे। पीछे वैष्णव विद्वानों ने उन पर टीकाएँ भी लिखीं। इस प्रकार 'प्रबन्धम्' भक्ति-आन्दोलन का मूल ग्रन्थ बन गया।"[1]

आळवारों की भक्ति की रस-धारा विभिन्न आचार्यों द्वारा उत्तर की ओर लायी गयी। इसी को लक्ष्य करते हुए भक्ति की जन्म-भूमि द्राविड़ (अथवा तमिल-प्रदेश) को मानकर ही भागवतकार ने संकेत किया है—

> "उत्पन्ना द्रविडे साहं वृद्धिं कर्णाटके गता।
> ....[2]

इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय भक्ति-आन्दोलन को आळवारों की अत्यन्त महत्त्वपूर्ण देन है।

आळवारों की विचार-धारा और भक्ति-पद्धति

आळवारों ने भक्ति को सर्वोपरि महत्त्व दिया है। उन्होंने योग, तपस्या आदि को व्यर्थ सिद्धकर भक्ति को ही सरल और निश्चित रूप से फल देनेवाली कहा है।[3] सांसारिक दुख से छूटकर परमानन्द प्राप्त

1. संस्कृति के चार अध्याय, श्री 'दिनकर', पृ० 296
2. श्रीमदभागवत, माहात्म्य अध्याय 2, श्लोक 48, 49.
3. पेरिय तिरुमोळी, 3 : 2 : 2

करने के लिए योग, तप इत्यादि सब व्यर्थ हैं, केवल भक्ति ही वैकुण्ठ-प्राप्ति करा सकती है ।[1] भक्ति से जो सुख मिलता है, वह स्वर्ग के सुख से भी श्रेष्ठ है ।[2] पेरियाळ्वार का कथन है कि भक्ति के बिना जीवित व्यक्ति अपनी माँ के गर्भ को कलंकित करनेवाला है ।[3] आळ्वारों के अनुसार वह जीव, जीव नहीं जिसने हरि की भक्ति नहीं की है । वह जीव अपराधी है, पृथ्वी के लिए भारस्वरूप है तथा जीवित ही नरक-भोगी है । नम्माळ्वार ने कहा है कि भगवान् भक्त के लिए सुलभ हैं, दूसरों के लिए दुर्लभ हैं ।[4]

भक्ति के महत्त्व के विषय में हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों की भी यही मान्यता है । सूरदास ने कहा है कि भक्ति के बिना भगवान् दुर्लभ हैं—

"रे मन समुझि सोचि-विचारि
भक्ति बिनु भगवन्त दुर्लभ कहत निगम पुकारि"

नन्ददास भी भक्ति की महत्ता का वर्णन करते हुए भगवान् से प्रार्थना करते हैं—"हे, भगवान् ! तुम्हारी पीयूषमयी भक्ति के बिना कोई सिद्ध भी मुक्ति नहीं पा सकता । ज्ञानी, योगी तथा कर्ममार्गी लोगों को परम पद पाना कठिन है ।"

आळ्वार भक्तों ने यद्यपि ब्रह्म के दोनों रूप सगुण और निर्गुण को माना है, तथापि उन्होंने सगुण ब्रह्म की महत्ता स्थापित की है । पोयगै आळ्वार का कथन है—"भक्त जिस रूप को चाहते हैं, वही उसका रूप है; जिस नाम को चाहते है, वही उसका नाम है । भक्त जिस ढंग से भी उपासना करें, उसी ढंग से विष्णु भगवान् उनका उपास्य बन

1. नान्मुखन तिरुवन्तादि, पद 79
2. तिरुवायमोळी 5-2-10
3. पेरियाळ्वार तिरुमोळी 4-4-2
4. तिरुवायमोळी 1-3-1

जाता है।"[1] हिन्दी के कृष्ण भक्त कवियों ने भी निर्गुण ब्रह्म की तुलना में सगुण ब्रह्म का ही महत्त्व गाया है। सूरसागर के आरम्भ में "अविगत गति कछु कहत न आवै" वाले पद में सूर ने निर्गुणोपासना में होनेवाली कठिनाई का उल्लेख किया है।

लिखा जा चुका है कि 'प्रवन्धम्' के परवती ग्रन्थों मे भक्ति का शास्त्रीय विवेचन हुआ है। श्रीमद्भागवत में भक्ति-तत्त्वों का शास्त्रोक्त विवेचन है। भक्ति के प्रकारों की चर्चा है। श्रीमद् भागवत के सप्तम स्कंध में साधनपक्ष को ध्यान में रखकर भक्ति के नौ भेद माने गये है। ये नवधा-भक्ति इस प्रकार है—श्रवण, कीर्तन, स्मरण, पादसेवन, अर्चन, वन्दन, दास्य, सख्य और आत्मनिवेदन। यद्यपि आळवार भक्तों ने भक्ति के भेद नही गिनाये हैं तो भी उनकी रचनाओं में भक्ति के विविध रूपों के दर्शन मिलते हैं। जिसे परवर्ती भक्ति-साहित्य में नवधा भक्ति की संज्ञा दी गयी है, उस भक्ति के उदाहरण पर्याप्त मात्रा में 'प्रवन्धम्' में मिलते हैं।

श्रवण भक्ति की चरम अवस्था वह है जब बिना भगवान् के गुण और चरित्र के सुने भक्त बेचैन रह जाता है। आळवारों की सम्पूर्ण वाणी भगवान् के नाम और लीला सुनने और सुनाने से सम्बन्धित है। तोंडरडीपोडी आळवार कहते हैं—"अत्यन्त सुन्दर शरीर, विद्रुम जैसे मुँह, कमल-दल-लोचन वाले घनश्याम के 'अच्युत', 'देवों के अधिपति', 'गोकुल नायक' आदि नामों के सुनने से जो आनन्द प्राप्त होता है, उसकी तुलना में इन्द्रलोक पर शासन करने से प्राप्त होने वाले सुख को भी नहीं चाहता।"[2]

कीर्तन की महिमा सभी भक्तों ने मुक्त कंठ से स्वीकार की है। आळवारों के समस्त पद स्तुतिपरक कीर्तन ही हैं। वैष्णव मन्दिरों में गाने के निमित्त ही वे रचे गये थे। इन कीर्तनों को गा-गाकर भक्त

1. मुदल तिरुवन्तादि, पद 88।
2. तिरुमालै, 2।

आत्मबिभोर हो जाते थे। गुणगान भगवान् का ही हो सकता है। उसी में भक्त को आनन्द है; लौकिक पुरुषों के गुणगान में नहीं। नम्माळवार ने लौकिक पुरुषों का गुणगान करने वाले कवियों को चेतावनी दी है। पेरियाळवार कहते हैं—"भगवत्-स्तवन नहीं करनेवाले मनुष्य जो जल पीते हैं, जो वस्त्र पहनते हैं, उन वस्तुओं का दुर्भाग्य है।···भगवान् का गुणगान (कीर्तन) करनेवाले भक्तों के चरणों के स्पर्श से यह पृथ्वी धन्य है।" भूतन्ताळवार के अनुसार भगवान् के गुणों की, लीलाओं की स्तुति करना ही तप के समान है। राजा कुलशेखर भगवान् के नाम-संकीर्तन में सतत लगे रहनेवाले भक्तों की सेवा में श्रेष्ठ सुख मानते हैं।[1]

आळवारों के स्तुति-गीतों की एक बड़ी विशेषता उनमें संगीत का समावेश है। संगीत का प्रभाव विश्वव्यापी है। आळवारों के स्तुतिपरक भक्ति-गीतों को गाते-गाते भक्त बहुधा आनन्दातिरेक से नाच उठते थे। अनेक धार्मिक उत्सवों के अवसरों पर उनका गाया जाना अनिवार्य समझा जाता है। विभिन्न राग-रागिनियों में गाने योग्य आळवारों के कीर्तनों ने जनता पर अमिट प्रभाव डाला है।

सूर आदि हिन्दी के कृष्ण-भक्त कवियों का सम्पूर्ण काव्य कीर्तनपरक ही है। सूरदास कीर्तन की महिमा का वर्णन इस प्रकार करते हैं—"गोपाल के गुण-गान से जो आनन्द मिलता है, उसके आगे जप, तप तथा तीर्थाटन क्या चीज़ है?"

"जो सुख होत गुपालहिं गाये।
सो नहिं होत जप तप के कीने कोटिक तीरथ न्हाये।"

भगवान् के नाम, उनके गुण, माहात्म्य, उनकी सर्वव्यापकता, लीला आदि का सदा ध्यान रखना तथा उन्हीं के स्मरण में लीन रहना स्मरण-भक्ति है। स्मरण-भक्ति का उदाहरण नम्माळवार से सुनिये। वे कहते हैं—"जो जल मैं पीता हूँ, जो भात खाता हूँ, जो पान खाता हूँ, सभी वस्तुएँ कृष्णमयी दीखती हैं; सभी में भगवान् का स्मरण आता है।"

1. पेरुमाळ तिरुमोळी—2 : 4।

पेरियाळवार कहते हैं कि भगवान् का स्मरण मन में एक बार करने मात्र से भगवान् मन में वास कर बैठते हैं। कृपा-सिन्धु भगवान् का नाग-स्मरण नहीं करनेवालों को वे मनुष्यों की कोटि में मानने को तैयार नहीं हैं। हरि-स्मरण-भक्ति के विषय में हिन्दी के कवि सूरदास का कथन है—"सबको हरि भगवान् का स्मरण करना चाहिए। हरि स्मरण से सब सुख प्राप्त होते हैं। हरि स्मरण के बिना मुक्ति नहीं है"—

"हरि हरि हरि सुमिरो सब कोई, बिना हरि सुमिरन मुक्ति न होई।"

पाद-सेवन की महत्ता बताते हुए पोयगै आळवार कहते हैं—"हे, भगवान्! अगर मैं किसी चीज़ की चाह करूँगा तो वह आपके चरणों की सेवा ही है। मैं आपके चरणों को अपने सिर पर धारण करूँगा। उसी में मुझे गौरव है।"[1] नम्माळवार कहते हैं—"भगवान् के चरणों की स्तुति न करनेवालों को जन्म-मरण, रोग-दुख आदि का कष्ट भोगना पड़ता है। भगवान् के चरणों के सिवा मुझे कोई और शरण नहीं दीखती।"[2] हिन्दी कवि सूरदास ने भी दास्य भाव से भगवान् का पाद-सेवक होने का उपदेश दिया है। सूर कहते हैं—

"भजि मन नन्द नन्दन चरन।
परम पंकज अति मनोहर सकल सुख के करन।"

मीराबाई भी कहती है—

"मन रे परस हरि के चरन।
सुभग शीतल कंवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।"

अर्चन-भक्ति तथा वन्दन-भक्ति के भी अनेक उदाहरण आळवारों के पदों में मिल जाते हैं।

आळवार भक्तों के अनुसार भगवान् सभी भावों से भजनीय हैं। नम्माळवार और पोयगै आळवार का मत है कि भक्त अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार किसी भी प्रकार से भगवान की अर्चना कर सकते

1. **मुदल, तिरुवन्तादि पद** 88।
2. **तिरुवायमोळि,** 5-7-10।

है। आळवारों के लिए 'प्रेम' भक्ति का पर्यायवाची है। उन्होंने भक्ति में प्रेम-तत्त्व को ही प्रमुख स्थान दिया है। भूतन्ताळवार कहते हैं—"प्रेम के दिये में अभिलाषा का घी डालकर, स्निग्ध हृदय की बाती लगाकर स्नेह द्रवित आत्मा के साथ मैंने नारायण के सम्मुख ज्ञान-दीपक जलाया।"[1] आळवारों के द्वारा प्रतिपादित भक्ति प्रेम रूपा भक्ति है। इस लोक में प्रेम-सम्बन्ध के जितने भी रूप हो सकते हैं, उतने ही भावों को प्रकट करनेवाले भक्ति के प्रकार हो सकते हैं। आळवारों ने भगवान् से सब प्रकार के सम्बन्ध स्थापित किये हैं। भगवान् के प्रति उत्कट प्रेम को प्रकट करनेवाले आळवारों के कितने ही पद हैं? भक्ति को प्रेम-सम्बन्ध में परिवर्तित कर आळवारों ने मध्ययुगीन भक्त-कवियों के लिए एक आदर्श छोड़ रखा था।

'नारद भक्ति-सूत्र' में प्रेमरूपा भक्ति की ग्यारह आसक्तियाँ बतायी गयी हैं। इन सभी आसक्तियों के उदाहरण आळवारों के पदों में भरे पड़े हैं। लोक में मानव-प्रेम के जितने रूप हैं, उन सभी प्रीति-सम्बन्धों को भक्तों ने भगवान् के साथ जोड़ा है और उसी के अनुसार भक्ति के भावों का भी नामकरण कर दिया है। इन भावों में दास्य भाव, सख्य भाव, वात्सल्य भाव और मधुर भाव विशेष उल्लेखनीय है।

दास्य भाव की भक्ति

दास्य भक्ति के अन्तर्गत उन सभी भावों की व्यंजना होती है जिन्हें एक स्वामी-भक्त सेवक, आज्ञापालक पुत्र और शिष्य अपने प्रभु, माता-पिता और गुरु के प्रति विभिन्न परिस्थितियों में प्रकट करते है। भक्त भगवान् की सर्व-सामर्थ्य को ध्यान में रखकर उन पर अपनी अनन्याश्रयता प्रकट कर नाना प्रकार से उनकी कीर्ति का गायन करते हुए उनकी कृपादृष्टि पाने के लिए सदा कातर रहते हैं। भगवान् के चरणों में आत्मसमर्पण कर अपने उद्धार की प्रार्थना करते है। आळवारों के

1. इरण्टाम तिरुवन्तादि, पद 1।

अनेक पदों में दास्य-भाव की भक्ति की व्यंजना हुई है। इनके पदों में दास्य भक्ति के अंग आत्मदोष-प्रकाशन, विनय, याचना, दीनता, समर्पण तथा भगवान् के सामर्थ्य की अनुभूति आदि के भाव व्यंजित हैं। तिरुमगै आळवार अपने को भगवान् का दास कहने में अत्यन्त आनन्द पाते हैं। वे कहते है—"हे, मन ! तुम धन्य हो। मूर्ख लोगों के कथन की ओर ध्यान न देकर तुमने गोपालकृष्ण की दासता स्वीकार कर ली है।"[1] तिरुमळिशै आळवार कहते है—"हे भगवान् ! तुम मेरे लिए प्रेम-मूर्ति हो। अमृत हो। मेरे लिए सब कुछ हो। मुझ इस दास के लिए सर्वानन्द हो। मै तुम्हारा आज्ञाकारी दास हूँ। तुम्हारा अनुग्रह ही मेरा सर्वस्व है। मैं भलीभाँति समझ गया हूँ कि तुम्हारे सिवा और कोई सहारा नहीं।"[2]

आत्मदोष प्रकट कर तोंडरडीपोडी आळवार दैन्य भाव से भगवान् की शरण की याचना करते हैं। तडपते हुए भक्त हृदय की करुण पुकार इन पदों में सुनायी पडती है। वे कहते है—"मेरा अपना कोई घर नहीं। अपनी कोई जमीन नही और पूछनेवाला कोई बन्धु भी नही। फिर भी हे करुणामूर्ति ! इस पार्थिव जीवन में मैंने आपके चरणो की शरण ग्रहण नहीं की।...अब तो भारी क्रन्दन करता हूँ। कोई है मुझे अवलम्ब देनेवाला ?...मेरे मन में थोड़ी-सी पवित्रता नही; मुँह से एक भी हित-वचन नहीं निकलता। क्रोध के कारण द्वेष-वृद्धि का दमन नही कर पाता हूँ। किन्तु दूसरों पर बुरी दृष्टि डालकर कटु-वचन बोल देता हूँ। मेरी अब क्या दशा होगी ? कहिए, मुझ पर शासन करसे वाले महा प्रभु !... हे भगवान् ! तुम्हारे दर्शन को प्राप्त करने के मार्ग से विमुख रहनेवाले लोगों की संगति में रहा हूँ। मैं मूर्ख हूँ।...अब आपकी शरण में आया हूँ।"[3]

1. पेरियतिरुमोळी, 2-1-8।
2. नान्मुखन तिरुवन्तादि, पद 59।
3. तिरुमालै, पद संख्या, 30,32

तिरुमंगै आळवार दास्य-भाव से भगवान् की कृपा की याचना करते हुए कहते हैं—"मैं दुखी हूँ, चिन्तित हूँ, व्याकुल हूँ। सांसारिक मोह-जाल में पड़कर मैंने कितने ही स्वर्ण-दिन खो दिये। विजय की कामना कर, नश्वर पदार्थों की इच्छा कर, नारी के मोह-जाल में पड़कर चंचल मन से कितने ही दिन मैंने नष्ट कर दिये। अब क्या करूँ? हे, भगवान्! मैं मनमाने मार्ग पर चलनेवाला हूँ, दिशाहीन हूँ, लक्ष्यहीन हूँ। अन्त में आपके पास आया हूँ। हे करुणा निधान! इस अकिंचन की रक्षा करो।"[1] कुलशेखराळवार ने भी भगवान् की शरण को ही एकमात्र सहारा माना है।

इस प्रकार के दास्य-भाव को व्यक्त करनेवाले अनेक पद हिन्दी के कृष्ण भक्त-कवियों ने भी गाये हैं। लौकिक व्यवहार में जो मित्रता का आदर्श उपस्थित किया जाता है, उसी आदर्श-भाव को सख्य-भाव में भक्त भगवान् के प्रति रखता है। सख्य-भाव द्वारा निःस्वार्थ भक्ति की पुष्टि पूर्ण रूप से होती है। सख्य भाव की भक्ति को व्यक्त करने वाले अनेक पद आळवारों के मिल जाते हैं।

वात्सल्य-भाव की भक्ति

वात्सल्य भाव की भक्ति अन्य सब प्रकार से उत्तम कही जा सकती है। क्योंकि वात्सल्य-भाव भक्ति का शुद्ध भाव है। इसमें निष्काम प्रेम का भाव सर्वाधिक रहता है। इस प्रकार की प्रीति की भक्ति के अभ्यास से साधन की आरम्भिक अवस्था में लौकिक वासनाएँ सभी शीघ्र ही छूट जाती हैं।

आळवार भक्तों में पेरियाळवार ने वात्सल्य-भाव के बहुत ही सुन्दर चित्र अंकित किये हैं। जितने विस्तृत और विशद रूप में बाल्य-जीवन का चित्रण पेरियाळवार ने किया है, उतने विस्तृत रूप में तमिल के किसी दूसरे कवि ने नहीं किया है। शैशव से लेकर कौमार्य-अवस्था

---

1. **पेरिय तिरुमोळी, 1-1-3 और 1-1-4।**

तक के क्रम से लगे हुए न जाने कितने चित्र मौजूद हैं ! पेरियाळवार ने न केवल बाहरी रूपों और चेष्टाओं का ही विस्तृत और सूक्ष्म वर्णन किया है, बल्कि बालकों की अन्तःप्रकृति में पूरा प्रवेश किया है और बाल-भावों की सुन्दर स्वाभाविक व्यंजना की है। हिन्दी-विद्वान डॉ० हज़ारी-प्रसाद द्विवेदो ने महाकवि सूरदास के विषय में जो लिखा है, वह पेरिया-ळवार के विषय में भी सत्य है। द्विवेदीजी ने लिखा है—"यशोदा के वात्सल्य में वह सब-कुछ है जो 'माता' शब्द को इतना महिमाशाली बनाये हुए है।···यशोदा के बहाने सूरदास ने मातृ-हृदय का ऐसा स्वाभाविक, सरल और हृदयग्राही चित्र खींचा है कि आश्चर्य होता है।" यों कहा जा सकता है कि सूरदास हिन्दी के पेरियाळवार हैं और पेरियाळवार तमिल के सूरदास।

पेरियाळवार की बाल-वर्णन-शैली 'पिळ्ळै-तमिल' नाम से प्रसिद्ध है। परवर्ती कवियों ने इस शैली का ही अनुकरण किया है। पेरिया-ळवार ने अपनी लघु-रचना 'तिरुप्पल्लाण्डु' में भगवान् को शिशु-रूप में कल्पित कर उन्हें वात्सल्य-भाव से कई सहस्र वर्ष जीवित रहने का आशीर्वाद दिया है। पेरियाळवार ने माता यशोदा के हृदय के प्रत्येक उद्गार को, उसके प्रत्येक उच्छ्वास-निःश्वास को बड़ी मार्मिकता के साथ दर्शाया है। कृष्ण-जन्म के कुछ दिनों के बाद यशोदा अपनी सहे-लियों से कहती है—"पालने में छोड़ो तो ऐसा पद-प्रहार करता है कि कि उसके टूटने का भय होने लगता है। गोद में उठा लूँ तो कमर तोड़ देता है। छाती से लगा लूं तो पेट फाड़ देता है। हे सखि ! मुझसे नहीं होती इस शिशु की सार-सँभाल। मैं क्या करूँ ?"[1] शिशु के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य पर माता मुग्ध हो जाती है और अपनी सहेलियों से कहती है— "शिशु के प्रत्येक अंग के सौन्दर्य को देखो। शिशु के अपने पैरों की उँगली को मुँह में लेकर चूमते समय उसके कोमल चरणारविन्दों की सुन्दरता को देखो।" माता चन्द्रमा को सम्बोधित कर कहती है—

1. **पेरियाळवार तिरुमोळि, 1-1-9.**

"हे चन्द्र ! मेरे लाल के माथे पर आभूषण डोल रहा है। सोने की किंकिणी मधुर निनाद कर रही है। मेरा लाल गोविन्द ज़मीन पर धूल में घुटनों के बल से रेंगता हुआ खेल रहा है।···मेरा नन्हा, जो मेरे लिए अमृत के समान है, तुम्हें बुला रहा है, अपने कोमल करों से तुम्हारी ओर लक्ष्य करके। अगर तुम इस घनश्याम के साथ खेलना चाहोगे तो मेघों के पीछे छिपो मत।···मेरे लाल के सुन्दर मुँह से लार टपक रही है। मेरा लाड़ला तोतली बोली में तुम्हें पुकार रहा है। मेरे सर्वप्रिय दुलारे के यों बुलाने पर भी तुम नहीं आओगे तो मैं तुम्हें बहरा ही समझूँगी।" लोरी गाकर शिशु को सुलाने में माता को कितना आनन्द है ! बाल-सुलभ चेष्टाओं का तो पेरियाळवार ने सूक्ष्म वर्णन प्रस्तुत किया है। कान्हा पड़ोस के बच्चों से झगड़ा करने के बाद चुपके-से घर आ जाता है। पड़ोसिनें अपने रोने वाले बच्चों को साथ लेकर यशोदा को घेर लेती हैं और शिकायत करती हैं। इधर कान्हा हँस रहा है। कान्हा पड़ोस के घरों मे मक्खन चुराकर ही नहीं खाता, बल्कि खाने के बाद खाली घड़ों को पत्थर पर दे मारता है और टूटकर बिखरने की आवाज़ पर खुश होकर तालियाँ बजाता हुआ नाच उठता है।[1]

पहली बार जब कान्ह गौएँ चराने के लिए वन की ओर जाता है, तब यशोदा का कलपना और सायंकाल को ठीक समय बालक के लौटने तक की उसकी चिन्ता और घबराहट का वर्णन हृदय-द्रावक है। पुत्र-वियोग एक क्षण के लिए भी माता को असह्य है। यशोदा अपने को कोसती हुई कहती है—अंजनवर्ण वाले अपने दुलारे को मैंने बड़े ही सबेरे वन में भेज दिया। गायों को चराने के लिए वन में चलते समय उसके कोमल चरणों को कष्ट पहुँचेगा। उसको यहाँ रखकर उसकी नाना चेष्टाओं को देखते ही रहने के बदले पापिनी मैंने उसे वन भेज दिया। हाय !" जब कान्हा वन से लौटता है, तो माता के आनन्द की सीमा नहीं रहती।

1. वही, 2-9-1

इस प्रकार पेरियाळवार ने स्वयं मातृ-हृदय का अनुभव कर वात्सल्य-भाव को सजीव रूप दिया है। हिन्दी के सूरदास, परमानन्ददास आदि कवियों ने भी वात्सल्य रस की धारा प्रवाहित की है। वात्सल्य भक्ति के क्षेत्र में आळवार और हिन्दी कृष्ण-भक्त कवि बेजोड़ हैं।

मधुर भाव की भक्ति

लोक में प्रीति के विभिन्न सम्बन्धों में स्त्री-पुरुष के प्रेम में विशेष आकर्षण है। स्त्री-पुरुष की परस्पर प्रीति को काव्य-शास्त्र में 'शृंगार-रस' की संज्ञा दी गयी है। लोकानुभूत स्त्री-पुरुष के प्रेम-सम्बन्ध की व्यापकता को देखकर भक्तों ने भी ईश्वर के प्रति अपने आध्यात्मिक सम्बन्ध की अनुभूतियों को लौकिक शृंगार की भाषा और अन्योक्तियों में प्रकट किया है। लोक-पक्ष में जो शृंगार-रस है, वह भक्ति-शास्त्र में 'मधुर रस' कहलाता है। भारतीय मनीषियों का मत है कि भक्त में परमात्मा के प्रति उतना तीव्र प्रेम होना चाहिए जितना स्त्री के हृदय में पुरुष के प्रति। स्त्री-भाव के प्रेम में ही आत्मोत्सर्ग और आत्म-विस्मृति की अवस्था पूर्ण रूप में आती है। भक्त-कवियों ने अपने को स्त्री-रूप कल्पित कर परमात्मा पुरुष के प्रति तीव्र प्रेम प्रकट किया है। आळवारों के अनेक पदों में इस मधुर भाव की भक्ति की अभिव्यक्ति हुई है।

आंडाळ तो स्वयं को कृष्ण की पत्नी के रूप में मानती थीं। वे कहती हैं—"यौवन सुषमा से पूरित मेरा यह शरीर उस चक्रधारी पुरुषोत्तम के लिए ही अर्पित है। उस पुरुषोत्तम पतिदेव को लक्ष्य करके उभरे हुए मेरे उरोजों को यदि किसी दूसरे के उपभोग्य बनाने की (दूसरे के साथ विवाह होने की) बात चली तो मैं जीवित नहीं रहूँगी।"[1] आंडाळ ने स्वप्न में 'माधव' के साथ होनेवाले अपने विवाह का बड़ा ही सरस वर्णन किया है, "दुन्दुभियों का नाद उठ रहा था। शंख-ध्वनि

1. नाच्चियार तिरुमोळि—1 : 5

भक्त आण्डाळ

सुनाई दे रही थी। उस समय जगमगाती मुक्तावलियों से अलंकृत मंडप में पुरुषोत्तम ने आकर मुझे अपनाया।"[1]

हिन्दी कवयित्री मीरा के अनेक पद स्वकीया-प्रेम को प्रकट करते हैं। मीरा स्पष्ट रूप से कहती हैं—

"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।"

और

"मैं तो गिरिधर के घर जाऊँ।
गिरिधर म्हारो साँचो प्रीतम देखत रूप लुभाऊँ।
मेरी उनकी प्रीति पुरानी उण बिन पल न रहाऊँ।"

किशोर-कृष्ण के रूप-लावण्य ने व्रज की गोप-कुमारियों को मुग्ध कर डाला है। पेरियाळवार की गोपी कहती है—"हे, सखि! मुरली से मधुर ध्वनि निकालते हुए आते समय घनश्याम के अतुल सौन्दर्य पर मैं इतनी मुग्ध हो गयी हूँ कि अनजाने ही मेरे हाथ के कंकण स्वयं गिर रहे हैं। मेरे वस्त्र भी अस्त-व्यस्त हो रहे हैं।"[2] कृष्ण के रूप-माधुर्य पर मुग्ध गोपी की दशा का वर्णन माँ करती है—"कमल दल-लोचन, सुन्दर वदन, कृष्ण को गली में मुरली बजाते हुए गाते, नाचते देखकर उसके सौन्दर्य हर मेरी पुत्री इतनी मोहित हो गयी है कि उसका शरीर अब क्षीण हो रहा है।"[3]

प्रेम की पूर्व-राग-अवस्था में जब प्रेम परिपक्वता और दृढ़ता को प्राप्त करता है, तब प्रेमियों का मिलन होता है। यह संयोगावस्था वास्तविक मिलन में अथवा मानसिक जगत् के काल्पनिक मिलन में प्रकट हो सकती है। आंडाळ संयोग-सुख की इच्छा से प्रेरित होकर शंख को संबोधित कर कहती हैं—"लालसावश पूछती हूँ। हे सखे, शंख! जरा

1. वही—6 : 6
2. पेरियाळवार तिरुमोळी—3-4-4
3. पेरियाळवार तिरुमोळी—3-4-7

बताओ तो। मेघवर्ण 'माधव' के अधर-रस का स्वाद कैसा है ? काफूर या कमल-सा सुगन्ध-युक्त अथवा मधुर मिठास भरा ? बताओ हे, धवल ! माधव के प्रवाल-सम अधर का रस कैसा है ?"[1]

हिन्दी कवयित्री मीराबाई ने भी प्रियतम-मिलन के अनेक चित्र अंकित किये हैं। वे कहती हैं—

> **"सहेलियाँ साजन घरि आया हो।**
> **बहुत दिना की जोवती विरहणि पिय पाया हो।**
> **म्हारा ओलगिया घर आया जी।**
> **तन की ताप मिटी सुख पाया हिल मिल मंगल गाया जी।"**

प्रेम की परीक्षा वियोग में होती है। प्रेम की संयोगावस्था के सुख का महत्व विरह की वेदना में मालूम पड़ता है। आळवार भक्तों के काव्य में प्रेम के संयोग पक्ष की अपेक्षा वियोग-पक्ष का वर्णन बहुत अधिक है। उनके पदों में विरह की सभी अवस्थाओं के बड़े ही हृदय-ग्राही वर्णन मिलते हैं। आंडाळ वियोग में कोकिल से कहती हैं—"मेरे शरीर की हड्डियाँ पिघल गयी हैं। भाले सम लम्बे-लम्बे नेत्र कभी बन्द नहीं होते। निशिदिन इनसे अश्रुधारा बहती है। दुख-सागर में डूबकर गोविन्द नामक नाव के बिना मैं कष्ट भोगती हूँ। हे, कोकिल ! तू कदाचित् इस व्याधि से परिचित है जिसका जन्म प्रिय-जन-विच्छेद में होता है। कांचन सम कांतियुक्त शरीर वाले मेरे प्रियतम को यहाँ आने का निमन्त्रण दे दे।"[2]

नम्माळवार की नायिका कहती है—हे मन्द मारुत ! अब मुझे तुम्हारे प्रति आकर्षण नही है। मेरे हृदय को तो प्रियतम ले गया। अब तुम मुझे काहे को सताते हो ? शीतल होकर भी जलाते क्यों हो ?··· वियोग में एक-एक क्षण एक एक युग के समान लगता है। हृदय वियोग में टुकड़े-टुकड़े हो जाता है। आश्चर्य है कि मैं प्रिय-वियोग में कैसे

---

1. **नाच्चियार तिरुमोळि**—7 : 1
2. **नाच्चियार तिरुमोळि**—5 : 4

जीवित हूँ ?"[1] नायिका समुद्र को देखकर कहती है—"हे, समुद्र दिन-रात तुम गरजते रहते हो। मानो हृदय को द्रवित कर वेदना-तरंगों को लहराकर रोते रहते हो। क्या तुम्हें भी मेरी दशा हो गयी है ? तुम किस के वियोग में इस तरह रोते हो ?"[2] वियोगिनी नायिका कहती है—"सारा जगत दीर्घ निद्रा में मग्न है। सर्वत्र सन्नाटे का साम्राज्य है। विशाल सागर की तरह अन्धकार मेरे चारों ओर फैला हुआ है। इस नीरव-रजनी में मैं ही केवल जाग रही हूँ। अगर मेरा प्रियतम न आये तो कौन मुझे सांत्वना दे सकेगा ?"[3]

हिन्दी के अनेक कृष्ण-भक्त कवियों ने भी मधुर भक्ति के वियोग-पक्ष का पर्याप्त वर्णन किया है। विरहावस्था में गोपियों की भाव-दशा का परिचय महाकवि सूर के अनेक पदों में मिलता हैं। गोपियाँ कहती हैं—

> **"निसि दिन बरसत नैन हमारे।**
> **सदा रहति बरषा रितु हम पर, जब तें स्याम सिधारे।"**

आंडाल की तरह मीरा का समस्त काव्य एक प्रकार से विरह-काव्य ही है। मीरा के विरह में आन्तरिक वेदना का समावेश अधिक है। मीरा कहती हैं—

> **"रमैया बिन नींद न आवै।**
> **नींद न आवै विरह सतावै, प्रेम की आंच ढुलावै।**
> **बिन पिया जोत मन्दिर अन्धियारो, दीपक दाय न आवै।**
> **पिया बिनु मेरी सेज अलूनी, जागत रैण बिहावै।"**

ऊपर हमने देखा कि आळवार-काव्य में भक्ति के विविध भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। भगवान् की सेवा में प्रस्तुत होकर किसी भी रूप में उनके सामीप्य को प्राप्त करने के भाव कुछ आळवारों ने व्यक्त

---

1. **तिरुविरुत्तम**, 4 **और** 5
2. **तिरुवायमोळि**, 2-1-3
3. **वही**, 5-4-1

किये हैं। कुलशेखराळ्वार, अगले जन्म में ही सही, भगवान की सामीप्य-प्राप्ति की कामना कर प्रार्थना करते हैं :—

"मुझे चाह नहीं कि असीम अनुपम सुख-सम्पत्ति अथवा अप्सरा-सदृश रमणियों के विलास लास्यों से पूर्ण मादक स्वर्गीय आनन्द प्राप्त करूँ। मुझे चाह नहीं कि नितान्त चिरायु और असुलभ राज-भोग प्राप्त करूँ। मैं अपने को धन्य समझूंगा, अगर उस वेंकटाचल की निर्मल निर्झरिणी में एक मीन होने का सौभाग्य प्राप्त हो।"[1]

"भगवान शेषशायी के पावन पद-कमलों के दर्शनार्थ गीत-रस-लहरी में निमज्जित भ्रमर समूह के झंकार गुञ्जित वेंकटगिरि की वाटिका में एक चंपक कुसुम बन जाऊँ।"[2]

"महापापियों को भी अपनी शरण में लेने वाले कृपा सिन्धु भगवान्! हे अनाद्यन्त श्रेष्ठ महान! वेंकटवासी! मैं तुम्हारे मन्दिर में वह सोपान बन जाऊँ जिस पर चढ़कर अप्सराएँ, देव और भक्तगण तुम्हारे दर्शनार्थ मन्दिर में प्रवेश करते हैं।"[3]

कुलशेखर के उपर्युक्त पदों में निहित उन्हीं भावों को हिन्दी कवि रसखान ने भी व्यक्त किया है—

"मानुष हौं तो वही 'रसखानि'
बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो
चरौं नित नंद की धेनु मंझारन।
पाहन हौं तो वही गिरि को
जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरों करौं
मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन।"

---

1. **पेरूमाळ तिरूमोळि** 4 : 4
2. **वही** 4 : 6
3. **वही** 4 : 8

अनन्याश्रय और भगवान् की भक्तवत्सलता को व्यक्त करने वाले आळवारों के अनेक पद हैं। जब भक्त अनन्य भाव से भगवान् को भजता है, तब वह निश्चिन्त होकर उन पर निर्भर भी हो जाता है। भक्त को भगवान् की भक्तवत्सलता का बड़ा सहारा है। भक्त उनकी कृपा पर पूरा भरोसा रखता है। कुलशेखराळवार ने लिखा है कि भक्त को किस प्रकार भगवान् पर निर्भर रहना चाहिए जिससे वह भक्तवत्सल भगवान् की दया का पात्र हो सकता है। कुलशेखर ने कहा है—

"अत्यधिक क्रोध से शिशु को जन्म देने वाली माता के त्यागने पर भी माता का ही स्मरण कर रोने वाले बच्चे के समान,

"अपने पति के द्वारा बहुत सतानेपर भी, उसका त्याग नहीं कर उसकी सेवा में तत्पर रहने वाली उच्च कुलोत्पन्ना पत्नी के समान,

"आयुधों से चीर-फाड़कर कष्ट देने पर भी भलाई के लिए करने वाले वैद्य के प्रति स्नेह रखने वाले रोगी के समान,

"अत्यधिक प्रकाश और गरमी लगाने पर भी केवल सूरज की किरणों पर ही खिलने वाले कमल के समान,

"सर्वत्र समुद्र ही समुद्र को पाकर, किनारे को देख न सकने के कारण नि·ाश होकर बार-बार जहाज़ के खम्भे पर लौटनेवाले (जहाज़ के) पक्षी के समान, हे भगवान्, मैं तेरी दया पर निर्भर हूँ।"

कुलशेखराळवार ने जितनी उपमाओं से अपने और भगवान् के सम्बन्ध को व्यक्त किया है उनके दर्शन अन्यत्र दुर्लभ हैं। जहाज़ के पक्षी का उदाहरण हिन्दी कवि सूरदास ने भी दिया है।

सूरदास कहते हैं—

"मेरौ मन अनत कहाँ सुख पावै।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी, फिरि जहाज पै आवै।"

इस प्रकार भक्त की सार्वजनीनता, गुरु महिमा, सत्संग, वैराग्य आदि पर आळवारों ने उच्च कोटि के विचार व्यक्त किये हैं। आळवारों के विचारों ने परवर्ती भक्त-कवियों को बहुत ही प्रभावित किया है, विशेष

रूप से कृष्ण-भक्त कवियों को। आळवारों के पदों में महान दार्शनिक विचार भी व्यक्त हुए हैं। वे तत्वतः दार्शनिक नहीं थे। वे तो सन्त, महात्मा और रससिद्ध कवि थे। आळवारों का काव्य भाव और भक्ति-प्रधान है। फिर भी उनके पदों में उच्चकोटि के दार्शनिक विचार, गूढ़ से गूढ़ विचार सरल भाषा में व्यक्त हुए हैं, जिन्होंने परवर्ती अनेक आचार्यों को प्रभावित किया। ऐसा कहना अत्युक्ति नहीं है कि आळवारों के अधिकांश विचार श्री रामानुजाचार्य द्वारा स्वीकृत हुए हैं और उनकी विशिष्टाद्वैतवादी विचार-धारा की आधार-भूमि 'प्रबन्धम्' ही है।

तमिळ् के कंब रामायण और महाभारत

श्री न० वी० राजगोपालन, आगरा

रामायण और महाभारत भारत के सांस्कृतिक महाकाव्य हैं। भारतीय संस्कृति के अनेक युगीन विकास तथा उत्कर्ष को वाल्मीकि और व्यास जैसे क्रान्तदर्शी कवियों ने गीर्वाणवाणी में अमर काव्य बनाकर किया। भारत की कोई ऐसी भाषा नहीं है जिसमें ये दोनों गाथाएँ नहीं गायी गई हों। विभिन्न भाषाओं के व्यवहार करने वाले भारत-वासियों के लिए तब से अब तक ये दोनों प्रबन्ध ऐसी प्रेरणा देते रहे हैं कि क्या पामर क्या पंडित सभी धर्म और अधर्म का विवेक प्राप्त करते रहे हैं और नश्वर जगत् में अविनश्वर सत्य की खोज करके परमानन्द की प्राप्ति का प्रयत्न करते रहे हैं।

कालक्रम की दृष्टि से भारत के विभिन्न भाषा साहित्यों में संस्कृत के पश्चात् तमिल साहित्य का स्थान दूसरा है। लगभग २५०० वर्ष प्राचीन साहित्य अब उपलब्ध है। प्राचीनतम तमिल ग्रन्थ जो अब हमें प्राप्त है 'तोलकाप्पियम' नामक एक लक्षण ग्रन्थ है।

ईसा के पूर्व का जो साहित्य तमिल में प्राप्त हुआ है, वह गीतात्मक है। प्रेम युद्ध आदि विषयों को लेकर अनेक मुक्तकों की रचना हुई है। इन मुक्तकों के अनेक संकलन प्राप्त होते हैं। 'पत्तप्पाट्टु' नामक ग्रन्थ में कुछ वर्णनात्मक तथा घटनाओं से युक्त लघु-प्रबन्ध मिलते हैं, इनमें से सबसे बड़ी कविता ७०० पंक्तियों की है, इसमें मदुरै नगर का वर्णन

किया गया है। इनके होते हुए भी कोई बड़ा प्रबन्ध-काव्य प्राप्त नहीं होता।

तमिल का प्रथम महाकाव्य शिलप्पधिकारम है जिसमें मानव-जीवन के सुख-दुःखात्मक अनुभवों का अत्यन्त मार्मिक तथा रसमय अंकन हुआ है। भाषा शब्दग्रन्थन, अभिव्यक्ति की विशिष्ट सुन्दरता, चरित्र-चित्रण संक्षेप में सब प्रकार की काव्योचित गरिमा से परिपूर्ण होकर तमिल के पंच महाकाव्यों में अग्र स्थान वहन करता है। इसका समय दूसरी शती ईस्वी है। इसी का समकालिक दूसरा 'मणिमेखलै' महाकाव्य भी तमिल साहित्य का एक गौरव ग्रन्थ है। इन दोनों के बहुत पश्चात् नवीं शती ईस्वी के आसपास अन्य कुछ काव्य ग्रन्थों की रचना हुई। तीन महाकाव्यों के नाम परम्परा-प्रसिद्ध है, जिनमें कुण्डलकेशी, एवं वलयापति अब अनुपलब्ध हैं। तीसरा काव्य 'जीवक-चिन्तामणि' उपलब्ध हुआ है। यह अन्तिम महाकाव्य अपने अनेक प्रकार के काव्य-वैशिष्ट्य के कारण अत्यन्त लोकप्रिय हुआ। इसने तमिल काव्य-पद्धति में एक नया परिवर्तन उत्पन्न कर दिया था। यह परिवर्तन इस प्रकार का है कि संस्कृत से स्वतन्त्र जो तमिल काव्य-परम्परा चली आती थी, उसके साथ संस्कृत काव्यशास्त्रीय लक्षणों का सम्मिलन करके एक नवीन प्रबन्ध सृष्टि की गयी।

जीवक चिन्तामणि की रचना एक जैन कवि द्वारा हुई है जिसका उद्देश्य जैनधर्म की ओर जनता को आकृष्ट करना था।

जीवकचिन्तामणि के काव्य-सौन्दर्य तथा उसकी लोकप्रियता को देखकर अन्य धर्मावलम्बियों ने भी अपने धर्म के अनुयायियों के लिए ग्राह्य होने वाले ऐसे ही सुन्दर काव्यों की रचना की। महाकवि कम्बन की अमर कृति 'रामावतारम' है जो कि आज 'कम्ब रामायण' नाम से प्रसिद्ध है।

ईसा की छठी शताब्दी से तमिल प्रदेश में वैष्णव तथा शैव भक्ति का आन्दोलन बलवान रूप में चला। बारह आळवार जिनमें आंडाळ

नामक भक्तिन भी थी, तथा तिरसठ नायनमारों ने क्रमशः वैष्णव एवं शैव भक्ति रस से पूर्ण गीतों से तमिल साहित्य की रत्नराशि को और भी सम्पन्न किया। कम्बन की कृति ने इस भक्ति आन्दोलन को चरम उत्कर्ष पर पहुँचा दिया। याने पामर-पंडित-ग्राह्य काव्य के माध्यम से इस भक्ति को सर्वजन सुलभ कर दिया।

तमिल साहित्य के लिए कम्बन का जन्म एक चमत्कार समझना चाहिए। ये ईस्वी नवीं शताब्दी में रहते थे। कुछ विद्वानों के मत में इनका समय बारहवीं शती था। वर्तमान तंजौर ज़िला इनका जन्म-स्थान था। इनकी जीवनी के बारे में प्रामाणिक रूप में कुछ भी विदित नहीं, कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं। उन कथाओं के द्वारा कम्बन के व्यक्तित्व की ओर अवश्य संकेत मिलता है। कम्बन की कृतियों के कुछ अन्तस्साक्ष्यों के आधार पर भी थोड़ा बहुत जाना जा सकता है। ये 'आदवन' नामक एक पुजारी के पुत्र थे। जन्म से गरीब होने पर भी बचपन से ही विद्याव्यसनी थे। कला और कविता के प्रति अगाध प्रेम छुटपन से ही इनमें लक्षित होता था। कावेरी नदी के किनारे पर इनका बाल्यकाल बीता और वहाँ की प्राकृतिक रमणीयता के प्रति अगाध आकर्षण इनके मन में उत्पन्न हो गया थां। इन्होंने विविध विद्वानों से तमिल साहित्य के सभी प्रसिद्ध ग्रन्थों का अध्ययन किया और कविता-रचना के अभ्यास में भी सफल हुए। इन्होंने संस्कृत साहित्य से भी आवश्यक परिचय प्राप्त कर लिया था।

उस समय कवियों के आश्रयदाता कई नरेश थे। पर कम्बन स्वतन्त्र प्रकृति के व्यक्ति होने के कारण किन्हीं के दरबार में बहुत दिन तक नहीं रह पाये। चोल और चेर राजाओं के यहाँ कुछ समय तक रहे थे।

इन्होने महान् कृति रामायण को 'शडयप्प वल्लल' नामक एक धनी और दानी व्यक्ति को अर्पित किया है। यह उस सज्जन के प्रति कम्बन की कृतज्ञता का प्रकाशन था। उस व्यक्ति ने कम्बन की गरीबी के

समय उनकी बड़ी सहायता की थी। यों कम्बन के साथ 'शडयप्पवल्लल' का नाम भी अमर बन गया है।

कम्बन की और रचनाएँ हैं 'शठकोप-अन्तादि', 'आरेलुपदु', 'शिलै-एलुपदु', और 'सरस्वती-अन्तादि'। कहा जाता है कम्बन ने संस्कृत के स्कन्द-पुराण का अनुवाद भी करने का उपक्रम किया था।

कम्बन की सर्वोत्कृष्ट रचना 'रामायण' है। इस रचना के बारे में एक समालोचक ने लिखा है—कम्बन अपनी इस रचना में (कला-सौन्दर्य की) जिस ऊँचाई पर पहुँचा है, वह साहित्य की उत्तमता का निर्णय करने के लिए मापदण्ड बनी है।

कम्बन का कृति में एक ओर तमिल साहित्य-परम्पराओं का चरम उत्कर्ष पर पहुँचा हुआ रूप दृष्टिगत होता है, दूसरी ओर संस्कृत काव्य-पद्धतियों के समन्वय से उत्पन्न जीवकचिन्तामणि की जैसी काव्य-प्रौढिमा दृष्टिगत होती है, और साथ ही रामचरित के अवतारी रूप के साथ परिपूर्ण मानव का दृश्य भी उपस्थित किया गया है।

तमिल अंग्रेज़ी हिन्दी आदि के अच्छे विद्वान् श्री वी० वी० एस० अय्यर ने लिखा है—यह 'कम्बरामायण' विश्व साहित्य में उत्तम कृति हैं 'इलियट' और 'पैरडाइज़लास्ट' और महाभारत से ही नहीं वरन् मूल काव्य वाल्मीकि रामायण की तुलना में भी यह अधिक सुन्दर है। यह केवल आदरातिरेक से कही हुई उक्ति नहीं है वरन् अनेक वर्षो तक किये गए गहन अध्ययन से धीरे-धीरे पुष्ट हुआ विचार है।

आदिकवि वाल्मीकि अपने राष्ट्रीय महाकाव्य को पहले ही लिख चुके थे। उन्होंने अपने काव्य को 'रामचरित', 'रावणवध' और 'सीता का पवित्र चरित्र' आदि नामों से अभिहित किया। इस काव्य का अनु-वाद कई महाकवियों ने भारत की अन्य भाषाओं में भी किया। प्रत्येक अनुवाद का अपना निजी महत्त्व है और विशिष्ट सौन्दर्य है जिससे वह लोकादर प्राप्त करता है। इन सब अनुवादों का इतिवृत मूलग्रन्थ

वाल्मीकि-रामायण का ही है, किन्तु इनमें एक विलक्षण नवीनता भी दृष्टिगत होती है।

कम्बन ने अपनी रामायण में घटनाओं और प्रसंगों का वही क्रम रखा है, जो वाल्मीकि की कृति में है। मुख्यपात्र राम, सीता, दशरथ, लक्ष्मण, हनुमान, विभीषण, सुग्रीव, रावण, जनक आदि का जो-जो व्यक्तित्व कम्बन की कृति में परिस्फुट हुआ है, उसके निर्माण में मूल-ग्रन्थ से बहुत-कुछ सामग्री ली गयी है। फिर भी कम्बन की मौलिकता उसकी वर्णना-शैली में है। प्रत्येक घटना के चित्रण में, परिस्थितियों को उपस्थित करने में, पात्रों के सम्भाषण में, प्राकृतिक दृश्यों के उपस्थापन में एवं पात्रों की मनोभावना की अभिव्यक्ति करने में कम्बन ने पर्याप्त मौलिकता दिखायी है। वाल्मीकि के सम्मुख यह प्रश्न था कि लोकोत्तर आदर्श पुरुष कौन है? उन्होंने 'पुरुषोत्तम' का खोज की। नारद तथा ब्रह्मा से उन्हें ऐसे पुरुषोत्तम का परिचय प्राप्त हुआ। रामचरित्र का गान कर वाल्मीकि ने संसार के सम्मुख 'पुरुष-पुरातन' का ही नहीं, अपितु एक 'महामानव' का चित्र उपस्थित किया था। कम्बन के युग तक आते-आते वही आदर्श नर या महामानव परमात्मा के अवतार के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका था। यह विश्वास दृढ़ हो गया कि केवल 'राम' नाम का जप ही अपवर्ग प्रदान कर सकता है। वैष्णव-भक्ति का ज्यों-ज्यों समाज में आदर बढ़ा, त्यों-त्यों राम के प्रति आस्था अधिकाधिक बद्धमूल होती गयी। कम्बन ने समयुगीन भावनाओं को भली-भाँति पहचाना था। जनता की भक्ति-पूत भावना के कारण रामचन्द्र के चरित्र में जो महानता और परम-परिपूर्णत्व उत्पन्न हो गये थे, उन्हें इस कुशल कवि ने अपने काव्य के द्वारा परिपुष्ट कर दिया। यह कोई साधारण कार्य नहीं था। केवल यह करते रहने से कि "राम परमात्मा है", अथवा स्थान-स्थान पर देवी विशेषणों को जोड़ते रहने से, यह ज्ञान हो सकता है कि राम परमात्मा के अवतार हैं, किन्तु उससे पाठकों पर राम के चरित्र का मानवोचित प्रभाव पड़ना सम्भव नहीं है, रस-पोषण के मार्ग में भी इस प्रकार की

पुनरुक्ति से बाधा पड़ने की संभावना है । राम के दैवीतत्व का साहित्यिक या कलात्मक प्रभाव उत्पन्न करना, पूरे काव्य में सब प्रसंगों के मध्य उस दैवीतत्व का निर्वाह करना एवं साथ ही मानव-जीवन की विविध सुख-दुखात्मक परिस्थितियों के साथ उस दैवीतत्व की संगति बिठाना—यह एक अनन्य सुलभ प्रतिभावान् महाकवि का ही कार्य है । तुलसी और कम्बन—दोनों ऐसे ही महाकवि हैं, किन्तु कम्बन में कुछ ऐसी विशेषता भी है, जो तुलसी में नहीं है ।

गोस्वामी जी ने शिव-पार्वती के प्रसंग की उद्भावना करके राम की पारमात्मिकता निरूपण किया । कम्बन ने ऐसे किसी प्रसंग की उद्भावना नहीं की है । कम्बन की अपनी एक शैली है । रामचन्द्र जब माया-मृग के पीछे दौड़ रहे हैं कम्बन कहते हैं कि राम "अपना वह पग आगे बढ़ा रहे हैं जिससे उन्होंने तीनों लोकों को नापा था ।"

मिथिला में, धनुर्भग होने के पूर्व रामचन्द्र विश्वामित्र के संग वीथि में जा रहे हैं । । तब कन्या-प्रासाद पर सीता खड़ी हैं । सीता और राम के नयन क्षण-भर के लिए मिलते हैं । इस सन्दर्शन से दोनों के मन परस्पर के प्रति आकृष्ट हुए । कम्बन कहते हैं—"अतिसुन्दरी सीता एवं अकलंक प्रभु राम, दोनों इस परस्पर सन्दर्शन से दो शरीर किन्तु एक-प्राण हो गये । विशाल क्षीरसागर में आदिशेष के पर्यंक पर साथ रहने वाले वे दोनों एक-दूसरे से वियुक्त हो गये थे और अब पुनः उनका परस्पर समागम हो रहा है; तो फिर इनके प्रेम का वर्णन क्या आवश्यक है ?"

रामचन्द्र को राज्य देने का निर्णय जब दशरथ करते हैं, तब वाल्मीकि ने लिखा है—राम बड़ी प्रसन्नता से अपनी माता कौशल्या के निकट पहुँचते हैं और उन्हें यह समाचार देते हैं । इस समय हुए लक्ष्मण और राम के सम्भाषण में भी राम का उल्लास प्रकट होता है । किन्तु कम्बन ने इस प्रसंग में रामचन्द्र के गम्भीर रहने की बात कही है । कम्बन के राम शालीनता, उदारता, गम्भीरता और धीरता की मूर्ति

हैं। उनकी इस उदारता एवं धीरता में किसी भी प्रसंग में कुछ कमी उत्पन्न नहीं हुई है।

कैकेयी ने जब राम से यह कहा कि तुम्हें राज्य छोड़कर अरण्य में जाना है, और वहाँ चौदह बरस व्यतीत करने हैं, तब किसी के लिए अवर्णनीय गुणों वाले रामचन्द्र के सुन्दर मुख-मंडल की उस समय की जो शोभा थी, उसका वर्णन करना हम जैसे लोगों के लिए सुलभ नहीं है। उस मुख-शोभा ने, जो सदा कमल की सुषमा-जैसी रहती थी, कैकेयी के ये वचन सुनकर सद्योविकसित अरुण कमल को भी परास्त कर दिया।

"रामचन्द्र पहले विशुद्ध ज्ञानवाले चक्रवर्ती की आज्ञा का उल्लंघन होने से डरकर ही इस अन्धकारमय संसार के राज्य के दुःख को स्वीकार करने के लिए सन्नद्ध हुए थे। अब वे इस भार से मुक्त होकर ऐसे लगे, जैसे कोई वृषभ चक्रवाले शकट के स्वामी के द्वारा जोता गया हो, पर किसी करुणामय व्यक्ति के द्वारा बन्धन से छुड़ा दिया गया हो।"

शूर्पणखा के प्रसंग में राम का चरित्र-चित्रण अत्यन्त मनोहर एवं मौलिक बना है। राम, जो कभी विनोद में भी किसी का अपमान नहीं करते, शूर्पणखा-जैसी दुश्चरित्र स्त्री के भी स्त्रीत्व का आदर करते हैं। शूर्पणखा के साथ उनका व्यवहार धीरोदात्त नायक के अनुकूल है। कम्बन की रचना में राम शूर्पणखा के नाक-कान काटने का निमित्त नहीं बनते।

पहले दिन शूर्पणखा राम से मिलती है, उनसे तिरस्कृत होकर लौटती है और रात-भर विरह-पीडा से तड़पती है। प्रातः होते ही राम जब नित्यकर्म का अनुष्ठान करने के लिए गये थे, सीता का हरण करने के लिए शूर्पणखा उनके आश्रम के निकट आती है। उसे यह पता नहीं था कि राम का एक भाई लक्ष्मण भी वहीं रहता है। उस समय लक्ष्मण अपने आश्रम में रहते हुए सीताजी के आवास की रक्षा कर रहे हैं। शूर्पणखा को छिप-छिपकर भीतर जाते देखकर वे तुरन्त उसे पकड़ लेते हैं और उसके नाक-कान काटकर उसे दण्ड देते हैं। इतने में राम

संध्यादि से निवृत्त होकर आते हैं। यह सारा प्रसंग अत्यन्त नाटकीयता से परिपूर्ण है।

इस प्रसंग के कुछ नमूने देखिये—

शूर्पणखा का रूप ऐसा है कि—

ताम्र प्रवाल से लाल अलक भार।
पाप-समुदाय हुआ ज्यों साकार।
काल-वर्ण यों कि राहु हो सभीत।
शक्तिवान यों कि विश्व करे निहत।

वह स्वैर संचारिणी एक दिन राम के आश्रम में आ पहुँची। एकांत में शिला पर आसीन राम की भव्य-मूर्ति को देखकर मुग्ध हो खड़ी रहती है। वह सोचती है कि यह कौन है ?—

"मन्मथ नहीं है यह, वह तो अनंग है।
इन्द्र भी नहीं यह, वह सहस्रनेत्र है।
कैलास-पति नहीं, वह ललाट-नेत्र है।
कमल अब होगा क्या ? नहीं चतुर्मुख है।
इस धनुर्धारी के उन्नत स्कंधों से
समता उपलमय शैल पावे कहाँ से ?
इन्द्रनील शैल कहाँ कोई बना ?
महामेरु पर्वत भी स्वर्णमय है बना।
कमल-संघ से घिरे उन्नत पर्वत से
उत्तम पुरुष-रत्न वृक्ष के विशाल से
होकर समंचित सुन्दरता पान करे
ये मेरे नयन हा। दीर्घ नहीं इतने।
अंगद कांतिपूर्ण है वदन बिंब यह।
कैसे समान बने विकसित शतदल वह।
राका शशांक भी समान न हो सके।
वराकी कैसे निज कलंक दूर सके ?'

इस प्रकार के अनेक विचार करते-करते वह निश्चय करती है कि इस सुन्दर का सांगत्य प्राप्त करने से ही मेरा जीवन सफल होगा। तब उसके हृदय की लज्जा इस प्रकार मिटी कि—

"दीन निर्धनों को कुछ कान न देनेवाले के यश-सी।
उसके उर की लज्जा उस क्षण धीरे-धीरे घटी मिटी।।

उसने सुन्दर रूप धारण किया और राम की ओर चल पड़ी—

"अलक्तक अलंकृत अरुण पल्लव मृदुल,
स्वर्णमय लघु, मंजु मन-हरण पद-युगल,
मधुरवाणी पिकी कलापी हंसिनी।
उज्ज्वल लता वनी चली वह कुहकिनी।।

× × ×

वदन पर दो चपल कटारें तड़पतीं,
हरिण की नयन-गति मोर की सुछवि से
चली आयी मधुर मंजु मद-गति से।
करधनी किंकिणी पायलों की झनक,
पुष्पमाला सहित भ्रमर कुल की भनक,
दूर से ही मधुर सूचना दे रहीं—
मृदुगति नितंबिनी वह चली आ रही।
सुघट वक्षोजयुग भार से लचकती
कटि-लता को लिये कुछ-कुछ झुकी हुई
सुन्दरी आयी वह अमृत की धार सी।"

राम के दृष्टिपथ में वह आ पड़ी। राम उसके अनुपम सौन्दर्य को देखकर विस्मयाविष्ट होते हैं और सोचते कि कौन देवी आ रही है। 'वेद रक्षक' प्रभु उसका सादर स्वागत करते हैं और कुशल प्रश्न करते है।

शूर्पणखा के साथ रामचन्द्र का व्यवहार अत्यन्त शालीन है। शूर्पणखा उनसे विवाह का प्रस्ताव करती है। अपने कुल की गरिमा का उल्लेख रती है—

पुरांतक भक्त रावण की बहिन मैं ।
त्रिजग-पति विख्यात जो लंकेश है,
ज्येष्ठ मेरा, कामवल्ली नाम है ।

फिर अपने चरित्र का परिचय यों देती है ।

अधम राक्षस पाप-कर्मा हैं अहो
न मैं रहती कभी दुर्जन संग में
किन्तु वसती यहीं मुनिगण वास में ।

कम्बन के कवि-कौशल का यह सारा प्रसंग ही ज्वलन्त उदाहरण है। शूर्पणखा के वचन उसके चरित्र को प्रकट करने वाले हैं। वह राम से कहती है :

कुलीना निज प्रेम को कहती नहीं ।
हाय ! कोई सखी मेरी है नहीं ।
मदन के शरपुंज से मैं त्रस्त हूँ ।
त्राहि ! हे सुन्दर ! तुम्हारी शरण हूँ ।

इस भाव के अनुकूल उसके अनुभवों का चित्र देखिये—

नयन उसके मीन थे। करबाल थे ।
दीर्घ चल चल लौट पड़ते घूमते ।
जगमगाते तड़पते बहुरूप थे ।
पीन कुच उमड़े उभार भरे हुए ।

रामचन्द्र यह सोचकर कि यह निर्लज्ज स्त्री है, मौन रह जाते हैं। वाल्मीकि आदि अन्य कवियों ने इस प्रसंग में हास्य रस का पोषण किया है, हास्य का आलम्बन बनती है शूर्पणखा। किन्तु कम्बन का चित्रण नितान्त भिन्न है। इस कवि की दृष्टि में रामचन्द्र के द्वारा ऐसा हास करवाना ठीक नहीं था। जब पुनः शूर्पणखा राम को यह समझाती है कि

हे मनोहर रूप ! मैं रहती यहीं ।
तपोरत इन मुनिजनों के साथ ही ।
स्त्रीत्व मम अकलंक पर यह व्यर्थ ही

क्षीण होता रहा हा ! दुर्भाग्य से
किन्तु तव दर्शन हुआ अब भाग्य से ।।

तब

धर्मरूपी राम के मन में हुआ
नीच है यह ! नहीं सोचा-नीति क्या ?
प्रकट में बोले कि क्या यह न्याय है ?
ब्राह्मणी तुम और क्षत्रिय-पुत्र मैं ।

शूर्पणखा इस प्रश्न का भी तर्कपूर्ण उत्तर देकर समझाती है। इसी समय आश्रम के भीतर से सीताजी का आगमन होता है। उस प्रसंग में कम्बन ने कुछ हास्य उत्पन्न किया है। यह न जानकर कि सीताजी राम की पत्नी है, शूर्पणखा राम को यह चेतावनी देती है कि (सीताजी के रूप में) कोई राक्षसी आयी है, अतः उन्हें उससे सावधान रहना चाहिए। शूर्पणखा के वास्तविक स्वरूप का पता राम को लग जाता है। तब शूर्पणखा सीताजी पर झपटती है, रामचन्द्र सीताजी की रक्षा करते हुए शूर्पणखा को यह कहकर भगा देते हैं कि अगर मेरा भाई तुम्हें देख लेगा तो तुम्हारा भला नहीं होगा, अतः भागो।

कवि ने बड़े नाटकीय ढंग मे इसका चित्र उपस्थित किया है—

सीताजी का रूप —
देव मर्त्य पाताल निवासी स्वयं कमलभव
जिसको नेत्र ज्योति सदृश ही पूज्य निरखते ।
आयी देवी सीता स्त्री कुल रत्न सदृश वह ।
देवों के वर-प्रभाव से तब पर्णकुटी से ।

शूर्पणखा ने उसे देखा—

मांसगंध से भरे बिल सदृश मुँह वाली ने।
क्रूर कलंकिन निठुर हृदय उस अविवेकी ने
देखा उसको तीन भुवन के रक्षः कुल के
कानन के विध्वंसनकारी अनल-ज्वाल को ।

देखकर

देख स्तब्ध हो खड़ी रही राक्षसी क्षण भर
रही सोचती कौन सुन्दरी अनुपम है यह ?
भिक्षु मनुष्य नहीं लाया होगा इस वन में,
सुरबाला कोई है, या अरविंद वासिनी।

जब शूर्पणखा ने राम से यह कहा कि यह (सीता) कोई वंचिका राक्षसी है, तुम इसके घात से बचो, मुझे भी बचाओ—तब

बात सुन राक्षसी की प्रभु सविनोद बोले
सुमुखि ! तुम्हारी मति स्वच्छ अब ज्ञात है।
कोई यह आयी-वर सुन्दरता मूर्ति बन
कपट राक्षसी अहा। सत्य तव बात है।
देखकर भली भाँति इसे, सावधान रह
पहचान लो तो सही, कौन यह घात है।
कहकर मंदहास करते प्रभु थे खड़े
शूर्पणखा खड़ी रही, सोचती क्या बात है।

तभी अचानक ऐसा हुआ कि—

अमृत धारा समान अरुंधती तुल्य उस
पतिव्रता देवी पर झपट क्रूरा चली।
भीत हुई कम्पमान कटि को बुखाती हुई
मृदुल चरण रख देवी दौड़ती चली,
प्रवाल की लता जैसी विघूर्णमान होकर
रघुवर भुजामध्य छिपती बच चली
राक्षसी अगर मेरे अनुज से बचना है
भागो झट सुनकर राक्षसी भाग चली।

रामायण की प्रत्येक घटना के संविधान में कम्बन ने बड़ी कुशलता दिखायी है।

प्रत्येक पात्र की हृदयगत सूक्ष्म भावनाओं को पूरा-पूरा समझने की

शक्ति कम्बन में है। उनके कथन में ऐसा लगता है जैसे पात्र स्वयं बोल रहे हैं। वर्णनात्मकता के अधिक होने पर भी उपर्युक्त कारण से एवं घटनाओं को उपस्थित करने में कम्बन की दिखायी गयी विलक्षण चातुरी से काव्य में सर्वत्र नाटकीयता के दर्शन होते हैं। अतएव तमिल के विद्वान इसे 'कम्बनाटकम' कहते हैं।

कम्बरामायण में रावण का चरित्र, तुलसी और वाल्मीकि की कृतियों में वर्णित रावण से अत्यन्त विलक्षण बना है। रावण महान वीर है, शिवभक्त है। उसे अपनी प्रजा का आदर प्राप्त है। रामचन्द्र के साथ वह सोलह दिन तक युद्ध करता है। प्रत्येक दिन के युद्ध के उपरान्त वह माल्यवान को युद्ध का वर्णन सुनाता है। उस समय राम की वीरता का जो वर्णन वह देता है उससे रावण में उदारता भी कुछ-कुछ परिलक्षित होती है। किन्तु उसके चरित्रगत एक भारी कमी परनारी-आसक्ति को कम्बन ने पुष्ट कर दिखाया है। यों यह प्रकट किया है कि कोई चाहे कितना भी पराक्रमी और वैभव-सम्पन्न क्यों न हो, यदि उसमें कामुकता है तो उस दुर्गुण से ही उसका अध:पतन होता है।

कम्बन का प्रकृति-निरीक्षण अतिसूक्ष्म है। अयोध्या, मिथिला आदि प्रदेशों के वर्णनों में दक्षिण भारत की प्राकृतिक संपदा का ही चित्र उपस्थित हुआ है। कोशल देश के वर्णन में कवि ने लिखा है—"लहलहाते खेतों और सुन्दर वृक्षों का वह प्रदेश भी कैसा गंभीर है। मानों कोई राजा दरबार में सिंहासन पर आसीन है और उसके सामने मोर नाच रहे हैं। कमल-लतिकाएँ दीप लिये खड़ी हैं। मेघ मर्दल बजाते हैं। भ्रमर गुंजार करके मधुर वीणा का स्वर सुनाते हैं। नदी के जल पर उठ-उठकर गिरनेवाली चंचल लहरें यवनिका का दृश्य उपस्थित करती हैं और कुवलय पुष्पों का समुदाय अपने विशाल नयनों (पंखुड़ियों) को खोलकर इस सुमधुर दृश्य को मंत्र-मुग्ध होकर देखता खड़ा रहता है।

और "मीन के समान नेत्रवाली कृषक-बालाओं के पीछे-पीछे राजहंसिनियाँ उनकी चाल का अनुकरण करती हुई भटक जाती हैं तो कमल

की सेज पर सोये हुए अपने बच्चों को भी भूल जाती हैं। हंस-शिशु निद्रा से उठकर भूख से चिल्ला उठते हैं। उन्हें देखकर भैंसों को अपने बछड़ों की याद आ जाती है और उनके थनों से दूध स्रवित होने लगता है। उस दूध को पीकर हंस-बालक तृप्त हो जाते हैं। फिर हरे-हरे मेंढक लोरियाँ गाकर उन्हें सुला देते हैं।"

रामचन्द्र के वनवास के प्रसंग में कवि को खुलकर खेलने का पर्याप्त अवसर मिलता है, जिसका उपयोग करने से वह कभी चूका नहीं है। प्रकृति के जितने चित्र कम्बन की रचना में मिलते हैं, सब सजीव हैं, यथार्थ हैं, और पूर्ण हैं। केवल कल्पना-प्रसूत अतिरंजन उनमें नहीं हैं। प्रकृति की छोटी-से-छोटी वस्तु भी कवि की दृष्टि से परे नहीं है। लाल-धान, बाँस से मिलने वाला एक धान, नाना प्रकार के शाक, फल, पुष्प, उनके रंग और उनकी गंध तक का ध्यान कवि को रहता है। आरविक-जातियों-किरात, कोल, शबर, आदि का भी अत्यन्त सहानुभूतिमय चित्रण कवि ने किया है। अजगर, हाथी, व्याघ्र, सिंह, शरभ, साही, रीछ आदि जानवर, मेघावृत पर्वत, कलरव करती नदियाँ, तोते, मोर, कोयल, कारं-डव, चातक आदि पक्षी, प्रकृति की प्रत्येक वस्तु अपनी सम्पूर्ण सुन्दरता को लिये हुए कम्बन के चित्र में शोभायमान होती है।

सूर्य-चन्द्र के उदयास्तों के बीसियों चित्र कम्बन ने खींचे हैं, प्रत्येक दूसरे चित्रों से विलक्षण है, प्रसंगोचित है और सांकेतिक है। रौद्र, वीर, शृंगार, भयानक और बीभत्स—सब की छटा इन सूर्य-चन्द्र के दृश्यों में देख सकते हैं। कम्बन के उदयास्त-वर्णन का पृथक अध्ययन मात्र अत्यन्त उपयोगी कार्य है।

प्रत्येक पात्र की हृदयगत सूक्ष्म भावनाओं को पूरा-पूरा समझने की शक्ति कम्बन में है। उसके कथन में ऐसा लगता है जैसे पात्र स्वयं बोल रहे हैं। काव्य में वर्णनात्मकता के अधिक होने पर भी, उपर्युक्त कारण से, एवं घटनाओं को उपस्थित करने में कम्बन की दिखायी गयी विलक्षण

चातुरी से, सर्वत्र नाटकीयता के दर्शन होते हैं। अतएव तमिल के विद्वान इसे 'कम्ब नाटकम' कहा करते हैं।

कम्ब रामायण तमिल साहित्य की अमूल्य निधि है, उसका सांस्कृतिक महत्त्व अपार और अनुपम है। महाकवि कम्बन का नाम-मात्र, तमिल साहित्य के किसी भी रसग्राही पाठक के मन को उमंगों से भर देनेवाला है। कम्बन की और उसकी अनुपम रचना की जो महत्ता है उसका यही प्रमाण हो सकता है कि दिनोंदिन 'कम्बरामायणम' का प्रचार बढ़ता जा रहा है—पंडितों, कवियों, रसिक पाठकों, विद्यार्थियों, और भक्तों—सब प्रकार के व्यक्तियों में यहाँ तक कि जो भगवान के अस्तित्व को नहीं मानते हैं, जिनके लिए रामचन्द्र को भगवान मानना गवारा नही है, वे भी कम्वन के कवित्व-सौंदर्य से मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते।

कम्बकृत रामायण के पश्चात् अधिक लोकप्रिय प्रबन्ध है 'महाभारत'। अब जो महाभारत तमिल प्रदेश में प्रसिद्ध है वह सोलहवीं शती ईस्वी की रचना है। इसके रचयिता है 'विल्लिपुत्तूरार'—अर्थात् विल्लिपुत्तूर नामक गाँव के निवासी महाकवि। ये कविवर इसी नाम से विख्यात हैं। ये ब्राह्मण थे और विशिष्टाद्वैत वेदान्त के विद्वान थे।

ऐसे प्रमाण उपलब्ध हुए हैं कि लगभग पांचवीं शती ईस्वी में पेरुन्देवनार नामक कवि ने एक महाभारत की रचना की थी। किन्तु वह अब अप्राप्त है।

विल्लिपुत्तुरार के महाभारत में अब दस पर्व ही उपलब्ध है। ऐसा लगता है कि कवि ने शेष आठ पर्वों का प्रणयन नहीं किया। इस कमी को पूर्ण करते हुए एक अन्य कवि ने आज से लगभग १५० वर्ष पूर्व महाभारत का प्रणयन किया, यह नवीन कृति विल्लिपुत्तूरार की रचना के अनुकरण पर चली है, और उस ग्रन्थ की छाया इसमें सर्वत्र दिखायी पड़ती है।

विल्लिपुत्तूरार कृत महाभारत काव्य सौन्दर्य में उत्तम कोटि का ग्रंथ है। कम्बरामायण के जैसे ही यह भी वर्णवृत्तों में लिखा गया है। भाषा

इसकी अपेक्षाकृत आधुनिक है, अतः साधारण तमिल ज्ञाता भी सरलता से भाव को हृदयंगम कर सकता है। विभिन्न घटनाओं के वर्णन के अनुकूल कोमल कठोर तथा प्रवाहमय भाषा-शैली का व्यवहार—इस काव्य की विशिष्टता है। घटनाओं के चित्रण में तमिल प्रदेश एवं परम्परा का रंग पर्याप्त दिखायी पड़ता है। राजदरबार, राजकाज के काम, नीति, धर्म-उपदेश आदि बातों में विशेष सुन्दरता देखी जाती है। किन्तु कथानक में मूल का ही सर्वत्र अनुसरण किया गया है। कवि का प्रधान उद्देश्य महाभारत की कहानी सुनाना है। संस्कृत महाभारत के द्वारा जिस प्रकार भारतीय संस्कृति अथवा धर्म का प्रचार सम्भव हुआ, इसी प्रकार वह उद्देश्य तमिल के इस महाभारत के द्वारा भी सम्भव हुआ है। आज भी तमिल प्रदेश के गाँवों मे 'द्रौपदी' के मन्दिर विद्यमान हैं। (तंजौर जिले के गाँवों में अधिक सख्या में है) इनमें द्रौपदी की पूजा होती है। वहाँ वर्ष में एक-दो महीने नित्यप्रति महाभारत का पाठ होता है जिसे सुनने के लिए गाँव की जनता एकत्रित होती है। तमिल साहित्य की विभूति बने हुए अनेक उत्तम काव्य प्रख्यात है। उनमें तिरुवल्लुवर-विरचित 'तिरुक्कुरल', तथा आलवार नायनमार विरचित भक्ति गीतों के साथ कम्बरामायण तथा विल्लिपुत्तूर भारत का भी आदरभरित स्थान है।
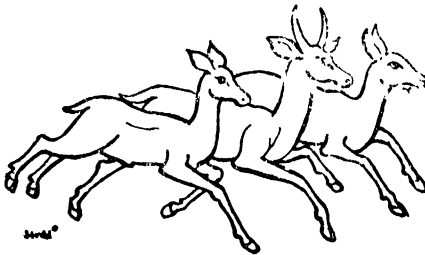
तमिल का आधुनिक काव्य-साहित्य

श्री पी० रामचन्द्रन् 'उमाचन्द्रन'

तमिल के आधुनिक पद्य साहित्य के मार्गदर्शक कौन रहे ?—अगर यह प्रश्न पूछा जाय तो तुरन्त उत्तर मिलेगा—राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती। हाँ, श्री सुब्रह्मण्य भारती को सभी साहित्यप्रेमी तमिलनाड के ही नही, सारे राष्ट्र के कवि मानते है। भारतीजी के कुछ उत्साही भक्त ऐसे भी हैं जो विश्वकवियों की श्रेणी में उनकी गणना होने देखना चाहते हैं। और उनकी कामना निरर्थक भी नहीं, दुस्साध्य भी नही। अच्छा, जो भी हो, तमिल के आधुनिक पद्य-साहित्य के विकास के प्रधान प्रेरक और साधक के रूप मे तमिल भाषियों के दिलों में भारतीजी ने जो स्थान प्राप्त कर लिया है उसके बारे में कोई मतभेद नही हो सकता।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या भारतीजी के पहले आधुनिक पद्य साहित्य का तमिल में बिलकुल ही अभाव था। ऐसी बात नहीं थी। नये ढंग पर पद्यरचना करने की प्रवृत्ति भारतीजी के कई वर्ष पहले ही शुरू हुई थी किन्तु इस प्रवृत्ति को जन-जागरण की पृष्ठभूमि में स्थूल और शाश्वत रूप देकर पूर्ण रूप से उसका विकास करने का श्रेय भारतीजी को ही था। इससे स्पष्ट होता है कि हम भारतीजी को तमिल के आधुनिक पद्य-साहित्य का केन्द्रबिन्दु मान सकते है। इस आधार पर मैं आज अपने भाषण के विषय का विभाजन तीन श्रेणियों में कर लेना

चाहता हूँ। भारतीजी के पूर्व का पद्य साहित्य, भारती साहित्य, भारतीजी के पश्चात् का पद्य साहित्य।

सभी पद्य-साहित्य कविता नहीं कहला सकता, यद्यपि कविता पद्य-साहित्य के अन्तर्गत आती है। पद्यरचना अलग है, कविता अलग है। सभी पद्यकार कवि नहीं होते, यद्यपि कवि को पद्य-रचना का सहारा लेना पड़ता है।

भारतीजी के पूर्व के पद्यसाहित्य पर जब हम दृष्टि दौड़ाते हैं तो देखते हैं कि पद्य रचना अधिक है और कविता कम। किसी रईस की स्तुति में दो-एक पद्य रचकर उसकी फेंकी हुई टुकड़ियों पर मरमिटना ही वे अपने जीवन की सार्थकता समझते थे। शोचनीय बात यह थी कि ऐसे पद्य श्लेष अलंकार को छोड़कर और किसी भी तरह के प्रतिभा-चमत्कार से वंचित ही रहते थे। अधिकतर पद्यकार तुकबन्दी के पुजारी थे और कहीं भी श्लेष का चमत्कार दिखा सके तो अपने-आपको धन्य समझते थे। मगर ऐसे श्लेषोपासकों की श्रेणी में भी एक चमकता हुआ रत्न पाया जाता है जिसका नाम है कालमेहम। कवि कालमेहम का यह नाम इसलिए पड़ा कि वे आधुनिक कवि थे और इतनी अधिकता और तेजी से पद्यरचना कर सकते थे जैसे बरसात के काले-बादल पानी बरसा रहे हों। श्लेष-कवियों की श्रेणी में कालमेहम सबसे लोकप्रिय थे, सच पूछें तो अन्य श्लेष कवियों से ये बिलकुल भिन्न थे। इनमें भाषा और छन्द को अपनी इच्छानुसार नचाने की असीम प्रतिभा थी। किसी भी कठिन समस्या को लेकर पद्य रचने की स्फूर्ति उनके जैसे और किसी में नहीं थी यद्यपि वे अपनी प्रतिभा के माध्यम के रूप में श्लेष अलंकार का ही सहारा लेते थे, फिर भी उनका श्लेष सिर्फ शब्द-चमत्कार या अर्थ-चमत्कार तक सीमित नहीं था। उसमें मन को रिझानेवाली व्यंग्योक्ति और दिल को बहलानेवाला हास्य विनोद भरपूर पाया जाता है। काल-मेहम स्वच्छन्द प्रकृति के स्वाभिमानी व्यक्ति थे। इसलिए उनके पद्यों में उनकी स्वच्छन्दता, सच्ची मानवता और सहृदयता की झलक पाकर

हमारा मन असीम आह्लाद से भर जाता है। कवि कालमेहम मूलतः हास्यकवि थे। श्लेष अलंकार उनके हास्य और व्यंग्य का सहारा-मात्र था। चूंकि वे बड़े ही लोकप्रिय थे, इसलिए उनके कई पद्यों के साथ उनके जीवन की घटनाओं का सम्बन्ध जोड़कर कई दंत-कथाएँ प्रचलित हैं।

भारतीजी के पूर्व के पद्यसाहित्य में कालमेहम की रचनाओं का विशिष्ट स्थान है और वे जनता के हृदय को पहचानने वाले सहृदय कवि थे। इनका जीवनकाल अठारहवीं शताब्दी के मध्य के आसपास माना जाता है। अठारहवीं शताब्दी में ही, जनता से सम्पर्क रखनेवाले कुछ धार्मिक कवियों का उल्लेख करना भी यहाँ आवश्यक है, जिनमें पहले थे तायुमानवर जिनके पद्य दार्शनिकता और आध्यात्मिकता के आधार पर रचे गये। तायुमानवर समदर्शी और विश्वप्रेम के पुजारी थे और विशुद्ध निराकार ब्रह्म के उपासक थे। अपने आध्यात्मिक विचारों को जनता तक पहुँचाने के लिए ही उन्होंने सरल भाषा में अपने पद्य रचे थे। उनके पद्य बड़े ही लोकप्रिय है और अब भी बड़े चाव से और भक्ति से गाये जाते हैं।

इसी जमाने में एक मुस्लिम कवि और एक ईसाई कवि ने अपने-अपने धर्म के प्रवर्तकों के जीवनचरित के रूप में काव्यरचना की। पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब का जीवनचरित शीरापुराणम् नामक काव्य में वर्णित है, जिसके रचयिता उमरु पुलवर तमिलभाषी मुस्लिम संत थे। शीरापुराणम् अपने ढंग का निराला काव्य है। ईसाई कवि वीरमामुनि असल में विलायती पादरी थे जिनका असली नाम फादर बेस्की था। फिर भी उन्होंने तमिल भाषा को इतने अच्छे ढंग से सीख लिया कि उस भाषा में सरस और सरल कविता रचने की भी योग्यता उन्होंने प्राप्त कर ली। उनके रचे हुए काव्य का नाम है 'तेंबावणि'—मधुर पद्यों की अंजलि—जिसमें ईसा मसीह के जीवन की मुख्य घटनाओं का सुन्दर वर्णन भक्ति-भरे कोमल पद्यों के द्वारा किया गया है।

लगभग इसी समय एक नये ही ढंग की पद्य-रचना द्वारा जन-साधारण के बीच में ही नहीं, धनीमानी और विद्वान व्यक्तियों के बीच में भी लोकप्रियता प्राप्त करने का श्रेय अरुणाचल कवि को था, जिनके कंब-रामायण के आधार पर रचे गये रामनाटक ने तमिलनाड के कोने-कोने में धूम मचा दी। अरुणाचल कवि तमिलभाषा के बड़े विद्वान थे और अपने मित्र शीर्कालि मठ के अध्यक्ष के अनुरोध पर शीर्कालि में ही ठहर कर साहित्य सेवा करते थे। रामकथा को गेय-काव्य के रूप में लिखने की प्रेरणा उनको उनके दो शिष्यों से मिली थी, जो संगीतशास्त्र के बड़े विद्वान थे और तमिल भाषा का अध्ययन करने के लिए उनके पास आये थे। उन शिष्यों के अनुरोध पर उन्होंने रामकथा को सरल छन्दों और कीर्तनों के रूप में लिख देने का निश्चय कर लिया। इन कीर्तनों के राग ताल आदि निश्चित करने में कवि को उनके दो शिष्यों से बड़ी मदद मिली। एक तो रामकथा थी, दूसरे मधुर गीतों के रूप में बनी थी। तीसरे भाषा घरेलू उपमाओं और लोकोक्तियों से भरी इतनी सरल थी कि क्या स्त्रियाँ, क्या बच्चे सभी श्रेणियों के लोग आसानी से समझ सकते थे। इस कारण अरुणाचल के इस गेयकाव्य का प्रचार बहुत जल्दी तमिल-नाड के कोने-कोने में हो गया तो कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। आज-कल भी इस रामकथा के कई पद्य संगीत सभाओं में ही नही, घरों में भी गाये जाते हैं।

ऐसा ही एक दूसरा गेय काव्य है नंदन चरित्रम्, जो रामनाटक से भी बढ़कर लोकप्रिय है। आधुनिकता की दृष्टि से नन्दनचरित्रम् और भी महत्वपूर्ण है। 'जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान'—कबीर की इस उक्ति के अनुसार, कोई भी व्यक्ति, चाहे वह समाज में कितना ही नीच क्यों न माना जाय, अपनी साधना और ज्ञान के द्वारा ऊपर उठ सकता है, इस तथ्य को साबित करने वाले एक सच्चे भक्त की कहानी के आधार पर नन्दन चरित्रम् नामक यह गेय-काव्य रचा गया है। इस काव्य के रचयिता गोपालकृष्ण भारती—एक साधु व्यक्ति थे,

ो उन्नीसवीं सदी के आरम्भ से अन्त तक लगभग पचानवे साल जिये।
ों तो पेरियपुराणम् में वर्णित नन्दनार की कथा बड़ी ही लोकप्रिय थी,
गर उस कथा को जनता की सरल भाषा में संगीत का कलेवर देकर
श के कोने-कोने में गुँजा देने का श्रेय गोपालकृष्ण भारती को था।
न्दन चरित्रम् इतना प्रसिद्ध हो गया है कि नन्दनार का नाम लेते ही
ोगों को गोपालकृष्ण भारतीजी का ही स्मरण हो आता है। यहाँ तक
के लोग यह भी भूल गये हैं कि पेरियपुराणम् में यह कथा किस रूप
ं पायी जाती है। गोपालकृष्ण भारती ने पेरियपुराणम् की कथा के
आधार पर ही अपने गीतिकाव्य की रचना शुरू की थी, मगर जाते-
जाते उन्होंने कई नये-नये पात्रों और नाटकीय घटनाओं की कल्पना करके
मूलकथा को और भी रोचक बना दिया है।

नन्दनार की कहानी करुणरस से भरपूर है और साथ-साथ सामाजिक दृष्टि से क्रान्तिकारी भी कही जा सकती है। एड़ी-चोटी का पसीना एक करके खेतों में मेहनत करने पर भी जिन लोगों को निष्ठुर समाज ने अछूत मानकर अलग कर रखा था, ऐसे हरिजनों की गन्दी बस्ती में नन्द-नार का जन्म हुआ था। फिर भी उनके मन में चिदम्बरम् के नटराज के प्रति ऐसी अटल भक्ति भरी थी कि एक बार चिदम्बरम जाकर नट-राज की मूर्ति के दर्शन करने की तीव्र इच्छा को वे नहीं रोक सकते थे। मगर उस जमाने में, जब कि हर जगह छूआछूत का बोलवाला था, एक गरीब हरिजन को चिदम्बरम के मन्दिर में जाकर नटराज की मूर्ति के दर्शन करने का सौभाग्य आसानी से कहाँ मिल सकता था। आशा और निराशा के बीच नन्दनार को कैसी-कैसी तकलीफों का सामना करना पड़ता था, और अपनी भक्ति के बल से वे कैसे अपने ध्येय में सफल हो सके आदि बातें पत्थर के दिल को भी द्रवित करने वाली है।

ऐसे एक दबे हुए, दलित, पर दृढ़प्रतिज्ञ व्यक्ति को अपने काव्य का नायक बनाकर गोपालकृष्ण भारती ने अपनी उदात्त समदर्शिता का

परिचय दिया है । नन्दन चरित्र की सरल और मधुर भाषा ही नहीं, गीतों के भावों के अनुसार रागतालों का उचित चुनाव ही नहीं, विविध पात्रों का सजीव चित्रण ही नहीं, इन सबसे बढ़कर इस ग्रन्थ की लोक-प्रियता का महत्वपूर्ण कारण और एक भी है और वह है गोपालकृष्ण भारतीजी का व्यक्तित्व, जिसकी झलक इस ग्रन्थ की हर पंक्ति में हम देख सकते हैं । स्वयं भावुक भक्त होने के कारण वे नन्दन के मन की तड़प का पूरा-पूरा अनुभव कर सकते थे, और इसी अनुभूति से उनका हर शब्द निकला था । तो फिर इसमें आश्चर्य क्या है कि इस काव्य के गीत सीधे सुनने वाले के हृदय में समा जाते हैं । इस ग्रन्थ की विशेषता यह भी है कि कई जगह गोपालकृष्ण भारतीजी ने उत्तरी संगीत पद्धति का भी प्रयोग किया है । १८६१ में इस ग्रन्थ का पहला संस्करण निकला और एक ही साल के अन्दर दूसरे संस्करण की आवश्यकता पड़ गयी । इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि थोड़े ही समय में यह ग्रन्थ कितना लोकप्रिय हो गया था । आज भी इस काव्य के कई गीत लोगों की जीभ पर हैं ।

यह कहने में अत्युक्ति नहीं होगी कि गोपालकृष्ण भारती ने काव्य रचना शैली में एक युग-प्रवर्तक परिवर्तन का सूत्रपात किया । उनके काव्य की लोकप्रियता ने यह स्पष्ट कर दिया कि जनता घिसीपिटी पुरानी पंडिताऊ शैली से कितनी ऊब गयी थी और नयी शैली और नये विचारों को ग्रहण करने के लिए कितनी उतावली थी । हास्यास्पद बात यह है कि लकीर के फकीर पंडित-समाज ने नन्दन-चरित्रम की खूब हँसी उड़ाकर उसकी टीका-टिप्पणी की और उसे काव्य रचना का गौरव देने से इनकार कर दिया । फिर भी गोपालकृष्ण भारती निराश नहीं हुए । जनता की स्वीकृति जब उन्हें मिल गयी थी तो पंडित समाज की अस्वीकृति या अवहेलना की परवाह उन्हें कैसे हो सकती थी ?

गोपालकृष्ण भारती की काव्य कला की एक बानगी सुनाये बिना आगे जाने को जी नहीं करता । काव्य के आरम्भ में ही हरिजनों की

बस्ती का सुन्दर वर्णन है । सरल शब्दों में कवि ने उस बस्ती का कैसा स्वाभाविक चित्र खींचा है सुनिए :—

"पळनमरुंगपौयुम—पुलै—पाडियदु कूरै वीडदनिल—
शुरैयो पर्डन्दिरुक्कम—अदच्चुट्रितुम नायहल छुरैत्तिरुक्कुम ।"

"पुलप्पाडी याने हरिजनो की यह बस्ती खेतों से सटकर है । झोंपड़ियों के छप्परों पर लौकी की बेलें फैली हुई हैं । चारों तरफ कुत्ते भोंक रहे हैं । यही नही, कच्चे मांस के टुकड़े इधर-उधर बिखरे पड़े हैं । चीलें उन टुकड़ों को उड़ा लेने की ताक में आकाश में मँडरा रही हैं ।"

ऐसे गन्दे वातावरण में रहने पर भी नन्दनार का मन उच्चविचारों से ओतप्रोत है । ईश्वर के दर्शन करने के लिए उनका मन लालायित है । किसी-न-किसी तरह समय निकालकर पास के एक तीर्थस्थान तिरुप्पुन-कूर पहुँचते है और वहाँ के मन्दिर के द्वार से काफ़ी दूर खडे हो जाते है । सामने ही मन्दिर का गर्भगृह दृष्टिगोचर होता है जहाँ दिये टिम-टिमा रहे है । लेकिन यह कैसी निराशा है ! ईश्वर की मूर्ति के दर्शन नही हो पाते । ईश्वर के सामने यह वृहदाकार बैल क्यों लेटा है ? ऊँची गर्दन, सीधा सिर लिये यह बैल क्यों मेरे और मेरे ईश्वर के बीच में पड़ा है ? नन्दीदेव की मूर्ति को देखकर ही नन्दनार इतने निराश होते है क्योंकि उनकी दृष्टि में वह ईश्वर के दर्शन करने मे बाधक है । उनके मन की इस विह्वलता को कवि ने एक गीत का रूप दिया है जो बड़ा ही मधुर और भावावेश से भरपूर है । इस गीत के द्वारा नन्दनार ईश्वर से बैल की शिकायत करते है और दीन प्रार्थना करते हैं कि क्या तनिक देर के लिए यह बैल जरा हटेगा नहीं । क्या इतनी दूर आकर भी मैं आपके दर्शन किये बिना निराश लौट जाऊँ ? मैं यही आपके रथ के अड्डे के पास खड़ा होकर आपके दर्शन कर लूँ तो काफ़ी है । यह बैल एक पग हट जाये तो काफ़ी है—भक्त की यह दीन-दुहाई सुनकर भी भग-वान चुप कैसे रहें ? वे नन्दी देव को आदेश देते हैं—"ज़रा हट जाओ भाई, हमारे भक्त को हमारे दर्शन करने दो ।" यों कहकर ईश्वर नन्द-

नार के निर्मल हृदय और अटल भक्ति की तारीफ करते हैं। नन्दीदेव तुरन्त अपनी गर्दन को एक तरफ मोड़कर सींगों वाले सिर को हटा लेते हैं। नन्दनार आनन्दविभोर होकर ईश्वर के दर्शन कर लेते हैं। अब भी आप दक्षिण के किसी भी शिव मन्दिर में जाइए तो पायेंगे कि नन्दीदेव की गर्दन एक तरफ मुड़ी हुई है और सिर सन्निधि से तनिक हटा हुआ है।

गोपालकृष्ण भारती की भाषा की सरलता और मधुर सुन्दरता का बयान करने की कोशिश करूँ तो मेरी कोशिश बेकार साबित होगी, क्योंकि उनकी भाषा की जो निराली मौलिकता है अनुवाद के द्वारा उसको समझना मुश्किल है। आगे चलकर स्वयं सुब्रह्मण्य भारती पर गोपालकृष्ण भारती की रचना शैली का प्रभाव पड़े बिना नहीं रह सका, इसका पता उनकी रचनाओं से हमें लग जाता है। कोमल शब्दावली और सरल छन्दों के चुनाव में सुब्रह्मण्य भारती ने गोपालकृष्ण भारती का अनुकरण दिल खोलकर किया है। इस दृष्टि से देखा जाये तो हम निःसंकोच कह सकते हैं कि तमिल के आधुनिक पद्यसाहित्य के मार्गदर्शक श्री सुब्रह्मण्य भारती के भी मार्गदर्शक रहे गोपालकृष्ण भारती।

अच्छा, राष्ट्रकवि सुब्रह्मण्य भारती जी की कविता की चर्चा करने के पहले उनके पूर्व के और दो कवियों के बारे में कहना मेरा कर्तव्य है। एक हैं कुट्राल कुरवंजि के रचयिता तिरिकूडराशप्प कवि और दूसरे हैं मनोन्मणीयम् नामक पद्यनाटक के रचियता प० सुन्दरम पिल्लै। कुरवंजि लोकगीत की शैली की एक काव्य रचना है जिसमें अक्सर बोलचाल की भाषा का ही प्रयोग होता है। इसका एक प्रधान पात्र एक किरातकन्या है जो नायिका के पास आकर उसके प्रेम के परिणाम के बारे में अपनी भविष्यवाणी सुनाती है। और आखिर इसी व्याधकन्या के प्रयत्न से नायक और नायिका का मिलन सम्पन्न हो जाता है। कुट्रालकुरवंजि में तिरिकूडराशप्प कवि ने कुट्रालम नामक तीर्थस्थान की

पहाड़ी पृष्ठभूमि में शिव-पार्वती के अलौकिक प्रेम और विवाह का हृदयग्राही वर्णन बड़ी ही सरल और सुन्दर भाषा में किया है।

प० सुन्दरम पिल्लै तिरुवनन्तपुरम के एक कॉलिज में दर्शनशास्त्र के प्राध्यापक थे। वे तमिलभाषा के प्रकांड पंडित थे। शेक्सपियर की पद्यमय नाटक शैली को अपनाकर उन्होंने मनोन्मणीयम् नामक पद्य-नाटक की रचना की। उनकी भाषा पंडिताऊ है और कथावस्तु एक अंग्रेज़ी कहानी पर आधारित है। इसे पढ़ने पर यही ज्ञात होता है कि इसमें पंडिताऊपन ज़्यादा है और कविता कम। तमिल भाषा के प्रति सुन्दरम् पिल्लै के मन में असीम श्रद्धा और भक्ति थी और इस कारण तमिल भाषा की संस्कृत से तुलना करके यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि तमिल संस्कृत से भी बढ़कर है। इसके लिए उन्होंने जो दलील पेश की है वह बड़ी ही निराली है। कलादेवी की दोनों आँखों के रूप में तमिल और संस्कृत भाषाओं को मान लें तो तमिल कलादेवी की दाहिनी आँख हो जाती है, क्योंकि कलादेवी पूरब की ओर ही मुँह करके बैठी होगी न कि पश्चिम की ओर। तमिल दक्षिण भाषा है और संस्कृत उत्तर की। जब कलादेवी का मुँह पूरब की ओर है तो उसकी दायीं तरफ तमिल है और बायीं तरफ संस्कृत। इसी से हम समझ सकते हैं कि तमिल संस्कृत से बढ़कर है। सुन्दरम पिल्लै की मातृभाषा-भक्ति का परिचय हमें इससे मिल जाता है।

इस तरह हम देखते हैं कि तमिल के आधुनिक महाकवि सुब्रह्मण्य भारती के पहले ही कई साहित्य-सेवियों ने तमिल के पद्य-साहित्य के नये विकास का यथाशक्ति प्रयत्न किया था। पर जिस वातावरण में, देश के इतिहास की जिस पृष्ठभूमि में, राष्ट्रीय चेतना की जिन प्रबल शक्तियों और जनता की जिन उत्तेजनापूर्ण आशा-आकांक्षाओं के बीच सुब्रह्मण्य भारतीजी की कविता का विकास हुआ उन्हीं के कारण भारतीजी को आधुनिक साहित्य-क्षेत्र में ऐसा ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ है, जो और किसी को प्राप्त नहीं हो सका। भारतीजी की कविता सिर्फ उनकी

राष्ट्रीय कवि स्व० सुब्रह्मण्य भारती

अपनी वाणी नहीं थी, गुलामी की जंजीरों से जकड़ी हुई स्वतन्त्रता के लिए तड़पती हुई जनता की जोशभरी वाणी थी। भारत के नव-जागरण की स्फूर्ति-भरी वाणी थी, भारत के उज्ज्वल भविष्य की आशाभरी वाणी थी। अपनी ओजपूर्ण वाणी से भारती ने तमिल के पद्य-साहित्य में ही नहीं, तमिल भाषियों के व्यक्तिगत और सामाजिक चिन्तन में भी उथल-पुथल मचा दी। पद्य-रचना को पण्डिताऊ शैली के अन्धकूप से एकदम निकालकर खुली हवा में उन्मुक्त वातावरण में खड़ाकर देने का सारा श्रेय भारतीजी को ही था। स्वतन्त्रता उनकी कविता का मूल-मन्त्र थी। समाज की जिन कुरीतियों ने, देशवासियों की जिन स्वार्थभरी बुराइयों ने, लकीर के फकीरों के जिन झगड़े-फसादों ने हमारी प्यारी भारतभूमि को पराधीन बना दिया था, उन सबके विरोध में उन्होंने बगावत का झंडा फहरा दिया, उन सबको चूर-चूर करने के प्रबल आवेश से उन्होंने अपना कविताशंख बजा दिया, पिछड़ी हुई, सोयी हुई जनता के दिलों में नयी जान फूँक दी, नया जोश भर दिया, और सूखी हुई नसों में उन्होंने नये रक्त का संचार करा दिया। निर्भीकता, स्वाभि-मान, स्वार्थत्याग, भारत के प्राचीन गौरव के प्रति श्रद्धा, वर्तमान बुराइयों के प्रति घृणा, उसके उज्ज्वल भविष्य के प्रति अटल विश्वास, इन्हीं भावों को जनता के मन में जगा देने की शक्ति भारतीजी की कविता में थी, अब भी है और हमेशा रहेगी। देश की गिरी हुई हालत को देखकर उनका मन सन्ताप से भर गया, विद्रोह की भावना से भर गया, और उसी सन्तप्त विद्रोहपूर्ण मन से उनकी कविता फूट निकलती थी। उनकी लेखनी से निकले हुए हर शब्द में ओज था, भावावेश था, हृदय को हिला देने की शक्ति थी। उनकी निर्भीकता की झलक इन पंक्तियों में देखिये—

भय नहीं है, भय नहीं है, भय नहीं कभी नहीं—
सारा जग हमारे खिलाफ खड़ा रहे, तो भी नहीं,

मीत भी हलाहल को मेंह में दे, तो भी नहीं,
शीश पर आकाश अचानक टूट पड़े तो भी नहीं।
भय नहीं है, भय नहीं है, भय नहीं कभी नहीं।

घृणित पराधीनता में अपना सारा गौरव और सारी शक्ति खोये हुए भारत को देखकर उनका मन क्रोध से भर जाता है। "जा, जा, कहीं भाग जा" कहकर भर्त्सना करते समय पराधीन भारत की कुत्सित दशा का कैसा चित्र खींच देते हैं। देखिए—

शक्तिहीन कन्धे तेरे जा जा जा
संकुचित छाती तेरी जा जा जा
कान्तिहीन मुखड़ा तेरा जा जा जा
तेजहीन आँखें तेरी जा जा जा
स्वरविहीन कंठ तेरा जा जा जा
चमकहीन तन तेरा जा जा जा
भीति भरा मन तेरा जा जा जा।
नीचता के पुजारी तू जा जा जा
जाति सौ मानने वाले जा जा जा।
धर्म न जानने वाले जा जा जा
नीति की रट लगाकर पैसे के
सामने झुकने वाले जा जा जा।
बुरा करने की हिचक नहीं, सामने
बुरा देख भागने वाले जा जा जा
ज्योतिपूर्ण रत्न में जमाने का
कलंक-सा लगा है तू जा जा जा।

और फिर भविष्य के भारत का स्वागत करते समय उनकी वाणी में कैसा उल्लास है, कैसी उमंग है ?

बिजली-सी आँखें तुम्हारी आओ, आओ
वज्र-सा हृदय तुम्हारा आओ आओ

मोहभरी वाणी तुम्हारी आओ आओ
कठोर हैं कन्धे तुम्हारे आओ आओ
शंकाहीन बुद्धि तुम्हारी आओ आओ
क्षुद्रता के विरोधी तुम आओ आओ
दीनों के दयालु तुम आओ आओ
शेर जैसी चालवाले आओ आओ
नौजवान हे नवभारत आओ आओ
लाजवाब ताकतवर आओ आओ
ज्योतिहीन देश को आलोकित कर
प्रभात के सूर्य जैसे आओ आओ
कांतिहीन देश में पहले जैसी
कांति भर देने आये आओ आओ।
भविष्य के वैभव को पार्थ जैसे
दृष्टि से दिखाओगे आओ आओ।

भारती के स्वतन्त्र विचारों ने उनको कई तरह की कठिनाइयों में डाल दिया। जब विदेशी सरकार की उन पर विशेष दृष्टि पड़ गयी तब वे उसके आतंक से बचकर पुदुच्चेरि पहुँचे, ताकि स्वतन्त्र रहकर जनता को अपना सन्देश सुनाते रह सकें। वहाँ यद्यपि उनको मित्रों की सहायता समय-समय पर मिला करती थी, फिर भी उसके सहारे जीवन-निर्वाह करना कैसे सम्भव था? भारतीजी को गरीबी की कठोर यातना सहनी पड़ी। पत्नी बच्चों के साथ भूखों तड़पना पड़ा। सैकड़ों मुसीबतों का सामना करना पड़ा। इतना होने पर भी भारतीजी ने हिम्मत नहीं हारी। उनकी कविता की ओजस्विता दिनों-दिन बढ़ती गयी। आधुनिक पद्य-साहित्य के अनगिनत उत्तम रत्नों की रचना भारतीजी ने पुदुच्चेरी के इन दस सालों के निर्वासन में ही की थी।

भारती जानते थे भूख नामक बला क्या है। इसको मिटाने का एक उपाय वे यों बताते हैं—

आज से करें हम यही विधान
निभायें सदा ही सभी सामान
किसी को भूखा रहना यहाँ
पड़े तो मिटा दें सारा जहाँ।

भारती यद्यपि राष्ट्रीय चेतना के पुजारी थे, फिर भी उनकी राष्ट्रीयता के मूल में असीम और अगाध मानवता थी। वे सिर्फ अपने देश के या राष्ट्र के ही कल्याण मे सन्तुष्ट नही रह सकते थे। विश्व-कल्याण ही उनका ध्येय था। वे सिर्फ मानवजाति का कल्याण ही नहीं सभी चराचर का कल्याण चाहते थे। क्योंकि भारतीजी का विश्वप्रेम आध्यात्मिक अनुभूति से प्रेरित था। एक जगह वे गाते हैं—

खाने आ रहा यद्यपि बाघ
प्रेम से पूजो चित्त अबाध।
माता पराशक्ति का यह रूप
उसे करो तुम प्रणाम अनूप।

उनकी समदृष्टि ऐसी थी कि दुश्मन को भी प्रेम और अनुकम्पा का ही पात्र समझते थे। सभी चराचर में वे पराशक्ति का ही रूप देखते थे और अपने-आपको भी उसी पराशक्ति के रूप में विलीन पाते थे।

काक्कै कुरुवि एंगल जाति-नील
कडलुम मलैयुम एंगल कूट्टम्।

"कौए और चिरैया भी हमारी जाति के हैं। सागर और पर्वत भी हमारे समाज में सम्मिलित हैं।"—

लाली मेरे लाल की
जित देखों तित लाल।"

कबीर की इस वाणी की झलक आगे की पंक्तियों में देखिये :—

नोक्कुम् इडमेल्लाम् नामंड्रि वेरिल्लै
नोक्क नोक्क कलियाट्टम् ।

"जिधर हमारी दृष्टि जाती है उधर पाते हैं, हम ही हम हैं । देख-देख कर हमारा आनन्द बढ़ता जाता है ।"

भारतीजी शक्ति के उपासक थे । शक्ति की स्तुति में उन्होंने जो गीत रचे है, वे पढ़ने वाले के हृदय में भक्ति का ही नहीं एक नयी शक्ति का संचार करा देते है । शक्ति से प्रार्थना करने का उनका ढंग ही निराला है । वे संसार के सुख-भोग नहीं मागते, धन-दौलत, ऐश-आराम नहीं मांगते ।

"मोहत्तै कोन्रु विडु-अल्लाल एंदन
मूच्चै निरुत्तिविडु ।"

मोह का अन्त कर दो—नहीं तो
सांस को बंद कर दो ।
देह का नाश कर दो—नहीं तो
चिन्ता का ह्रास कर दो ।
योग में लीन कर दो—नहीं तो
प्राण ही छीन लो ।

और एक जगह वे गाते है :—

सुन्दर वीणा रचकर उसे
धूल में फेंकेगा कौन ?
हे शक्ति ! बता दो मुझे
बुद्धि की दीप्ति क्यों दी ?
बल न दोगी ताकि जीवन
जगती का कल्याण करे ?

शक्ति की परिभाषा वे यों करते हैं :—

शांति ही है शक्ति जिसमें शोक ही नहीं
जागृति है शक्ति जिसमें नींद ही नहीं
प्रेम ही है शक्ति जिसमें वासना नहीं
शूरता ही शक्ति जिसमें क्रूरता नहीं।

कुछ लोगों की शिकायत है कि भारतीजी ने कोई महाकाव्य नहीं रचा है, जो उनको विश्वमहाकवियों की श्रेणी में स्थायी गौरव दिला सकें। यह सच है कि भारती ने महाकाव्य की परम्परागत परिपाटी पर कोई बृहदाकार रचना नही की, पर इसमें शक नही कि ३९ वर्ष की अल्पायु में उन्होंने जो कविता रची थी उसका प्रभाव जन-मन पर हमेशा अमिट रहेगा। जब तक संसार में स्वतन्त्रता की चाह रहेगी, उन्मुक्त ऊँची भावनाओं की प्यास रहेगी, आध्यात्मिक उत्थान की आस रहेगी, तब तक भारतीजी की अमरवाणी इस संसार में गूँजती रहेगी। तिरुक्कुरल महाकाव्य नही है, फिर भी विश्व-साहित्य में उसको गौरव-पूर्ण स्थान मिला है। उसी प्रकार भारतीजी की मुक्तक कवितायें भी विश्व-साहित्य में उचित स्थान पायेंगी, इसमें हमें ज़रा भी सन्देह नहीं है।

कुछ समालोचकों का कहना है कि भारतीजी के राष्ट्रीय-गीत सामयिक थे, परिस्थितियों से प्रेरित थे। जब परिस्थिति बदल गयी है, जब हमें स्वतन्त्रता मिल चुकी है, तब धीरे-धीरे उनकी रचनाओं का प्रभाव मिट जायगा। यह दलील कैसी भ्रमात्मक है अभी हमने हाल में देखा। चीनी आक्रमणकारियों ने जब हमारी पवित्र हिमालय की भूमि में अपने कलुषित पैर रखे, तब देश-भर में अनुपम जोश का उफान हमने देखा। आसेतुहिमाचल सब जगह यही आवेश उमड़ आया कि "हमारी प्यारी स्वतन्त्रता को कोई भी दुश्मन नहीं छीन सकता। हम अपने प्राणों की बलि चढ़ाकर स्वतन्त्रता की रक्षा करेंगे।" ऐसी हालत में तमिलनाड के कोने-कोने में लोगों का भावावेश किस माध्यम से मुखरित हुआ? कहाँ उन्होंने अपने हृदय के आवेश की प्रतिध्वनि पायी। भारतीजी के ही

अमर गीत एक नये उत्साह के साथ, एक नये अर्थ में, एक नया सन्देश लिये हुए हर किसी के मुंह से फूट निकले थे। क्या भारतीजी की रचनायें सामयिक हैं ? हाँ, वे सामयिक ही हैं। हर परिस्थिति के लिये, हर भावना के लिये वे सामयिक ही हैं। सामयिक और क्लासिक में कितना फरक है ? फिर भी जो क्लासिक है उसकी परिभाषा यह है कि वह हमेशा के लिये सामयिक है। अर्थात् उसके शब्द और उसके विचार सभी समय के लिये सार्थक हैं। ज़माना बदल सकता है, लोगों के आचार-विचार बदल सकते हैं—लेकिन क्लासिक का प्रभाव ज्यों-का-त्यों रहता है। भारतीजी की रचनायें इसी श्रेणी में आती हैं। हर प्रान्त के लिये—प्रान्त के लिये ही क्यों, हर देश के लिये, हर भाषा के लिये उनकी कविता सार्थक साबित होगी।

अभी हाल में साहित्य अकादमी के प्रान्तीय मन्त्री डॉ० के० एम० जार्ज ने कहा कि भारतीजी की रचनाओं का हिन्दी अनुवाद सफल नहीं निकला है जबकि मलयालम अनुवाद बिलकुल सफल हुआ है। मलयालम में उसकी लोकप्रियता का कारण उन्होंने यह बताया है कि अनुवादक स्वयं कवि हैं। उनके इस कथन से इतना तो सिद्ध होता है कि भारती-जैसे ओजस्वी कवि की रचनाओं का अनुवाद सिर्फ़ दोनों भाषाओं की अच्छी जानकारी से ही साध्य नहीं हो सकता। अनुवादक का स्वयं कवि होना आवश्यक है। हिन्दी के उत्तमकोटि के कोई ऐसे कवि, अब नहीं तो किसी समय—निकट भविष्य में ही क्यों न हो—ज़रूर मिलेंगे, जिनका तमिल का ज्ञान भारती की कविता की आत्मा को समझने योग्य हो और जो सफलतापूर्वक भारती-साहित्य का ऐसा अनुवाद कर सकेंगे कि हिन्दी-भाषी विद्वान् और जन-साधारण तुरन्त ही उसे अपना लेंगे।

भारतीजी के बाद के कवियों का जिक्र करने के पहले मैं भारतीजी के 'पांचाली शपथम्' नामक खण्डकाव्य के बारे में दो-चार शब्द कहना चाहता हूँ। महाभारत के द्रौपदी-चीरहरण के प्रसंग को लेकर यद्यपि भारतीजी ने इस खण्ड-काव्य की रचना की है, फिर भी उसे पढ़ते वक्त

हमें यह भान होता है कि काव्य की नायिका स्वयं भारतदेवी है, जो आततायियों के आतंक से पीड़ित है और क्रोध के आवेश में आर्तस्वर में विलाप करती है। हर पात्र के मुँह से जो शब्द निकलते हैं उनमें हम भारत-दुर्दशा की और उससे उत्तेजित कविमन की झलक पाते हैं। युधिष्ठिर जब अपने राज्य को ही दाँव में रखकर हार गये तब कवि की वाणी कैसे फूट पड़ती है सुनिये :—

मंदिर का पुजारी जैसे बेच डाले मूर्ति को
पहरेदार बेचे जैसे घर ही स्वार्थ पूर्ति को
देश को ही दाँव हारा किया नीचों का काम
धिक्कार है युधिष्ठिर तेरा नीतिज्ञान किस काम।

द्रौपदी की दशा देखकर भीम से रहा नहीं जाता और वह धर्मराज युधिष्ठिर की निन्दा करने लगता है। तब उसका क्रोध शान्त करने के लिये अर्जुन जो बातें कहता है उनमें कितना संयम, दबा हुआ स्वाभिमान और साथ ही भविष्य के प्रति कितना आत्म-विश्वास भरा है सुनिये :—

प्रवंचना से धर्म की प्रभुता दबे भले ही
विजयी होगा धर्म ही विपदा सभी टलेगी।

बंधे हैं बन्धन में सह लेंगे हम
समय भी बदलेगा तब लेंगे दम
धर्म की जय होगी धर लेंगे हाथ
धनु नाम है गांडीव वर लेंगे साथ।

भारतीजी के बाद के कवियों में से दो कवियों का उल्लेख मैं पहले करना चाहता हूँ जो अब हमारे बीच में नहीं है। एक हैं श्री देशिक विनायकम पिल्लै और दूसरे हैं श्री सु० दु० सुब्रह्मण्य योगी। देशिक विनायकम पिल्लै कविमणि के नाम से प्रसिद्ध थे। उनकी लोकप्रियता का भान हमें इसीसे हो सकता है। कविमणि बड़े ही भावुक कवि थे और सरल भाषा में पद्य रचना करते थे। बालोपयोगी पद्यों की

रचना द्वारा ही उन्होंने कविता-क्षेत्र में कदम रखा था और आगे चलकर उन्होंने कई हृदयस्पर्शी पद्य रच डाले। उन्होंने तमिल में अेडविन आर्नल्ड की कविता 'लाइट ऑफ एशिया' का और उमर खय्याम की रुबाइयात का सरल और कोमल पद्यानुवाद किया है। मीरा की भावुक भक्ति से प्रेरित होकर उन्होने मीरा के चरित के आधार पर 'प्रेम की जीत' शीर्षक का एक छोटा-सा खण्डकाव्य रचा है जिसके पद्य अत्यन्त मधुर और भावुकता से भरपूर हैं।

बाल हृदय की पहचान में कविमणि सिद्धहस्त थे। यही कारण है कि उनकी मौलिक रचनाओं में अधिकतर बालोपयोगी कविताएँ है या बच्चों की कोमल भावनाओं के चित्रण के रूप में हैं। 'पहला शोक' शीर्षक की कविता में कविमणि ने एक बालक के पहले शोक का बड़ा ही भावुक वर्णन किया है। बालक के छोटे भाई की मृत्यु हो गयी पर इसका ज्ञान उसे नही है। अपने साथ खेलने के लिए भाई नही आया तो बेचारे बालक का मन विह्वल हो उठता है और वह अपनी माँ से पूछता है :

> खिली जुही हरसिंगार की कली कली
> विकसित मल्लिका की सुगन्ध यह फैली
> गुंजार करता अली तोते के साथ यहाँ
> ढूंढता है भाई कहाँ है माँ कहाँ।

माँ का मार्मिक उत्तर भी सुन लीजिए :

> खिले फूल जैसा गया कुम्हला वह
> खेलनहार संग गया खेलने वह।

आस्तिक प्रकृति के होने के कारण कविमणि का मन आगे चलकर भक्तिभरे कीर्तनों की रचना में ही लग गया जो अकसर उनके इष्टदेव मुरुगन याने कार्तिकेय की स्तुति में रचे जाते थे।

सु० दु० सुब्रह्मण्य योगी, जिनका स्वर्गवास अभी दो महीने पहले हुआ, बालभारती कहलाते थे। बचपन से ही वे आसानी से पद्य रचना कर सकते थे। परम्परागत कविताशैली का भी उन्हें अच्छा अभ्यास

था। भारती और कंबन दोनों की शैलियों को उन्होंने अपना लिया था। इस तरह उनके पद्यों में परम्परागत परिपाटी की शब्दावली के साथ-साथ कम्बन और भारती की सरसता और सरलता का सम्मिश्रण पाया जाता है। एक बानगी सुनिए :

शात्तिरमाम् एदी कोत्तिरमाम्—नेंजिल
मात्तिरम् पोय्ं वर्लत्त डुवार
मात्तिरैप्पोदुम मरणम् वरादवोर
शूत्तिरम मट्टुम तेरिंददिल्लै।

शास्त्रों और गोत्रों की रट लगाते हैं मगर दिल में झूठ का संचय करते रहते हैं। ऐसे मन्त्र का पता नहीं जिससे पल-भर के लिए भी मौत न आए।

'अहल्या', 'मेरी मग्दलेना' शीर्षक के उनके खंडकाव्यो में उनकी कविता शैली का पूर्णरूप हम देख सकते हैं। उनकी साठवीं वर्षगाँठ के अवसर पर आम सभा में उनका सम्मान करने का आयोजन तीव्र रूप से हो रहा था। खेद की बात है कि इस बीच में ही उनका देहान्त हो गया।

भारतीजी के प्रभाव में आये हुए आधुनिक कवियों में अग्रगण्य हैं भारतीदासन, जिनके नाम से ही हम जान सकते हैं कि वे भारतीजी के कैसे भक्त हैं। भारतीदासन 'पुरट्चि कवि' अर्थात् क्रान्तिकारी कवि कहलाते हैं। कारण यह है कि जातिपाँति के भेदभावों और परम्परागत कुरीतियों के वे कट्टर विरोधी हैं। वे जो कुछ भी लिखते हैं इन्हीं का खण्डन करके लिखते हैं। वैसे तो भारतीजी ने भी ऐसी बातों का खण्डन किया था, मगर भारतीजी के खण्डन का आधार उनकी मानवता थी, समाज के प्रति उनका प्रेम था। इसलिए भारतीजी जिस किसी भी बात का खण्डन करते थे उसको सुधारने का भी रास्ता दिखाते थे। इसके उलटे भारतीदासन की ऐसी रचनाओं में खण्डन-ही-खण्डन है, मंडन का बिलकुल अभाव है। कारण यह है कि उनकी अधिकतर रचनाएँ किसी जातिविशेष के प्रति उनके विरोधभाव से प्रेरित हैं। इस विरोधभाव से

प्रभावित हुए बिना उन्होंने जो पद्य रचे हैं उनमें सच्चे कवि हृदय की झलक हम पा सकते हैं।

पिछड़े पददलित जनसाधारण की उन्नति के प्रबल समर्थक हैं भारतीदासन। इस उद्देश्य से उन्होंने जो गीत रचे हैं वे अत्यन्त मार्मिक और प्रभावशाली हैं। वे नहीं चाहते कि मानव धरती के नीचे धँसा रहे, पीड़ित रहे, शोषित रहे। अज्ञान और लाचारी के अंधकूप से बाहर निकलकर ऊपर उठने का और विशाल मानव समुदाय में अपने को भी पहचान लेने का सन्देश वे जन-साधारण को यों देते हैं :

चढ़ो तुम गगनचुम्बी पर्वत पर
चढो चढो चढो और ऊपर ऊपर
चढकर देखो चारों ओर
देखो जग की जनता को
फैली जो है सभी तरफ
विशाल तुम्हारी मानवराशि।
देखो सगों की सेना को
जन-सागर जो अति विशाल है
अपने कुल में मिलाने तुमको
उछल रहा है देखो सानन्द
ज्ञान बढ़ा लो अखण्ड महान।
दृग विशाल में भर लो सबको
गले लगा लो होओ लीन।

भारतीदासन की कविता का विशेष गुण यह है कि वे जो कुछ भी कहना चाहते हैं दिल में चुभनेवाले पैने शब्दों में निधडक कह डालते है। वे बड़े ही साहसी कवि हैं। उनकी कविता कल्पनाएँ भी साहसपूर्ण उच्छृंखलता की द्योतक हैं निराली मौलिकता से भरपूर हैं। पूर्णिमा का चन्द्रमा अपनी पूरी छटा दरशाता हुआ जब ऊपर उठता है तब गगन-कन्या की गत क्या होती है सुनिये—

गगनकन्या खड़ी थी वहाँ
नीलदुकूल पहने वहाँ
देखा चन्द्रमा को जहाँ
लजा गयी मोती का हार
खींचा त्यों ही टूटा हार
बिखरे मोती बन गये सारे
कूड़े उज्ज्वल ये सब तारे।

कोमल भावनाओं का चित्रण करने में भी भारतीदासन को कमाल हासिल है। भावुक इतने है कि अपनी भावुकता के बहाव में पाठक को भी खींच ले जाते है। जहाँ एक ओर उनके पद्यों से अंगारे बरसते है वहाँ दूसरी ओर आँसुओं की भी कमी नही है। एक बानगी सुन लीजिए, जिसमें मातृहृदय के वात्सल्य का सुन्दर चित्रण है। बेटी सयानी हो गयी है और उसके यौवन की छटा देखकर माँ फूली नहीं समा रही है। लड़की की एक सहेली के मुँह से वह यह समाचार सुन लेती है कि लड़की एक योग्य युवक से प्रेम करती है। बेटी के प्रेम का यह सन्देश उसके मन में असीम आह्लाद भर देता है और साथ ही एक शिकायत भी उसके मन में उठती है। मेरी लाडली बेटी ने मुझसे कुछ नहीं कहा, सहेली से सब-कुछ कह डाला।

मलैपोल चुमन्द एन् वयिट्रिल पिरन्द पेण्
नल्लियिडत्तिल् चोन्नाल्।

रखी जैसे पेट पहाड़ी
जनम दिया था वही अनाड़ी
सहेली को है सभी सुनाती।

लम्बी साँस लेकर यह कहने के बाद माँ के मन में तरह-तरह की उल्लास-भरी कल्पनाएं उठती हैं। अपने प्रेम का रहस्य सहेली को सुनाते समय बेटी के मुँह पर कैसी आभा फूट निकली होगी।

राज सुनाते उसकी कैसी
बातें बिखरीं ? जूही जैसी !
दांत मोती से चांदनी छिटकी !
नीली आँखें तारों जैसी
चमकीं उज्ज्वल !
हाय न सुन सकीं बातें उसकी ।

भारतीदासन की कविता की और एक विशेषता है उनकी हास्य-पूर्ण व्यंग्योक्ति । एक साथ हँसाने और रुलाने की शक्ति उनकी लेखनी में है । वे साम्यवादी हैं, इसलिए शोषितों के पक्षपाती हैं । कहने की जरूरत नहीं कि वे अमीर-जमींदारों के विरोधी हैं । पंचभूतों में से जल, आग, हवा और आकाश इन चारों पर जब सबका समान अधिकार है तब सिर्फ जमीन पर का अधिकार क्यों सीमित है ? जमीन पर भी सबका समान अधिकार होना चाहिए—अपने इन विचारों को पैनी व्यंग्योक्ति द्वारा वे कैसे समझाते हैं । सुनिये—

जमीन के शासको सुनो मेरी बातें ।
पानी आग हवा आकाश इन सबके
हक भी सबके कैसे हों ? छिनने दोगे
अमीरों के ये अधिकार ? छीन ली
जमीन एक, बाकी तो चार हैं ।
वह भी छीन लो, मनाओ मौज ।
पैसेवाले के पेट भर जायें
श्रमिक जहर खाके मर जायें

"हवा, आकाश, जल, अग्नि जैसे
जमीन को भी समान बना दो"—
यों कहें कोई बेसिर मुण्ड अगर
क्या हुआ उससे ? हैं बड़े-बड़े सिर

तुम्हारे बीच, इन गरीबों के पास
सिवा चप्पलों के क्या रही है आस ।

नामक्कल रामलिंगम पिल्ले जो नामक्कल कविञर के नाम से प्रसिद्ध हैं, कुछ वर्ष पहले मद्रास राज्य के राजकीय कवि के पद पर रह चुके हैं। उनका दृष्टिकोण गांधीवादी है और उनकी रचनायें उनकी नैतिकता से प्रेरित हैं । इसलिए वे ज्यादा उपदेशात्मक हैं और कविता की दृष्टि से उनका मूल्य कम ही जँचता है । स्वतन्त्रता आन्दोलन के समय उन्होंने कुछ जोशीले गीत रचे जिनमें नमक सत्याग्रह के अवसर पर रचा हुआ एक गीत बहुत ही लोकप्रिय साबित हुआ ।

"कत्तियिड्रि रत्तमिड्रि युत्तमोन्रु वरुगुदु"

इस गीत में अहिंसात्मक युद्ध का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया गया है । शुरू की पंक्तियाँ यों हैं—

"आया एक युद्ध महान
खड्ग नहीं नहिं रक्तबहाव
आओ सभी जिन्हें विश्वास
नित्य सत्य पर होवे आज"

नामक्कल कविञर ने "अवनुम् अवळुम्" शीर्षक का एक उपन्यास भी पद्य के रूप में लिखा है जिसकी वर्णन शैली बड़ी ही रोचक है ।

तमिल के उदीयमान युवा कवियों की श्रेणी में श्री मी० प० सोमसुन्दरम्, जो 'सोमु' के उपनाम से प्रसिद्ध हैं, अग्रगण्य माने जाते हैं। इनकी कविताओं का संकलन 'इलवेनिल' अर्थात् 'वसन्त' के शीर्षक में प्रकाशित हुआ है । सबसे उत्तम पद्य संकलन के उपलक्ष्य में इसको दो बार पुरस्कार मिल चुके हैं । तमिळ वळर्च्चिक्कळहम के द्वारा पहली बार और दूसरी बार मद्रास सरकार के द्वारा । श्री सोमु प्रतिभावान् कवि हैं और कल्पनाओं का निरालापन और भाषा-सौष्ठव इनकी कविता के विशेष गुण हैं । युवा कवि होने पर भी आध्यात्मिकता की भावना अन्तर्वाहिनी की तरह इनकी कविता के अन्तस्तल में पायी जाती है ।

कितनी कितनी कलियाँ नित ही
खिलेंगी इस धरती पर
कितने कितने फूल यहाँ पर
मुरझायेंगे धरती पर।
कितने सपने कितने प्रेम
कितने कितने हों
कितने सुख हों कितने दुख हों
कितने कितने हों—हरदिन
कितने कितने हों।

इस पद्य में कितने शब्द को दुहराने मात्र से कवि ने अपनी आन्तरिक वेदना को व्यक्त किया है जिसकी प्रतिध्वनि किसी भी पाठक के हृदय में उठे बिना नहीं रह सकती।

'अकेली तारिका' शीर्षक कविता में तारिका की चमक के साथ कवि की कल्पना की प्रतिभा कैसे चमक उठी है। सुनिये :—

तारिका एक अकेली चमकी
सूने आकाश खड़ी वह चमकी—अकेली चमकी।
नील विशाल गगन के छोर
चिन्तन की सीमा से दूर
सुन्दर तेज दिया चमकाती
भूकन्या से नाता जुड़ाती
तारिका एक अकेली चमकी।

भू-कन्या से तारिका के नाता जुड़ाने की कल्पना करके कवि ने कमाल किया है।

'अमुदवेरि' अर्थात् 'अमृत की मस्ती' शीर्षक कविता में श्री सोमु की कविता की मस्ती हम पाते हैं, जो मृत्यु को भी जीत लेने की हिम्मत लिये हुए है।

रंगीन नाव चलायें हम
जग का दुख भुलायें हम
चिन्तन सागर सीमा पर
गगन का चाँद छुआयें हम
खेद तिमिर का सिर तोड़कर
भागते घन को काबू कर
अमी चाँदनी का पीकर
मौत को मार डालें हम ।

युवा कवियों में कम्बदासन का भी अपना अलग स्थान है। उच्छृङ्खल मस्ती में झूमनेवाले इन कवि की कवितायें एक अपूर्व मादकता से भरी हुई हैं। अभी कुछ साल हुए, फ़िल्मी गीतों के क्षेत्र में प्रवेश करने के बाद ये अपनी कविता के पूर्ण विकास में मन नहीं लगा सके। फिर भी इनकी कविताओं के दो-तीन अच्छे संकलन प्रकाशित हुए हैं, जिनसे हम इनकी प्रतिभा का अनुमान लगा सकते हैं। अपनी मधुर सुखमय कल्पनाओं के अनुकूल ही मधुर छन्दों और शब्दावली का प्रयोग करने में ये सिद्धहस्त हैं।

तुरैवन और गुहन के नाम भी युवा कवियों की श्रेणी में उल्लेखनीय हैं। सरल छन्दों और शब्दों को लेकर सुगम संगीत के लिये गीतिकायें लिखने की प्रतिभा दोनों में है। गुहन के कई गीतों को कई प्रसिद्ध संगीत विद्वान् प्रचलन में लाये हैं, जिससे ये गीत काफ़ी लोकप्रिय हो गये हैं।

लोकगीतों की शैली में पद्य-रचना करने में कोत्तमंगलम् सुब्बु को कमाल हासिल है। इसी शैली में इनका रचा हुआ गांधिमहान कथै बहुत ही लोकप्रिय है।

संगीत की पद्धति पर पद्य-रचना करने की ओर कुछ विद्वान् कवियों का मन लगा हुआ है। ऐसे कवियों की श्रेणी में योगी शुद्धानन्द भारती का नाम पहला स्थान पाता है। शुद्धानन्द भारती संन्यासी और नैष्ठिक ब्रह्मचारी हैं और उनकी रचनायें उनकी आध्यात्मिकता की द्योतक हैं।

ोश-भरे प्रचारात्मक पद्यों की भी रचना उन्होंने बड़ी संख्या में की है,
र उनमें से अच्छी कविता की कसौटी पर खरी उतरनेवाली रचनायें
म ही पायी जाती हैं। तमिळ् वळर्च्चिक्कळहम् अर्थात् तमिल विकास-
मिति के मन्त्री और तमिल एनसाइक्लोपीडिया के सम्पादक श्री पेरिय-
ामि तूरन ने भी कई ऐसे गीतों की रचना की है, जो कीर्त्तनों के
प में हैं।

फिल्मी गीतों की रचना करनेवालों में कवि कण्णदासन का विशिष्ट
थान है, जिन्होंने फ़िल्मी गानों के छिछलेपन को बदलकर उनमें कविता
ी सुगन्ध भर देने की ठान ली है और इस प्रयत्न में एक हद तक सफल
ी हुए हैं। उनके गानों की लोकप्रियता का कारण उन गानों की मधुर
ुनें ही नहीं, बल्कि उनमें भरा हुआ कविता-माधुर्य भी है।

उपसंहार

महाकवि सुब्रह्मण्य भारती को स्वर्गवासी हुए अब तेंतालीस वर्ष पूरे
ो गये हैं, लेकिन एक भारती ने केवल पन्द्रह-बीस सालों में जिन सुन्दर
ूलों से कविता देवी का शृंगार किया था उसकी तुलना में उनके बाद
े कवि सभी मिलकर स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद के इन सोलह सालों में
ो रचनायें कर सके हैं, संख्या और प्रभावात्मकता की दृष्टि से हम उन
र गर्व नहीं कर सकते। और भी स्पष्ट रूप से कहूँ तो अच्छी कविता
की दृष्टि से उनका मूल्य नहीं के बराबर है।

इसके कारण कई हैं। मूलतः हमें यह मान लेना चाहिए कि कविता
भावोद्रेक का प्रतीक है और अच्छी कविता के विकास के लिए उपयुक्त
रिस्थितियों की आवश्यकता है। या तो शुंगों और गुप्तों के ज़माने के
जैसा भारत की समृद्धि और वैभव का स्वर्णकाल हो, जिसके निश्चिन्त
वातावरण ने अभिज्ञानशाकुन्तलम्-जैसे अमर नाटकों और कुमारसंभव-जैसे
ललित काव्यों की रचना करने के लिये महाकवि कालिदास को प्रेरित
किया था या भारतीजी के जीवनकाल के जैसा समस्याओं से पूर्ण हो,

जिसमें पीड़ित जनता के हृदय की तड़प और आहत-आकांक्षायें कवि की वाणी द्वारा प्रस्फुटित हो सकें।

अब हम निर्माण के युग में हैं। इस युग की समस्यायें स्थूल हैं, कवि के हृदय में भावुकता भर देने की शक्ति उनमें नहीं है। जनता की आहत-आकांक्षायें भी अब सूक्ष्म नहीं रहीं। उनकी पूर्ति की ज़िम्मेदारी स्थूल रूप लेकर जनता के कन्धों पर पड़ी है। ऐसी हालत में कवि कहीं का नहीं रहा। कविता की प्रेरणा ही जब नहीं रही तब कविता की रचना होगी कैसे? इसके उलटे जब पिछले वर्ष हमारी स्वर्णभूमि पर चीनी आततायियों का आक्रमण हुआ तब कई कवियों की तन्द्रा में पड़ी हुई वाणी अचानक जागृत हो उठी और कई भावपूर्ण पद्यों की रचना बड़ी तेज़ी से हुई।

समस्या ही जीवन की प्रेरणा है और कविता की भी प्रेरणा उसी से मिलती है। समस्या-रहित जीवन के शुष्क वातावरण में कविता पनप नहीं पाती। ऐसी हालत में कवि को कभी-कभी अपने कवि-हृदय की अभिव्यक्ति के लिए रामायण, महाभारत, बुद्धचरित आदि प्राचीन ग्रन्थों का सहारा लेना पड़ता है। जब जनता उन प्राचीन ग्रन्थों को भी अव-हेलना की दृष्टि से देखने लगे और परम्परागत संस्कृति को ही निकृष्ट समझने लगे तो बस, कवि लम्बी छुट्टी लेने के सिवा और क्या कर सकता है?

कविता देवी को शान्तस्वरूपिणी नहीं समझिये। उसका जो भी उपासक है उसकी करालता का अनुभव किये बिना नहीं रह सकता। अपनी उपासना करनेवाले की आजीवन कठोर-से-कठोर परीक्षा लेना ही कविता देवी का वरदान है। उसकी उपासना करने के लिए कवि को जीवित रहना पड़ता है, इतना भी नहीं जानती है वह देवी। ऐसी हालत में उसकी सतत आराधना करने की हिम्मत किसमें होगी? भारती के जैसे उसकी आराधना के लिए अपने अस्तित्व को ही मिटाकर उसके

चरणों में अपने-आपको अर्पित कर देने का निःस्वाथ अदम्य साहस कितने कवियों में हो सकता है ?

ऐसी दलीलों से आधुनिक पद्य-साहित्य की शोचनीय दशा का समाधान पेश करना मेरा उद्देश्य नहीं है। साहित्य-प्रेमियों को इस बात पर विचार करना है कि इस परिस्थिति को सुधारने के तरीके क्या हैं। तमिऴ की पत्र-पत्रिकाओं में कविता का प्रकाशन विरले ही होता है। दीपावली आदि अवसरों पर जो विशेष अंक छपते हैं उन्हीं में कविता प्रकाशन के लिए थोड़ी-सी जगह दी जाती है। इस आधार पर देखा जाय, तो एक साल में सभी पत्र-पत्रिकाओं में छपने वाली पद्य-रचनाओं की कुल संख्या साठ-सत्तर से अधिक नहीं होगी। इनमें से अच्छी कविता की कसौटी पर खरी उतरनेवाली रचनायें कितनी होंगी आप ही अनुमान लगा लीजिये। ऐसी हालत में कविता साहित्य की वृद्धि कैसे हो सकेगी ?

पत्र-पत्रिकाओं को चाहिये कि हर अंक में कविता प्रकाशन के लिये कम-से-कम दो-तीन पन्ने अलग कर रख दें और हर प्रकाशित रचना के लिए उचित पारितोषिक भी नियमित तौर पर दिया करें। तभी उदीयमान कवियों का उत्साह बढ़ेगा और उनकी लेखनी से उत्तम रचनायें निकल सकेंगी। कविता की स्फूर्ति जिस किसी में है वह एक पेशे के तौर पर कविता की रचना कर सके, ऐसी सुनहली परिस्थिति प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं के सहयोग से सम्भव हो सकती है।

समय-समय पर कवि-गोष्ठियों का आयोजन करके आकाशवाणी युवा कवियों को प्रोत्साहित करती आ रही है। ऐसी कवि-गोष्ठियों के द्वारा कम-से-कम कुछ कवियों के नाम तो सुनने में आते हैं न ! आकाशवाणी के सुगम संगीत विभाग के द्वारा भी उदीयमान कवियों को प्रोत्साहन मिलता आ रहा है।

● ● ●

तमिळ् का आधुनिक गद्य-साहित्य

श्री सालै इलन्तिरैयन्

तमिळ् गद्य के विकास के इतिहास का विषय बहुत विशाल है। एक प्रकार से उसका मूल ईसा पूर्व पाँचवीं शताब्दी तक पहुँचता है और इस प्रकार तमिळ् गद्य लगभग बीस शताब्दी में अपने वर्तमान रूप को पहुँचा है। कुछ कालों में उसकी खूब प्रगति हुई और कुछ अन्य कालों में उसने कोई विशेष विकास और प्रगति नहीं की। फिर भी, तमिळ् गद्य के इतिहास में शिलालेख, टीकाएँ, और सब विषयों की पुस्तकें आदि सम्मिलित हैं। उन्नीसवीं और बीसवी शताब्दियों में मंच पर किये भाषणों, रेडियो, नाटकों, पत्रिकाओं, समाचार-पत्रों के लिए और विज्ञान तथा तकनीकी विषयों की पुस्तकों आदि के लिए गद्य के माध्यम का उपयोग किया गया है, इसलिए इस छोटे निबन्ध में तमिळ् गद्य के समस्त इतिहास का पूरा विवरण देना सम्भव नहीं है। अब मैं संक्षेप में यह बतलाने का प्रयत्न करूँगा कि तमिळ् में गद्य शैली का विकास कैसे हुआ और इन वर्षों में उसने क्या सफलता प्राप्त की।

: १ :

मिस्टर विन्सलो ने, जिन्होंने कि सन् 1862 में तमिळ् अंग्रेज़ी कोष तैयार किया, तमिळ् गद्य के विषय में निम्नलिखित विचार प्रकट किये हैं :

"तमिळ् की गद्य शैली अभी तक निर्माणावस्था में है और विद्वान

लोग उसके गढ़ने में जो श्रम कर रहे हैं वह सफल होगा। बहुत से देश-वासी कविता तो बड़ी आसानी से लिख लेते हैं किन्तु शुद्ध गद्य का एक पृष्ठ भी नहीं लिख सकते।"

एक और पाश्चात्य विद्वान् मिस्टर जान मरडाक ने, जिन्होंने कि सन् 1885 में 'छपी तमिऴ पुस्तकों का विषयवार सूचीपत्र' तैयार करके प्रकाशित कराया था, निम्नलिखित शब्द लिखे थे :

"प्राय: सारा तमिऴ साहित्य, यहाँ तक कि आयुर्वेद, गणित और व्याकरण की पुस्तकें तथा कोष भी पद्य में हैं, इसमें अपवाद केवल काव्यों की टीकाएँ हैं।"

यह सच है कि सत्रहवीं शताब्दी से पहिले का कोई मौलिक तमिऴ गद्य ग्रन्थ नहीं मिलता, किन्तु तमिऴ में एक विशेष प्रकार का गद्य बहुत प्रारम्भिक काल से पाया जाता है। आज भी प्राप्त प्राचीनतम तमिऴ ग्रन्थ 'तोलकाप्पियम्' में गद्य शैली का भी जिक्र है। तमिऴ के प्रथम महाकाव्य 'शिलप्पदिकारम्' में कुछ पंक्तियाँ गद्य में हैं अत: वह महाकाव्य 'पद्य और गद्य में रचित महाकाव्य' कहलाता है। शिलालेख गद्य में है और इनमें प्राचीनतम ईसा की छठी शताब्दी के हैं। प्राचीन साहित्य की टीकाएँ भी गद्य में हैं। तमिऴ में सबसे पहिली टीका 'इरैयनार कलवियल' पर है, यह पुस्तक तमिऴ व्याकरण के 'अहम्' (प्रेमकाव्य) सम्बन्धी विभाग पर है। तमिऴ में कविता की विवेचना करने वाला अलंकार शास्त्र भी व्याकरण के अन्तर्गत है। यह टीका नक्कीरर नामक एक टीकाकार की लिखी हुई है जिसका काल दसवीं शताब्दी बतलाया जाता है। इसके अलावा इळम्पूरणर, पेरासिरियर, नच्चिनारकिनियर, अडियार्क्कु नल्लार, मणक्कुडवर और परिमेलळगर आदि अनेक टीकाकार हुए हैं। उन्होंने 'तोलकाप्पियम्', सब संगम ग्रन्थों और 'शिलप्पदिकारम्' तथा 'जीवक-चिन्तामणि' आदि महाकाव्यों पर टीकाएँ लिखीं। ये सब टीकाकार ग्यारहवीं और पन्द्रहवीं शताब्दी के मध्य में थे।

यद्यपि 'शिलप्पदिकारम्' के कुछ अंश, शिलालेख और सब टीकाएँ

गद्य में हैं, किन्तु हम यह नहीं कह सकते कि वे सभी वास्तविक अर्थ में या आजकल के प्रचलित अर्थ में गद्य में हैं। ठीक देखें तो वे सब गद्य और पद्य के बीच की एक शैली में हैं। उन सबको 'गद्यकविता' का एक नया नाम देना ठीक होगा। शैली और बन्ध में वास्तविक गद्य से भेद दिखलाने के लिए एक उदाहरण यहाँ देना उचित होगा।

यह उदाहरण पतिव्रता कण्णकी की अमर कहानी पर लिखे 'शिलप्प-दिकारम्' नामक महाकाव्य का है। इस उदाहरण का शाब्दिक अनुवाद निम्नलिखित है।

"जब समुद्र से घिरी हुई लंका के राजा गजबाहु को कण्णकी का माहात्म्य मालूम हुआ तो उसने सोचा कि वह सब कष्टों को दूर करके लोगों का कल्याण करेगी, इसलिए उसने उस देवी के मन्दिर बनवाये और आदेश दिया कि आषाढ़ मास में उन मन्दिरों में उत्सव किये जायँ। लोगों ने उस आदेश का पालन किया और बार-बार उत्सव किये जिसके फलस्वरूप नियम से वर्षा हुई, भूमि ने अच्छी फसल पैदा की और देश सुखसमृद्धि से सम्पन्न हो गया।"

शिखालेखों और टीकाओं की गद्य-शैली भी लगभग वही है। यद्यपि वे सब गद्य कहलाते हैं, वे कविता से अधिक मिलते-जुलते हैं। उनमें अनुप्रास, अन्त्यानुप्रास, अलंकार आदि सब वस्तुएँ कविता शैली की हैं। उनका रूप स्पष्टतः बतलाता है कि वे उस युग के हैं, जब कि तमिऴ् गद्य निर्माणावस्था में था।

: २ :

यह जानकर आपको आश्चर्य होगा कि तमिऴ् के प्रथम मौलिक गद्य का लेखक तमिऴ् भाषी नहीं था। इसका श्रेय पादरी रौबर्ट दि नोबिली को प्राप्त है जिसने कि सत्रहवीं शताब्दी के मध्य में 'यीशुक्रीस्त की जीवनी' लिखी। यह तमिऴ् का प्रथम मौलिक गद्य ग्रन्थ है।

इससे कुछ उत्तरकालीन कृति पांडिचेरी के आनन्दरंगम् पिल्लै की

डायरी है। वह फ्रांसीसी सरकार का दुभाषिया था। यह वस्तुतः व्यक्तिगत डायरी नहीं है। आनन्दरंगम् ने स्वयं लिखा है कि वह स्वयं प्रतिदिन क्लर्कों को बोलकर लिखाया करता था, और उसको तमिऴ का पर्याप्त ज्ञान नहीं था, इसलिए यह बोलचाल के तमिऴ गद्य में है।

तमिऴ गद्य के इतिहास में एक और उल्लेखनीय ग्रन्थ फादर बेस्की नामक इटली के मिशनरी का लिखा 'परमार्थगुरु की कथा' है। यह एक व्यंग्य कथा है जिसमें गुरु की अबोधता और अज्ञान को चित्रित करने वाली बहुत सी घटनाओं का वर्णन है।

इन सबके होते भी तमिऴ गद्य ने उन्नीसवी शताब्दी के प्रारम्भ तक पूर्णरूप नहीं प्राप्त किया था। काट-छाँटकर गद्य शैली को पूर्णता पर पहुँचाने का श्रेय सीलोन के महाविद्वान आरुमुग नावलर को मिलना चाहिए। वे 'आधुनिक तमिऴ गद्य के पिता' कहलाते है। उन्होने प्राचीन महाकाव्यों—विशेषतः पेरियपुराणम् की कथाओं को, जिसमें कि शैव सन्तों की सुन्दर जीवनियाँ हैं—पुनः नये ढंग से लिखा। पहले-पहल नावलर ने नये स्कूलों के लिए अलग-अलग श्रेणियों की पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं। उन्नीसवीं शताब्दी से पहले तमिऴ स्कूलों में नियमित पाठ्यक्रम नहीं था। विद्यार्थियों को तमिऴ के लघु-काव्य याद कराये जाते थे और पुराने ढंग से कुछ अकगणित भी सिखाया जाता था, जिसमें मुख्य भाग रटने का था। आरुमुग नावलर ने नयी श्रेणी-विभाजित पाठ्य-पुस्तकें तैयार कीं और विद्यार्थियों के लिए रोचक अलग-अलग श्रेणी के उपयुक्त निबन्ध और कहानियाँ लिखीं। उन्होंने विज्ञान और तकनीकी विषयों के सिवाय बाकी सभी विषयों पर लिखा। इस मेधावी विद्वान की गद्यशैली टीकाकारों की शैली से इतनी भिन्न है कि कोई भी आसानी से इस बात को नही मानेगा कि नावलर का गद्य 'टीकाकारों के गद्य' का ही सुधरा हुआ रूप है।

नावलर के ठीक बाद सन् 1876 में वीरासामि चेट्टियार ने 'विनोद-रस मंजरी' नाम से अपना निबन्ध संग्रह प्रकाशित किया। उसी वर्ष में

वेदनायकम् पिल्ले लिखित 'प्रताप मुदलियार चरित्रम' नामक तमिळ् का प्रथम उपन्यास प्रकाशित हुआ। इस उपन्यास के प्रथम संस्करण में अंग्रेजी की भूमिका में लेखक लिखता है :

"तमिळ् कविता ईसवी सन् के प्रारम्भ से ही विद्यमान है, किन्तु तमिळ् गद्य का आविर्भाव फादर बेस्की के समय से ही हुआ। काग़ज और प्रेस का अभाव भी गद्य लेखों के अभाव के लिए जिम्मेदार है। यदि हमारे प्राचीन लेखकों को भी वे सब सुविधाएँ प्राप्त होतीं, जो आज हमें प्राप्त हैं, तो हमारे पास बहुत सी गद्य कृतियाँ होतीं। यह उपन्यास मैंने तमिळ् में गद्य कृतियों के अभाव को पूरा करने के उद्देश्य से लिखा है। इस अभाव से सब कोई सहमत हैं और उसे अनुभव करते हैं।"

'प्रताप मुदलियार चरित्रम' को पढ़कर कोई भी इस बात को मान लेगा कि वेदनायकम पिल्लै अपने उद्देश्य में सफल हुए हैं। यह उपन्यास यद्यपि लगभग एक शताब्दी पहले प्रकाशित हुआ था, आज भी उसे पढ़कर उसका रसास्वादन किया जा सकता है। श्री पिल्ले को अपनी मातृभाषा के लिए कुछ करने की सच्ची आकांक्षा थी, और यह उपन्यास उसी का परिणाम है।

श्रीवेदनायकम् पिल्लै ने गद्य कथा के बारे में अपने विचार इस उपन्यास के एक पात्र के मुख से भी व्यक्त कराये हैं। उपन्यास की नायिका कहती है—"फ्रेन्च और अंग्रेजी आदि पश्चिमी भाषाओं में अनेक गद्य-ग्रन्थ हैं, किन्तु भारतीय भाषाओं में उनका अभाव है। गद्य-कथा-ग्रन्थों द्वारा ही पश्चिमी देशों के लोग सभ्य और सुसंस्कृत बने। हमें यह याद रखना चहिए कि हमारे काव्यों को साधारण जन आसानी से नहीं समझ सकते और यह हमारा कर्तव्य है कि हम गद्य रचना द्वारा अपनी भाषाओं की इस कमी को पूरा करें। जब तक कि इस महत्वपूर्ण विषय में हमारी उपेक्षावृत्ति रहेगी, हमारे समाज में असली सुधार नहीं हो सकता।"

गद्य कथा के विषय में वेदनायकम् पिल्ले के जो विचार थे उनके

परवर्ती लेखकों, राजम् ऐयर और माधवय्या के भी वही विचार थे। राजम् ऐयर लिखित 'कमलाम्बाळ्चरित्रम्' और माधवय्या लिखित 'पद्मावती चरित्रम्' इन दो उपन्यासों ने तमिळ में इस नयी साहित्य शैली को स्थान दिलाया। वेदनायकम् पिल्लै का 'प्रतापमुदलियार चरित्रम्' एक उद्देश्य को दृष्टि में रखकर लिखा गया नैतिक कथाओं का एक हार मात्र था। राजम् अय्यर और माधवय्या के हाथों तमिळ उपन्यास ने अपना उचित स्थान प्राप्त किया। राजम् अय्यर के गद्य में गम्भीरता है, और यद्यपि उन के उपन्यास में उपदेशों की भरमार है, उन्होंने मानवता और अपने लक्ष्य की एकता को कभी नहीं भुलाया। प्रत्येक तमिळ भाषी इस उपन्यास की प्रशंसा किये बिना नहीं रहेगा, क्योंकि लेखक ने यह उपन्यास केवल 24 वा 25 वर्ष की उम्र में लिखा और 26 वर्ष की उम्र में उसका स्वर्गवास हो गया। माधवय्या के उपन्यासों मे सामाजिक कमजोरियों के प्रति प्रतिवाद की आवाज उठायी गयी है और इसलिए चरमबिन्दुओं पर प्राय: एक वा दो पात्रों के उपदेशात्मक भाषण हैं।

इन तीन उपन्यासों से और कुछ एक अन्य उपन्यासों से, जिनका उतना महत्व नहीं है, आधुनिक तमिळ गद्य के विकास के प्रथम चरण का इतिहास समाप्त हो जाता है। शैली, विषयों के चुनाव तथा उनके प्रतिपादन में इस युग की गद्य कृतियों की अपनी विशेषताएँ थीं। इन तीनों ने तमिळ में उपन्यासों का श्रीगणेश किया। किसी भी क्षेत्र में अग्रगन्ताओं की जिम्मेदारियां अनुयायियों से अधिक होती हैं। उनकी जिम्मेदारी कोई नयी वस्तु लिखने वा किसी नयी शैली को अपनाने से ही समाप्त नहीं होती। उनको इस बात का भी यत्न करना पड़ता है कि उन्होंने साहस करके जिस नये मार्ग पर कदम रखा है जनता आसानी से उसे ग्रहण कर ले। इन लेखकों का उद्देश्य यह था कि प्राचीन महान ग्रन्थों और दर्शन की पुस्तकों में निहित उच्च विचारों तक साधारण जनों की पहुँच हो जाय, क्योंकि अब तक ये साधारण जन उपेक्षित रहे थे। शायद इसीलिए इन लेखकों ने ऐसे तमिळ गद्य में लिखना पसन्द किया, जो

बोलचाल की बोली के बहुत निकट था। उसमें बहुत सी कहावतें भी हैं। और इसीलिए वे बहुधा, कोई-सा भी विषय क्यों न हो, हास्यात्मक ढंग से लिखना पसन्द करते थे। यदि किसी विषय पर हास्यात्मक ढंग से न लिखा जा सके तो वे हास्यात्मक उपकथाएँ जोड़ देते थे। जैसा कि हम पहले कह चुके हैं, राजम अय्यर का 'कमलाम्बाळ चरित्रम्' गम्भीर ढंग का उपन्यास है। इस उपन्यास का एक पात्र अम्मैयप्प पिल्लै नामक एक तमिळ पंडित है। अपवादस्वरूप थोड़े से स्थलों के सिवाय जब कभी अम्मैयप्प पिल्लै उपन्यास में आता है तो उच्च हास्य—केवल हास्य ही हास्य होता है। उदाहरणार्थ एक घटना यहाँ दी जाती है। अम्मैयप्य पिल्लै गम्भीर प्रकृति का व्यक्ति था, उसके भाषण में कोमलता वा माधुर्य का बिलकुल अभाव था। एक दिन वह रामायण पर भाषण कर रहा था, राम और सीता के विवाह का प्रसंग था। पिल्लै प्रसंग के अनुकूल अपना स्वर नीचा नहीं कर सका। वह कठोर स्वर में चिल्लाकर बोला, राम ने सीता से विवाह किया, और सीता राम की पत्नी बन गयी। श्रोताओं में से एक राम का परम भक्त था। उसको गुस्सा आया और उसने उठकर पूछा, "इस बात को पूछनेवाले तुम कौन होते हो ? राम सीता को ब्याहेंगे और सीता राम की पत्नी बन जायंगी। तुम्हारा इससे क्या सरोकार है ? क्या तुम समझते हो कि तुम इस विवाह को रोक सकते हो ?" अम्मय्यप्प पिल्लै ने कुछ कहने का प्रयत्न किया किन्तु भक्त ने उसकी बात नहीं सुनी। उसने झट मंच पर चढ़कर पिल्लै को पकड़ लिया। तब लोगों ने बीचबिचाव करके दोनों को शान्त किया और व्याख्यान वहीं समाप्त हो गया। परिणाम यह हुआ कि अम्मैयप्प पिल्लै ने अपने स्कूल से बाहर किसी भी विषय पर व्याख्यान देना छोड़ दिया।

'प्रतापमुदलियार चरित्रम्' से एक और रोचक प्रसंग यहाँ विस्तार से दिया जाता है।

इस उपन्यास के नायक और नायिका प्रताप मुदलियार और

ज्ञानाम्बाळ अपने घर में ही एक अध्यापक से शिक्षा प्राप्त कर रहे थे। प्रतापमुदलि बहुत मन्द बुद्धि था, उसे वर्णमाला भी याद नहीं होती थी। एक दिन अध्यापक ने उससे पूछा कि तमिळ में कितने स्वर और कितने व्यंजन हैं। प्रताप मुदलि इस विषय में कुछ नहीं जानता था, किन्तु उसे कुछ-न-कुछ उत्तर देना ही चाहिए था, अतः उसने कहा कि स्वर पचास हैं और व्यंजन सौ हैं। अध्यापक ने उससे ज्ञानाम्बाळ से पूछने को कहा। प्रताप घर के भीतर गया और वहाँ उसने ज्ञानाम्बाळ से पूछा कि तमिळ में स्वर और व्यंजन कितने-कितने हैं? वह बोली कि स्वर बारह हैं और व्यंजन अठारह।' प्रताप मुदलि ने घृणा-मिश्रित मुस्कराहट के साथ उत्तर दिया, "तुम यह कहते हुए अपनी बात को ठीक कैसे समझती हो? मैने पचास और सौ बतलाया और गुरुजी ने नहीं माना। क्या तुम समझती हो कि गुरुजी तुम्हारे बताये बारह और अठारह को मान लेंगे?"

इन लेखकों की कृतियों में इसी ढंग के अनेक हास्य प्रसंग हैं। उनका विचार था कि इसी तरीके से वे सामान्य जनों में नयी साहित्य-शैली के प्रति रुचि उत्पन्न कर सकते हैं और उनका यह प्रयत्न विफल नहीं हुआ। इन लेखकों ने तमिल गद्य के भावी विकास के लिए अच्छी तरह भूमि तैयार कर दी।

: ३ :

गद्य के विकास का दूसरा चरण इस शताब्दी की प्रथम दशाब्दी से आरम्भ होता है, जबकि हमारे राष्ट्रीय कवि सुब्रह्मण्य भारती और उनके साथी हमारे सामने आते हैं। यह आधुनिक तमिळ के निर्माताओं की दूसरी मण्डली है। यह वह युग था जब कि देश ने स्वातन्त्र्य-युद्ध के योद्धाओं की पुकार सुनी और उनके मार्ग पर चलना शुरू किया। भारती तथा वी० वी० एस० अय्यर और वी० ओ० चिदम्बरम् पिल्लै सरीखे उनके मित्र साहित्य संसार में 'स्वातन्त्र्य मनुष्य का जन्मसिद्ध

अधिकार है' के नये नारे के साथ आविर्भूत हुए। साधारण जनों के दिमाग में इस भाव को भरने के लिए उन्हें साहित्य की सब विधाओं का उपयोग करना पड़ा। जनता को राजनीति तथा अन्य आधुनिक विषयों की शिक्षा देना भी इस युग में आवश्यक था।

इसी युग में हमें विद्वानों की एक और मण्डली के भी दर्शन होते हैं। तमिऴ गद्य के विकास के लिए उनकी देन भारती मण्डली की देन से बिलकुल भिन्न थी। इनमें से एक सिंगार वेलु मुदलियार थे, जिन्होंने 'अभिधानचिन्तामणि' नामक एक कोष का संग्रह किया। यह एक विशेष प्रकार का कोष है। इसमें विभिन्न विषयों पर परिच्छेद हैं। इस पुस्तक में विवेचित विषयों में दर्शन, पौराणिक कथाएँ, धर्म, इतिहास, वैद्यक, ज्योतिष, प्राणिशास्त्र आदि हैं। यह पुस्तक सन् 1910 में प्रकाशित हुई थी। एक और प्रसिद्ध विद्वान् डॉक्टर यू० वी० स्वामिनाथ अय्यर थे, जिन्होंने अधिकांश प्राचीन तमिऴ ग्रन्थों का सम्पादन कर उन्हें प्रकाशित किया। यद्यपि वे एक योग्य सम्पादक के रूप में प्रसिद्ध हैं, वे सुन्दर गद्य लेखक भी थे। उन्होंने प्राचीन साहित्य की आलोचना-सम्बन्धी निबन्धों के सिवाय दो जीवनियाँ और अपने आत्मचरित का कुछ अंश लिखा। उनके आत्मचरित में एक सौ वर्ष से अधिक की साहित्य तथा कला के क्षेत्रों में तमिऴनाडु की प्रवृत्तियों का प्रामाणिक व्यौरा है।

इन विविध प्रवृत्तियों के कारण तमिऴ गद्य में सरल और स्पष्ट शैली का विकास हुआ। उन राजनीतिक नेताओं ने भी, जो पहले अंग्रेज़ी में व्याख्यान दिया करते थे, अपना ढंग बदलकर अब तमिऴ में व्याख्यान देना आरम्भ कर दिया।

तमिऴ के राजनीतिक मंच, समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं का परिचय देते समय हम बहुत हद तक तमिऴ गद्य शैली का निर्माण करने वाले दो प्रभावशाली व्यक्तियों को नहीं भुला सकते। वे हैं तिरु० वि० कल्याणसुन्दर मुदलियार और सुप्रसिद्ध पार्लिमेंटेरियन सत्यमूर्ति। तिरु० वि० क० तमिऴ विद्वान् होने के साथ-ही-साथ राजनीतिज्ञ भी थे। वे

जैसे बोलते थे, वैसे ही लिखते थे, और जैसे लिखते थे वैसे ही बोलते थे, किन्तु इसका मतलब यह नहीं है कि वे बोलने और लिखने में ग्रामीण भाषा का प्रयोग करते थे। उनकी शैली व्याकरण की अशुद्धियों मे रहित, शुद्ध और सरल होती थी, और दूसरा कोई उसका अनुकरण नहीं कर सकता। उन्होंने बहुत-से ऐसे पुराने शब्दों का प्रयोग चलाया, जिनका रिवाज उठ गया था, और कुछ नये सुन्दर शब्द भी गढ़े। वे दो पत्र 'नवशक्ति' तथा 'देशभक्तन्' नामक चलाते थे। ये दोनों पत्र तमिऴ पत्रकारिता में मार्गदर्शक थे।

ऊपर दिये विस्तृत परिचय से ज्ञात होगा कि तमिऴ गद्य शैली को आज के सुसंस्कृत रूप तक पहुँचने में लगभग 80-90 वर्ष लगे। 'आज' से मेरा मतलब गत 35-40 वर्षों की अवधि से है, जिसमें कि हमने सब विषयों और आधुनिक साहित्य की सब शाखाओं पर पुस्तकों का निर्माण किया है।

हम पहले ही देख चुके हैं कि उन्नीसवीं शताब्दी की अन्तिम दशाब्दी में तमिऴ उपन्यास ने अपना उचित स्थान प्राप्त किया। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में भी कई उपन्यास प्रकाशित हुए, किन्तु उनमे से अधिकांश उच्च कोटि के नही थे। वे मुख्यत: अंग्रेज़ी व फ्रेंच से अनुवादित वा उनपर आधारित थे। इस शताब्दी की प्रथम दो दशाब्दियों में नटेश शास्त्री और आरणि कुप्पुस्वामी मुदलियार के उपन्यासों का एकाधिपत्य था और तीसरी दशाब्दी वडुवूर दुरैस्वामी और जे० आर० रंगराजु के जासूसी उपन्यासों के लिए प्रसिद्ध थी। इन लेखकों के लिए उपन्यास केवल मन-बहलाव का साधन था। यद्यपि इन लेखकों की कृतियों ने पाठकों की रुचि के परिमार्जन का कार्य बहुत कम किया, किन्तु उन्होंने तमिऴ पाठकों की संख्या बढ़ायी, जब कि उन दिनों तमिऴ की पुस्तकें पढ़ने को नीची निगाह से देखा जाता था।

1900 से 1930 तक की लगभग 30 वर्ष की कालावधि में तमिऴ उपन्यास ने अपने ध्येय की गम्भीरता खो दी थी। सन् 1935 के लग-

भग ऐतिहासिक और सामाजिक विषयों पर उपन्यास लिखने वाले कुछ और उपन्यासकारों का उदय हुआ। उनमें सबसे प्रसिद्ध आर० कृष्णमूर्ति है। लोग प्राय: उन्हें 'कल्कि' के उपनाम से अधिक जानते हैं। उनका पहला उपन्यास 'त्यागभूमि' और कुछ बाद की कृति 'अलै ओमै' तत्कालीन जीवन के आकर्षक भावचित्र हैं, किन्तु अधिकांश पाठकै उनको ऐतिहासिक उपन्यासों के सर्वोत्तम लेखक के रूप में जानते हैं। उनका 'पार्तिबन कनवु (पार्तिबन का स्वप्न) और 'शिवगामियिन् सबदम्' (शिवगामी का प्रण) पल्लवों के इतिहास पर आधारित हैं और 'पोन्नियिन् सेल्वन्' चोळ इतिहास पर आधारित है। इन सब कहानियों में उन्होंने साहित्य और कला के क्षेत्रों में उन राजाओं के कार्यों को प्रदर्शित करने का प्रयत्न किया है।

एस० वी० वी० एक और लोकप्रिय उपन्यासकार थे। प्रत्येक बात में वे प्राचीन व्यवस्था को पसन्द करते थे। प्राचीन से नवीन का वैषम्य दिखलाते हुए वे सदा प्राचीन की ओर झुकते थे। उनके लिखित 'राजामणि', 'राममूर्ति' और 'गोपालन् आई० सी० एस०' नामक उपन्यास एस० वी० वी० की भावनाओं के उज्ज्वल निदर्शन हैं। ये सब उपन्यास माता-पिता और पुत्रों के बदलते हुए सम्बन्धों और घरेलू परिस्थितियों में आते हुए परिवर्तनों के सब स्वरूपों को चित्रित करते हैं। सब जगह उन्होंने यह दिखलाया है कि प्राचीन ढंग ही श्रेष्ठ थे।

एक और उत्तम कोटि के उपन्यासकार शंकर राम (टी० एल० नटेसन्) हैं। उनका 'मण्णासै' (धूलि का प्रेम) तमिल के सर्वोत्तम उपन्यासों में है। उन्होने ग्रामीण दृश्य और ग्रामीण के भूमिप्रेम का सुन्दर जीता-जागता चित्र खींचा है।

कुछ उपन्यासों में बहुधा घरेलू स्थितियों का सफ़ाई से और प्रभावोत्पादक ढंग से उपयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त आधुनिक और सुसंस्कृत मानवी बरताव की ओर भी संकेत किया गया है। ऐसे 'घरेलू

उपन्यासों के कुछ लेखक देवन, टी० एन० कुमारस्वामी, राजम् कृष्णन्, अकिलन्, पी० एम० कण्णन् और अनुत्तमा हैं।

आर्वी, अकिलन्, सोमू और नारण दुरैकण्णन् घरेलू स्थितियों पर क्रान्तिकारी दृष्टिकोण से लिखते हैं। उनकी कथावस्तुओं का आधार साधारणतः सामाजिक कुरीतियों, हरिजनोद्धार, विधवा-विवाह, साम्य-वाद वा राष्ट्रीय क्रान्ति होता है। नारण दुरैकण्णन् अपने 'उयिरो-वियम्' (जीवनचित्र) नामक उपन्यास के प्रकाशन से लोकप्रिय बन गये। इसमें एक युवक प्रेमि-युगल की कथा है, जिसने वर्तमान सामाजिक प्रथाओं की बलिवेदी पर अपने हितों का बलिदान कर दिया। वे गल्प के क्षेत्र में भी सुविख्यात है। उन्होंने रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, महात्मा गांधी आदि महापुरुषों और अन्य राजनीतिक नेताओं की छोटी-छोटी जीवनियाँ लिखी है, जो कि साधारण जन के लिए स्फूर्ति का स्रोत थीं।

चिदम्बर सुब्रह्मण्यं लिखित 'इदयनादम्' (हृदय की आवाज़) एक गायक की घटनात्मक जीवनी है। इस उपन्यास में अपनी कला की अक्षुण्णता की रक्षा के लिए एक कलाकार के अन्तर्द्वन्द्वों का अत्यन्त आदर्शमय चित्र है। जानकी रामन् के 'मोहमुळ्' (मोहकंटक) में भी एक संगीतकार की जीवनी है। क० ना० सुब्रह्मण्यं ने भी कुछ उपन्यास लिखे हैं। उनके उपन्यास यूरोप से अनुप्राणित परम्परा के हैं। अपनी अधिकांश कृतियों में उन्होंने व्यक्ति को वर्तमान परिस्थिति में आजकल के बढ़ते हुए भौतिकवाद से संघर्ष में चित्रित किया है।

डॉ० वरदराजन् तमिळ् के सर्वोच्च उपन्यासकारों में हैं। उन्होंने लगभग एक दर्जन उपन्यास लिखे हैं, जिनमें से यहाँ 'कल्ळो कावियमो ?' 'अहलविळक्कु', 'मणकुडिसै' और 'मलरविळि' का नाम निर्देश करना चाहिए। गत वर्ष 'अहलविळक्कु' को 'साहित्य अकादेमी' का पुरस्कार प्राप्त हुआ था। उनकी शैली बहुत सरल है और उनके उपन्यासों ने तमिळ् के वर्णनात्मक कथा-साहित्य में ओज भर दिया है। उन्होंने लगभग 75

पुस्तकें लिखी हैं, जो कि उपन्यास से लेकर भाषाशास्त्र तक के विषयों पर हैं। महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ ठाकुर और बर्नार्ड शा की उनकी लिखित जीवनियों की गणना तमिळ की सुलिखित पुस्तकों में है।

नाटक के क्षेत्र में तमिळ में यद्यपि लगातार प्रयत्न हुए है, किन्तु हम अच्छी सफलता का दावा नहीं कर सकते। कुछ सामाजिक और अर्धैतिहासिक नाटकों के सिवाय शौकीन तथा पेशेवर अभिनेताओं द्वारा अभिनीत सब नाटक उच्चकोटि तक नहीं पहुँचे।

तमिळ का आधुनिक नाटक साधारणतः शेक्सपीयर के नाटकों के नमूने पर तैयार किया गया था। उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम वर्षों तथा बीसवीं शताब्दी की पहली तथा दूसरी दशाब्दियों में शेक्सपीयर तथा अन्य पाश्चात्य लेखकों से अनुवाद हुए अथवा उन पर आधारित नाटक लिखे गये। इससे पहले नाटक कविता में रचे जाते थे और उनमें बहुत-से गाने होते थे। पहला पूर्णतः स्वलिखित नाटक पी० सम्बन्धमुदलियार कृत 'लीलावती सुलोचना' है। यह सन् 1891 में लिखा गया, प्रकाशित हुआ तथा अभिनीत हुआ। श्री पी० एस० मुदलियार आधुनिक तमिळ नाटक के पिता कहलाते हैं। उन्होंने लगभग 75 नाटक लिखे हैं, जिनमें कुछ शेक्सपीयर के अनुवाद है। नवाब राजमाणिक्कम ने कई नाटकों का अभिनय किया है। उनमें की अधिकांश कथा-वस्तुओं का आधार पुरानी परम्परागत कथाएँ हैं। उनके 'जीसस क्राइस्ट' और 'श्री अय्यप्पन्' का विशेषतः उल्लेख करना चाहिए।

सुप्रसिद्ध टी० के० एस० ब्रदर्स, सेवा रंगमंच और कुछ अन्य नाटक-मण्डलियों ने भी कुछ उत्तम नाटक तैयार किये हैं। उनमें टी० के० एस० ब्रदर्स द्वारा अभिनीत 'राजराजचोळन्' (अरु० रामनाथन् लिखित एक ऐतिहासिक नाटक), 'मनिदन्' (आति सुन्दरम् लिखित एक सामाजिक नाटक जिसका अर्थ है मनुष्य) तथा अव्वैयार, के० आर० रामस्वामी नाटक सभा द्वारा अभिनीत 'एक रात्रि' नामक सी० एन० अन्नादुरै लिखित सामाजिक नाटक, शिवाजी गणेशन् का 'वीर पांडिय कट्टबोम्मन्' नामक

ऐतिहासिक नाटक और सेवा रंगमंच का वी० एस० रामय्या कृत 'तेरोट्टिमगन्' (सूतपुत्र) अच्छी कोटि के नाटक हैं ।

तमिल में अन्य भाषाओं के समान रेडियो-रूपक नाटक का एक नया प्रकार है । अकिलन्, सोमु, तुरैवन्, सुकि सुब्रह्मण्यन्, पूवै आरुमुगम्, नारण दुरैक्कण्णन् और कोविमणिसेखरन् आदि कुछ गल्पलेखकों ने इस क्षेत्र में अच्छी सफलता प्राप्त की है ।

पूर्णम् विश्वनाथन् और गोमती स्वामिनाथन ने कुछ हास्य रसात्मक एकांकी नाटक लिखे हैं जिन्हें पत्रिकाओं के पाठक पढ़ते हैं और पसन्द करते हैं ।

तंगरासु लिखित तथा श्रेष्ठ अभिनेता एम० आर० राधा द्वारा अभिनीत 'रत्तकण्णीर' (खून के आँसू) शायद तमिळ का एकमात्र उच्च कोटि का व्यंग्यात्मक नाटक है । अकिलन् का 'वाळविल इन्बम्' सामाजिक प्रथाओं के बदलते हुए रूप पर व्यंग्य है, किन्तु वह बहुत ही हलके ढंग का है । हमें आजकल कभी-कभी अच्छे नाटक देखने को मिलते हैं और उज्ज्वलतर भविष्य की आशा है ।

तमिळ के कथा-साहित्य का सबसे अधिक सुविकसित प्रकार लघुकथा वा गल्प है । तमिळ में लघुकथा को जन्म देने वाले उसके महान् आचार्य वी० वी० एस० अय्यर हैं । तमिळ के सर्वश्रेष्ठ गल्प लेखकों में एक 'पुदुमै पित्तन' हैं । लेखक का यह उपनाम है जिसका अर्थ है 'नवीनता के लिए पागल' । किन्तु वे प्राचीनों में प्राचीनतम और भविष्य में सुदूरतम थे । कोई भी बात ऐसी न थी जो उनकी दृष्टि में अति पवित्र हो, वा अति अपवित्र हो । वे बड़े साहस के साथ, बिलकुल बिना डरे पुराने प्रचलित विचारों को नये ढंग से तोड़मरोड़ देते थे । 'शापविमोचनम्' नामक अपनी एक कथा में उन्होंने राम के बरताव में भेदभाव की निन्दा की है । राम के दैवी अनुग्रह से अपने पति के शाप से पत्थर बनी हुई अहल्या को पुनर्जीवन प्राप्त हुआ । राम का कोमल हृदय इतना विशाल था कि उसने अनजाने में मार्गभ्रष्ट हुई स्त्री को क्षमा कर दिया ।

किन्तु, फिर जब अहल्या ने सुना कि वही राम सीता को स्वीकार करने को तैयार नहीं है तो वह फिर पाषाणी हो गयी है। अहल्या के लिए कुछ और तथा सीता के लिए कुछ और यह भेदभाव उसकी समझ में नहीं आया।

एक और कहानी है 'ईश्वर तथा कन्दस्वामी पिल्लै'। परमेश्वर इस भूलोक में आते हैं और अपने बनाये मानवों के स्वभावों और जीवन को अपनी आँखों से देखना चाहते हैं। यहाँ उनकी कन्दस्वामी पिल्लै से भेंट और परिचय होता है। कन्दस्वामी पिल्लै उनका नाम बदलकर परमेश्वरन पिल्लै रख देता है। कहानी में इन दोनों की देखी बहुत-सी बातों का वर्णन है। ईश्वर को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मैंने तो 'काफी' बनाई थी और यहाँ उसके स्थान पर 'चिकोरी' है। कुछ काल के पश्चात् ईश्वर कुछ समय के लिए इस भूलोक में बस जाना चाहते हैं, किन्तु यहाँ उनके पास गुज़र का कुछ साधन होना चाहिए। कन्द-स्वामी पिल्लै की सलाह से देवी परमेश्वरी को भी वे अपने पास भूलोक में ही बुला लेते हैं। वे एक नाटक सभा के अध्यक्ष के पास जाकर उससे एक नाटक का प्रबन्ध करने को कहते हैं। वह भगवान और देवी के अभिनय का नमूना देखकर उस पर अपनी सम्मति यों प्रकट करता है :—

"यह क्या कूड़ा कचरा है। यह तो बोर्नियो के असभ्य जंगलियों के भूतनृत्य जैसा है। मेरे मित्र, कला के लिए सौन्दर्य और लावण्य चाहिए। तुम तो अपने बाघम्बर और साँपों के भूषणों से दर्शक वृन्द को डरा दोगे। यदि तुम स्वयं परमेश्वर और पार्वती भी हो तो भी तुम्हें हमारा दर्शकवृन्द पसन्द नहीं करेगा।"

अब भगवान यह समझ जाते हैं कि इस मर्त्यलोक में उनका निबाह नहीं होगा। वे अपने मित्र कन्दस्वामी पिल्लै से स्वीकार करते हैं कि "मैं दूर रहकर तुमको अनेक वर दे सकता हूँ, किन्तु तुम्हारे साथ रह नहीं सकता।" कन्दस्वामी पिल्लै उत्तर देता है, "आप और आपके जाति वाले केवल इतना ही करना जानते हैं।"

किन्तु पुदुमैपित्तन का एक और रूप भी था, जो कि परम्परा और रूढि से चली आने वाली बातों को स्वीकार करता था। 'रज्जुसर्प' नामक एक कथा में वे समय के भ्रामक रूप का विश्लेषण करते हैं। वे कहते हैं, "भूत, वर्तमान और भविष्य सब 'अहम' की भावना की चंचल नींव पर बने हुए हैं। यदि 'अहम' का अस्तित्व नहीं तो 'समय' का भी नहीं।"

इनके अलावा पुदुमैपित्तन ने हमारे दैनिक जीवन में दिखायी देने वाली क्षुद्रता, क्रूरता और अन्याय का सजीव और याद रखने योग्य चित्रण किया है।

कु० प० राजगोपालन् पुदुमैपित्तन के समकालीन थे। वे दार्शनिक वा वादात्मक किसी सिद्धान्त के प्रचार के उद्देश्य वाली कथावस्तु की अपेक्षा प्रेमविषयक कथावस्तु को अधिक पसन्द करते थे। पति-पत्नी के सम्बन्ध के विषय की विवेचना में उन्होंने जो सफलता प्राप्त की है वह वस्तुत: प्रशंसनीय है। वे उच्चकोटि के रोमांस लेखक थे। एक और सुप्रसिद्ध गल्प लेखक पिच्चमूर्ति आदर्शवादी हैं। उनकी अधिकांश कृतियों में मनुष्य की उन्नति को चित्रित करने की प्रवृत्ति है। बी० एस० रामय्या तमिळ के सबसे अधिक लिखने वाले गल्पकारों में से हैं। उन्होंने गल्पलेखन के प्रत्येक ढंग पर लिखने का प्रयत्न किया है।

तमिळ में बीसों गल्पकार हैं जिनमें से टी० जानकीरामन्, ति० जे० रंगनाथन्, चिदम्बर रघुनाथन्, सोमु और अकिलन् का योगदान अधिक महत्त्वपूर्ण है।

आजकल उपन्यास और गल्प ये दो साहित्य के लोकप्रिय रूप हैं। इनके अलावा निबन्ध, यात्रावृत्तान्त, जीवनी, आत्मचरित और आलोचना भी हैं। केवल उपन्यास और गल्प के आधार पर ही किसी भाषा की उन्नति को नहीं परखा जा सकता। हम विज्ञान और तकनीकी युग में रहते हैं, और हमें अपनी भाषाओं को आधुनिक विचारों से समृद्ध करना है।

हम डॉ० यू० वी० स्वामिनाथय्यर के आत्मचरित का उल्लेख पहले ही कर चुके है। साहित्य के इस विभाग में तिरु० वि० क० का आत्म-चरित एक श्रेष्ठ ग्रन्थ है। नामक्कल रामलिंग ने भी, जो कि कुछ समय तक मद्रास राज्य के आस्थान कवि (राज्यमान्य कवि) थे, आत्मचरित लिखा है। कि० चन्द्रशेखरन् ने अपने पिता की जीवनी लिखी है। समस्त भारत के, और विशेषत: तमिळनाडु के सभी राजनैतिक नेताओं की जीवनियाँ प्रकाशित हुई हैं। व० रामस्वामी अय्यंगार लिखित महा-कवि भारती, एम० पी० शिवज्ञानम् कृत वी० ओ० चिदम्बरम और कट्टबोम्मन की जीवनियाँ, सोमले कृत पडितमणि कदिरेशन चेट्टियार की जीवनी और एम० एस० सम्बन्धन लिखित के० ए० पी० विश्वनाथन् की जीवनी ये कुछ पुस्तकें है जिन पर तमिळ भाषा गर्व कर सकती है।

यात्रावृत्तान्त के क्षेत्र में ए० के० चेट्टियार के महाद्वीपों में अपनी यात्राओं के संस्मरण और सोमले की यात्रा सम्बन्धी पुस्तकें उल्लेख-योग्य हैं। सोमसुन्दरम् के 'विदेश में' और केन्द्रीय मन्त्री सी० सुब्रह्मण्यम् के हिन्दी में अनूदित 'मेरे देखे कुछ देशों की झलक' तथा 'दुनिया की सैर' यात्रा-वृत्तान्तों का भी अवश्य उल्लेख करना चाहिए।

आधुनिक गद्य का एक और प्रमुख विभाग है प्राचीन प्रौढ़ साहित्य पर टीकाएँ और विस्तृत व्याख्यान। डॉ० एम० वरदराजन्, के० वी० जगन्नाथन् और स्वर्गवासी डॉ० आर० पी० सेतुपिल्लै इस क्षेत्र के महान् आचार्य हैं। उन्होंने संघम् साहित्य के विविध पहलुओं पर दो सौ पुस्तकें लिखी हैं। उनकी सफलता का रहस्य उनकी सजीवता, सरल शैली और साहित्यिक सौन्दर्य में है।

इस शताब्दी में देश की आज़ादी से पूर्व के युग में गद्यलेखन का यह बहुत संक्षिप्त ब्योरा है। इस साहित्य की मुख्य प्रवृत्ति परिवर्तन की प्रेरणा और हमारे विगत वैभव की जिज्ञासा की है। स्वतन्त्रता के योद्धाओं ने विदेशियों के विरुद्ध युद्ध के लिए जनता को तैयार करने के वास्ते उससे कहा कि हम महापुरुषों के वंशज हैं। हमारे पूर्वज महान्

थे। इसके साथ-ही-साथ उन्होंने पुरानी व्यवस्था और आदर्शों की परीक्षा करने में सकोच नहीं किया। जहाँ कहीं उन्हें गन्दगी दिखायी दी उन्होंने साहसपूर्वक उसकी आलोचना की। कोई बात भी केवल पवित्र समझे जाने के विचार से उनकी आलोचना से नहीं बच सकी। समाज और उसका कल्याण उनकी दृष्टि सर्वोपरि थे। यदि किसी बात को उन्होंने असामयिक और वर्तमान समाज के अनुपयुक्त पाया तो उन्होंने उसके विरुद्ध आवाज़ उठायी।

उनकी आवाज़ व्यर्थ नहीं गयी। हम देखते हैं कि हमारा समाज बहुत हद तक बदल गया है। जैसे कि भारती कहते हैं, जो स्त्री-शिक्षा का विरोध करते थे, वे अब दिखायी नहीं देते, जो समझते थे कि जाति-प्रथा को अक्षुण्ण रखना चाहिए, व भी अब दिखायी नहीं देते।

: ४ :

गत पन्द्रह वर्षों की गद्य रचनाएँ स्वाधीनता के बाद के युग का साहित्य हैं। यह साहित्य परिमाण तथा वैविध्य दोनों दृष्टियों से बड़ा है। इसने हमारी साहित्य-परम्परा में कोई योगदान किया है कि नहीं, इस प्रश्न का उत्तर तो भावी पीढियाँ ही देंगी। फिर भी यदि मैं हाल ही में प्रकाशित हुई कुछ उत्तम पुस्तकों का उल्लेख न करूँ तो मैं अपने विषय के प्रति पूरा न्याय नहीं करूँगा।

"क्या तुम्हें अच्छी तमिऴ लिखनी चाहिए" इस नाम की एक बिलकुल आधुनिक व्याकरण पुस्तक है। यद्यपि इस शताब्दी के प्रारम्भ से तमिऴ व्याकरण को सरल और आधुनिक ढंग का बनाने के लिए अनेक प्रयत्न किये गये हैं, प्रोफेसर ए० के० परन्तामन्नार लिखित इस पुस्तक के प्रकाशन से ही तमिऴ विद्वानों की चिरकालीन आकांक्षा पूरी हो सकी। वह तमिल में प्रारम्भ करने वाले के लिए और साथ ही अधिकांश आधुनिक तमिऴ लेखकों के लिए जो कि साधारणतः तमिऴ व्याकरण का क ख ग नहीं जानते बहुत उपयोगी पुस्तक है।

पुदुमैपित्तन की जीवनी (पुदेमैपित्तन वरलारु) तमिऴ् में साहित्य के इस विभाग के लिए उल्लेख योग्य देन है। हम यह भी कह सकते हैं कि वह एक तमिऴ् लेखक की प्रथम जीवनी है जो कि इस नाम से पुकारे जाने के योग्य है। वह श्री टी० एम० सी० रघुनाथन् ने लिखी है, जो कि तमिऴ् गल्प के लेखकों के राजा पुदमैपित्तन के घनिष्ठ साथी थे।

सोमले (एस० एम० लक्ष्मणन्) लिखित 'वळरुम तमिऴ्' (वृद्धिशील तमिऴ्) बीसवीं शताब्दी के तमिऴ् साहित्य का प्रामाणिक और विस्तृत इतिहास है जिसमें गद्य लेखन पर विशेष ध्यान दिया गया है।

'उन्नीसवीं शताब्दी का तमिऴ् साहित्य' एक और अत्युत्तम पुस्तक है। इसके लेखक प्रो० मयिलै सीनि वेंकटसामि ने इस पुस्तक द्वारा उन्नीसवीं शताब्दी में तमिऴ् प्रदेश की साहित्यिक प्रगतियों पर लिखने के इच्छुक अन्वेषक के लिए एक नया चित्र प्रस्तुत किया है। इस बहुमूल्य पुस्तक की भूमिका में ठीक पूर्ववर्ती युग की राजनीतिक और अन्य परिस्थितियों का विस्तृत परिचय दिया गया है। उसमें उन्नीसवीं शताब्दी में तमिऴ् भाषियों के साहित्यिक कार्य कलाप का पूरा परिचय दिया गया है। इसलिए यह सन्दर्भग्रन्थ के रूप में भी बहुत उपयोगी है।

तमिऴ् साहित्यिक आलोचना के क्षेत्र में डॉ० एम० वरदराजन् लिखित 'इलक्किय मरबु' (साहित्यिक परम्पराएँ) और के० एन० सुब्रह्मण्यन द्वारा दो जिल्दों में लिखित 'पडित्तिरुक्कीर्‌हळा' (क्या आपने पढ़ा है ?) दो प्रमुख कृतियाँ हैं। डॉ० वरदराजन् की पुस्तक आधुनिक साहित्यिक आलोचना के विषय पर है, और श्री के० एन० सुब्रह्मण्यन की पुस्तकों में हाल के वर्षों में प्रकाशित विविध पुस्तकों का अध्ययन है। उन्होंने जो परिचय दिया है वह बहुत संक्षिप्त होने पर भी पाठक में जिज्ञासा पैदा करता है।

मा० सु० सम्बन्दन् लिखित 'अच्चुकलै' (छापे की कला) तमिऴ् में शायद अपने ढंग की पहली पुस्तक है, तो भी वह इतने सरल और स्पष्ट ढंग से लिखी गयी है कि साधारण पाठक भी विषय को समझ सकता है

और यह अनुभव कर सकता है कि उसकी भाषा वस्तुत: तकनीकी विषयों को आसानी से प्रकट करने में समर्थ है।

'तमिऴ कादल' (तमिल साहित्य में प्रेम) नामक एक पुस्तक में प्राचीन तमिऴ साहित्य के दो मुख्य विषयों में से एक का उसके विविध अंगों में विवेचन किया गया है। इस बहुत ही विचित्र विषय पर नयी दृष्टि से विवेचन करने वाली इस पुस्तक के लेखक डॉ० वी० एस० माणिक्कम् हैं। लेखकों के लिए लेखक के रूप में उनका नाम पहले ही प्रसिद्ध हो चुका है, और यह पुस्तक उनको प्राप्त गौरव में चार चाँद लगा देती है।

'तेरोट्टिमगन्' (सूतपुत्र) एक नाटक है जिसमें महाभारत की कुछ घटनाओं का विस्तार से वर्णन है। यह नाटक रंगमच पर बहुत लोकप्रिय हुआ है। यह पुस्तक प्रसिद्ध गल्पलेखक श्री बी० एस० रामय्या ने लिखी है।

'एट्टिल एळुताळवितैगळ' (अलिखित पद्य) ग्राम गीतों का एक बहुत दुर्लभ संग्रह है, जिसे अण्णकामु ने संग्रह करके उस पर टीका भी लिखी है। टीकाकार की व्याख्या देखने से इस क्षेत्र में उसके ज्ञान की गहराई और तल्लीनता का पता चलता है।

दिव्य प्रबन्ध (वैष्णव सन्तों के 4000 गीतों का संग्रह) की मणि-प्रवाल शैली में लिखी हुई 'ईडु' नामक एक प्रसिद्ध टीका है, उसका प्रोफेसर पुरुषोत्तम नायडु ने अनुवाद किया है। यह हाल की एक बहुत महत्वपूर्ण रचना है। 'ईडु' बहुत रोचक और उपदेशप्रद घटनाओं का खज़ाना है और उसमें भक्तिगीतों की सहानुभूतिपूर्ण और विशेष ढंग की आलोचना है।

एक बात निश्चित है। आजकल का साहित्य हमारे समाज की प्रेरणा और आकांक्षाओं को प्राचीन युगों के साहित्य की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह और विस्तार से व्यक्त करता है। हमारे समाज में जो उन्नति और प्रगति हुई है वह उल्लेखयोग्य है। देश के स्वाधीन होने से पहले

लोग अपने पूर्वजों और उस देश की गौरवगाथा सुनकर सन्तुष्ट हो जाते थे। किन्तु हम उनकी तरह नहीं हैं। हमारे ज्ञान और विचारों का क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया है। हम सारे संसार को जानना चाहते हैं। हम सब आधुनिक विज्ञानों से परिचय प्राप्त करना चाहते हैं। राजनीतिक क्षेत्र में हमारा झुकाव हमारे माता-पिताओं से बिलकुल भिन्न है।

हमारे लेखक भी हमारे विकास को अच्छी तरह जानते है। तमिऴ में इस समय अर्थशास्त्र, तर्कशास्त्र, इतिहास, मनोविज्ञान और उनसे सम्बद्ध विषयों पर पुस्तकें मौजूद हैं। कुछ विद्वानों ने विज्ञान और तकनीकी विषयों पर भी पुस्तकें लिखी हैं। हाल के वर्षों में मुद्रणकला, दरजी का काम, घड़ी और मोटरों की मरम्मत पर भी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं। इन नये विषयों पर जानकारी देने और आलोचना करने वाली पत्रिकाएँ भी प्रकाशित होती हैं। साहित्य के इतिहास और देश के इतिहास का क्रमबद्ध अध्ययन भी प्रारम्भ हुआ है। हाल के वर्षों में तमिऴ में बड़ी साधना नौ जिल्दों में विश्वकोष का प्रकाशन है। हम सब आधुनिक विज्ञान और तकनीकी विषयों में अपनी भाषाओं को समृद्ध करने के राष्ट्रीय कार्य में लगे हैं। सरकार द्वारा नियुक्त की हुई कॉलेज-पाठ्य-पुस्तक-समिति ने विभिन्न विषयों पर लगभग 35 पुस्तकें प्रकाशित की हैं। सरकार ने वैज्ञानिक और प्रशासन सम्बन्धी शब्दों की भी एक पुस्तक प्रकाशित की है।

देश में राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक क्षेत्रों में महान परिवर्तन हो रहा है। लोगों के जीवन और रुचि पर भी इसका प्रभाव पड़ा है। तमिऴ के आधुनिक साहित्य में भी यह प्रतिबिम्बित हुआ है। प्रति वर्ष प्रकाशित होने वाली पुस्तकों और पत्रिकाओं की संख्या में वृद्धि हो रही है। लिखने की इच्छा रखने वाले स्त्री-पुरुषों की संख्या में भी वृद्धि हुई है। पढ़ने वाली जनता का क्षेत्र भी व्यापक होता जा रहा है। यह सब देखकर हम उज्वल भविष्य की आशा कर सकते हैं, क्योंकि परिमाण भी सृजनात्मिका शक्ति की बहुतायत का चिह्न है।